UNIVERSAL LIBRARY

OU_182803

UNIVERSAL LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No H81.09 T83A Accession No. P. G. H12782

Author त्रिपाठी, जगदीशनारायण.

Title आधुनिक हिन्दी कविता में

This book should be returned on or before the date last marked below. अलंकार विधान. 1962

आधुनिक हिन्दी-कविता में अलंकार-विधान

लेखक

डॉ० जगदीशनारायण त्रिपाठी

एम० ए० (हिन्दी), एम० ए० (अंग्रेजी), पी-एच० डी०

प्रकाशक

अनुसन्धान प्रकाशन

आचार्यनगर, कानपुर

मूल्य पन्द्रह रुपये

प्रकाशक
अनुसन्धान-प्रकाशन
८७/२५९, आचार्यनगर, कानपुर

प्रकाशन तिथि .
१५ अक्टूबर १९६२

आवरण-शिल्पी
बसन्त कुमार डे

मुद्रक
अनुपम प्रेस, देवनगर, कानपुर।

समर्पण

परम पूज्य पिता जी

आयुर्वेदाचार्य पं० जयजयराम त्रिपाठी वैद्यशास्त्री,

जिनसे साहित्य और शास्त्र के अध्ययन एव

अनुशीलन की प्रेरणा प्राप्त हुई है ।

प्रस्तावना

डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,

पूना विश्वविद्यालय, पूना

आधुनिक हिन्दी-कविता के स्वच्छन्द विकास की स्थिति प्रारम्भ होने पर पाश्चात्य सम्पर्क से विशेष रूप से प्रभावित कतिपय विशिष्ट कवियो और लेखको की ऐसी धारणा बन गयी थी कि कविता के अन्तर्गत अलकार, छन्द आदि की कोई आवश्यकता नही और इस दृष्टि को लेकर लिखा गया पूर्ववर्ती हिन्दी-काव्य कोई विशेष महत्व नही रखता। जहाँ तक भावना और विचारधारा का प्रश्न है, यह स्वीकार किया जा सकता है कि अनेक पूर्ववर्ती काव्यगत भाव-विचार-धाराएँ आधुनिक सदर्भ मे पुरानी पड गयी है और आज के कवि को उनकी पुनरावृत्ति न करके नवयुग की नयी भावनाओ को अभिव्यक्ति देनी चाहिये। भावनाये और विचार काव्य के विषय या वस्तु पक्ष से सम्बन्ध रखते है जो युगानुकूल बराबर परिवर्तित होते रहते है और रहेगे, पर कविता मे विषय-वस्तु की अपेक्षा उसकी अभिव्यजना अपेक्षणीय होती है। हम कविता विषय के सम्यक् ज्ञान के लिए नही पढते, वरन् इसलिए पढते है कि विषय किस रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। वास्तव मे हम कविता को विशिष्ट नाद-सौन्दर्य, कल्पना-वैभव एव अनुभूति-सवेदना के लिए पढते है। अतएव विषय की अपेक्षा रूप-रचना (Form) या अभिव्यजना का कविता मे विशेष महत्व है।

यही एक बात और समझनी आवश्यक है कि कविता मे विषय-वस्तु और रूप-रचना का अलग-अलग अस्तित्व नही रहता। विषय-वस्तु स्वय एक ऐसे रूपाकार मे अभिव्यक्त होती है कि उसमे एक वैचित्र्य, एक रमणीयता और एक प्रभाव का समावेश हो जाता है। विषय-वस्तु अपने सजीव चारु रूप मे हमारे सामने आती है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि कविता किसी विषय की आकर्षक अभिव्यक्ति के रूप मे ही प्रकट होती है।

आकर्षक अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरूपो पर भारतीय एव पाश्चात्य काव्य-शास्त्रीय ग्रथो मे पर्याप्त विचार हुआ है और मेरी धारणा है कि उस अभिव्यक्ति की शाश्वत विशेषताओ का भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत जितना स्पष्ट और व्यवस्थित विवेचन हुआ है, उतना पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अन्तर्गत नही। अभिव्यक्ति-सौन्दर्य के भारतीय विवेचन एव विश्लेषण के अन्तर्गत सबसे अधिक और व्यापक रूप

प्रस्तावना

डॉ० भगीरथ मिश्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

प्रोफेसर व अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग,

पूना विश्वविद्यालय, पूना

आधुनिक हिन्दी-कविता के स्वच्छन्द विकास की स्थिति प्रारम्भ होने पर पाश्चात्य सम्पर्क से विशेष रूप से प्रभावित कतिपय विशिष्ट कवियो और लेखको की ऐसी धारणा बन गयी थी कि कविता के अन्तर्गत अलकार, छन्द आदि की कोई आवश्यकता नही और इस दृष्टि को लेकर लिखा गया पूर्ववर्ती हिन्दी-काव्य कोई विशेष महत्व नही रखता। जहाँ तक भावना और विचारधारा का प्रश्न है, यह स्वीकार किया जा सकता है कि अनेक पूर्ववर्ती काव्यगत भाव-विचार-धाराएँ आधुनिक सदर्भ मे पुरानी पड गयी है और आज के कवि को उनकी पुनरावृत्ति न करके नवयुग की नयी भावनाओ को अभिव्यक्ति देनी चाहिये। भावनाये और विचार काव्य के विषय या वस्तु पक्ष से सम्बन्ध रखते है जो युगानुकूल बराबर परिवर्तित होते रहते है और रहेगे, पर कविता मे विषय-वस्तु की अपेक्षा उसकी अभिव्यजना अपेक्षणीय होती है। हम कविता विषय के सम्यक् ज्ञान के लिए नही पढते, वरन् इसलिए पढते है कि विषय किस रूप मे अभिव्यक्त हुआ है। वास्तव मे हम कविता को विशिष्ट नाद-सौन्दर्य, कल्पना-वैभव एव अनुभूति-सवेदना के लिए पढते है। अतएव विषय की अपेक्षा रूप-रचना (Form) या अभिव्यजना का कविता मे विशेष महत्व है।

यही एक बात और समझनी आवश्यक है कि कविता मे विषय-वस्तु और रूप-रचना का अलग-अलग अस्तित्व नही रहता। विषय-वस्तु स्वय एक ऐसे रूपाकार मे अभिव्यक्त होती है कि उसमे एक वैचित्र्य, एक स्मरणीयता और एक प्रभाव का समावेश हो जाता है। विषय-वस्तु अपने सजीव चोखे रूप मे हमारे सामने आती है। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते है कि कविता किसी विषय की आकर्षक अभिव्यक्ति के रूप मे ही प्रकट होती है।

आकर्षक अभिव्यक्ति के विभिन्न स्वरूपो पर भारतीय एव पाश्चात्य काव्य-शास्त्रीय ग्रथो मे पर्याप्त विचार हुआ है और मेरी धारणा है कि इस अभिव्यक्ति की शाश्वत विशेषताओ का भारतीय काव्यशास्त्र के अन्तर्गत जितना स्पष्ट और व्यवस्थित विवेचन हुआ है, उतना पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अन्तर्गत नही। अभिव्यक्ति-सौन्दर्य के भारतीय विवेचन एव विश्लेषण के अन्तर्गत सबसे अधिक और व्यापक रूप

से मान्यता अलकार को मिली है। यद्यपि अलकार का प्रारम्भिक अर्थ सस्कृत-काव्य-शास्त्र के अन्तर्गत समग्र चारुत्व था और आगे चलकर विभिन्न काव्य-सिद्धान्तो की प्रतिष्ठा के उपरान्त अलकार को चारुता का मूलतत्व या काव्यात्मा तो नही माना गया, फिर भी चारुता की विविध रूपता का स्वरूप अलकार को बराबर मिला। पौधे की मूल अलकार न सही, पर उस पर खिलने वाले फूलो की छटा अलकारो की ही रही। काव्यात्मा-सबधी सिद्धान्तो के परिप्रेक्ष्य मे अलकार को गौण स्थान भले ही मिला हो, पर काव्य-सुषमा की बहुविध छटा का सर्वाधिक निरूपण अलकारो के रूप मे मिलता है। अत रस और अलकार का कविता के व्यक्तित्व मे सर्वाधिक प्रभावकारी एव मान्य तथा परिचय्य विशेषताओ के रूप मे स्थान अक्षुण्ण रहा। अलकार के इसी स्वरूप को हृदयगम करने वाले आचार्यो ने कह ही डाला—

"अलकार रहिता विधवेव सरस्वती।"

भारतीय काव्यशास्त्र का सिहावलोकन एव सम्यक् अनुशीलन करने पर ऐसा लगता है कि कविता के क्षेत्र मे अलकार का प्रमुख स्थान एव विशिष्ट महत्व स्वीकार करना चाहिये। प्राचीन आचार्यो की इसी प्रकार की दृष्टि ने काव्य मे अलकार के महत्व को मान्यता दी थी। "काव्य ग्राह्यमलकारात्", "सौन्दर्यमलकार" आदि उक्तियो मे काव्य की समग्र सुषमा को अलकार के रूप मे देखने का आग्रह है।

अलकार वास्तव मे उक्तिवैचित्र्य का ही बहुविध स्वरूप है और काव्य मे उक्तिवैचित्र्य का महत्व स्वीकार करने पर अलकार को भी समुचित महत्व देना आवश्यक हो जाता है। इस प्रसग मे हमे भामह की यह उक्ति महत्वपूर्ण लगती है, जिसमे उन्होने अलकार के मूल को वक्रोक्ति के रूप मे स्वीकार किया है —

सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यत्नोऽस्या कविना कार्य कोऽलकारोऽनया बिना ॥२-८५

इसी प्रकार—
वक्राभिधेय शब्दोक्तिरिष्टा वाचामलकृति. ।१-३५

भामह अलकारवादी थे और उन्होने वक्रोक्ति के विविध रूपो को अलकार स्वीकार कर अलकार को महत्व प्रदान किया, तो यह उनके लिये स्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु रस और ध्वनिवादियो ने भी अलकार की महत्ता स्वीकार की। 'ध्वन्यालोक' पर वृत्ति के अन्तर्गत इस प्रकार की उक्ति मिलती है—

"अनन्ता हि वाग्विकल्पास्तत्प्रकारा एव चालकारा।"

इससे स्पष्ट होता है कि वाणी की अनेक विधाये अलकार है। इसी प्रकार 'वक्रोक्तिजीवितम्' के अन्तर्गत आचार्य कुन्तक ने भी वाक्य की वक्रता के रूप मे अलकार को स्वीकार करते हुये इस प्रकार लिखा है —

वाक्यस्य वक्रभावोऽन्यो भिद्यते य सहस्रधा ।
यत्रालंकार वर्गोऽसौ सर्वोऽप्यन्तर्भविष्यति ॥१–२०॥

यहाँ पर व्यापक वक्रोक्ति की सीमा मे अलकार-वक्रता को स्थान मिला है, परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि विभिन्न अलकारो द्वारा अभिहित वक्रोक्ति रूपो को नये नाम एव नयी व्याख्या वक्रोक्ति सिद्धात के अन्तर्गत प्रदान की गयी है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रधान या गौण रूप मे कविता मे अलकार का स्थान सभी को स्वीकार करना पडा है।

ससार के विभिन्न युगो के काव्यो का अवलोकन करने पर भी हमारे सामने यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अलकार का प्रयोग प्रत्येक कवि किसी न किसी भाँति करता है और अलकार के नवीन ढग और प्रयोग मे ही कवि की प्रतिभा का चमत्कार और महत्व है। जिन्होने बँधी बँधायी पूर्ववर्ती परिपाटी का परित्याग कर नये ढग मे नवीन अलकृति के साथ अपनी रचनाये प्रस्तुत की, उन्ही कवियो को अपने युग मे विशिष्ट स्थान मिल सका है। यह बात ऐसे कवियो के लिये भी सत्य है, जो उक्तिवैचित्र्य और अलकृति के विरोधी कहे जाते है, क्योकि विरोध करने पर भी उनकी रचनाओ मे अलकृति का चमत्कार देखने को मिलता है। जाने अनजाने अपनी विशिष्ट अनुभूति और कल्पना के द्वारा गृहीत जीवन के सत्य और अनुभवो को जब कवि अभिव्यक्ति देने लगता है, तब उसमे अलंकृति सहज रूप मे ही आ जाती है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि कवि इसके प्रमाण है। अलकार की परम्परा से बचकर चलने वाले छायावादी कविया मे तो अलकृति की भरमार है। उक्तिवैचित्र्य को छोडकर नवीन विषय वस्तुविचार एव युगचेतना पर जोर देने वाले प्रगतिवादी कवियो मे भी अलकार मुख्य आकर्षण है। इस प्रकार नवीनता के दावेदार आधुनिक युग की नवीन अनुभूतियो को नये ढग मे अभिव्यजना देने वाले प्रयोगवादी कवियो मे भी अलकृति का प्राधान्य है। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी युग और किसी भी कवि का काव्य क्यो न हो, अलकार उसकी रचना के सौदर्य के रूप मे समाविष्ट रहते है। हाँ, यह बात अवश्य सत्य है कि अलकार जुटाने के लिए ही कविता लिखना ठीक नही है। ऐसी अलकार-योजना जो केवल अलकरण के लिए ही कविता मे की जाती है, उसकी शोभा न बनकर उसका भार बन जाती है। परन्तु सहज स्वाभाविक रूप मे अनुभूति को प्रकट करने के लिए जो उक्तिभगिमा अलकारो के रूप मे प्रकट होती है, वह वाणी की गरिमा ही नही, वरन् उसकी गरिमा भी है।

प्रस्तुत ग्रथ "आधुनिक हिन्दी काव्य मे अलकार-विधान" पूर्वोल्लिखित धारणा का प्रमाण है। इस ग्रथ के प्रणेता डा० जगदीशनारायण त्रिपाठी ने सस्कृत की अलकार-सम्बन्धी धारणा और परम्परा को स्पष्ट करते हुए आधुनिक युग के हिन्दी-काव्य मे अलकार-योजना का अध्ययन किया है। पृष्ठभूमि के रूप मे प्रथम-खंड मे किया गया अध्ययन न केवल अलकार के शास्त्रीय पक्ष को स्पष्ट करता है,

वरन् सस्कृत एव हिन्दी के अलकार-साहित्य की आधुनिक युग से पूर्ववर्ती परम्परा भी प्रस्तुत करता है। इस खड मे लेखक की मौलिकता की अपेक्षा उसकी सप्रमाण व्याख्या एव अलकार-साहित्य की धारा का क्रमबद्ध परिचय अधिक महत्व रखता है। इस खड मे अलकारो के वर्गीकरण का प्रसग अधिक रोचक है।

द्वितीय खड के अध्ययन मे विविध प्रसग आधुनिक युगीन अलंकार-योजना के विभिन्न पक्षो का उद्घाटन करने वाले है। इन प्रसगो मे लेखक का दृष्टिकोण और विवेचन-विश्लेषण दोनो ही महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन एव परम्परागत अलकार-प्रयोग के साथ-साथ अप्रस्तुत-योजना एव प्रतीक-विधान का विश्लेषण अलकार-सम्बन्धी पौर्वात्य एव पाश्चात्य दोनो ही धारणाओ को प्रस्तुत करता है। साथ ही साथ अलकृत उक्तियो मे वस्तु एव भाव-व्यजना के प्रसग-द्वारा अलकार-अलकार्य के स्थान का भी विवेचन हो गया है। अलकृति शब्दशक्ति का भी एक रूप है, इस पक्ष को भी लेखक ने उपेक्षित नही किया। इस प्रकार आधुनिक हिन्दी-कविता की आलकारिक समृद्धि के विश्लेषण के साथ-साथ प्रस्तुत ग्रथ मे आधुनिक काव्य की अलकृति को विभिन्न काव्य सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य मे भी देखने का प्रयत्न है। अतएव यह ग्रथ अलकार-विश्लेषण के सभी पक्षो का ध्यान रखकर लिखा गया है।

डा० त्रिपाठी के इस ग्रथ को पढकर मुझे बडी प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है, क्योकि इसमे उनके अध्ययन, विवेचन एव विश्लेषण की अभिनदनीय क्षमता के प्रमाण मिलते है। मुझे आशा है कि त्रिपाठी जी की लेखनी से अन्य अनेक विवेचना-पूर्ण ग्रथो का प्रणयन होगा, साथ ही यह भी विश्वास है कि इस ग्रथ का हिन्दी-जगत् के बीच समुचित स्वागत होगा।

भूमिका

भारतीय साहित्यशास्त्र की प्राचीनता और इसका वैभव विश्व-विश्रुत है। यहाँ के साहित्य-साधको ने अपनी अतलस्पर्शिनी मेधा एव क्रातदर्शी दृष्टि द्वारा अनेक ऐसे गूढ विषयो का आज से शताब्दियो पूर्व सूक्ष्म विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत कर दिया था, जिन पर विश्व के अन्यान्य साहित्य-मनीषियो ने अब चिन्तन प्रारम्भ किया है, और जिन्हे अत्याधुनिक काव्यालोचन-सिद्धान्त ऐसा अभिधान प्रदान किया जाता है। संस्कृत-साहित्य-कोष के रसालकार, शब्द-शक्ति, ध्वन्यादि ऐसे ही अद्वितीय रत्न है जो अन्यत्र अप्राप्य है। इसी महत्ता के कारण तो स्वर्गीय डा० अमरनाथ झा ने एक बार कहा था कि पाश्चात्य की समीक्षा के लिए हम प्राचीन भारतीय आलोचना के रसालकारादि के निकष का व्यवहार कर सकते है।* वास्तव मे भारतीय काव्यालोचन-सिद्धान्तो के विश्वव्यापी महत्व के लिए "हिन्दी के नवीन आलोचक की सबसे बडी उपलब्धि यह होगी कि वह अग्रेजी या फ्रेंच-साहित्य का इतिहास रसालकार के दृष्टिकोण से लिखे, जैसे कभी अपने दृष्टिकोण से मैकाडानेल, कीथ या विटरनिज ने सस्कृत-साहित्य के इतिहास लिखे थे। जैसे फ्रासीसी लुगोई और कजामियाँ के इतिहास से बढिया, उस आकार-प्रकार का, किसी अग्रेज लेखक का अग्रेजी-साहित्य का इतिहास नही है, जैसे पाश्चात्यो के लिखे सस्कृत-साहित्य के इतिहासो से स्वय भारतीयो के नही है, उसी तरह कौन जानता है कि हिन्दी-आलोचक द्वारा लिखित पाश्चात्य साहित्यो का इतिहास उनका अभिनव मूल्याकन करने मे समर्थ नही होगा।"† साथ ही भारतीय आलोचना-निकष द्वारा आधुनिक हिन्दी-साहित्य का भी परीक्षण कर गुण-दोषो का निर्णय करना परमावश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक मे मैने पाश्चात्य साहित्य का तो नही, अपितु पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित आधुनिक हिन्दी-कविता (सन् १६२० से १६५० तक) का भारतीय काव्यशास्त्र के आलकारिक दृष्टिकोण से मूल्याकन करने का विनम्र प्रयास किया है।

भारतीय अलकारशास्त्र मे अलकार को वस्तु से व्यवहाररूप मे सर्वथा स्वतन्त्र मानने के कारण अलकारो के भेदादि का अत्यधिक सूक्ष्म अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है और दूसरी ओर अलकार-अलकार्य की अभिन्नता के समर्थक अभिव्यजनावादी क्रोचे ने अलकारो के नाम-परिगणन-शैली को सर्वथा निरर्थक सिद्ध किया है।

---

*डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का निबन्ध—'हिन्दी का अपना साहित्यशास्त्र', 'आलोचना' अंक ८

† श्री नलिन विलोचन शर्मा का निबन्ध—'वर्तमान हिन्दी-आलोचना . उपलब्धि और अभाव', 'आलोचना', अक ६

लेकिन मैंने आधुनिक हिन्दी-काव्य के अलकार-विधान-विवेचन मे दोनो के मध्यम मार्ग को ग्रहण किया है अर्थात् न तो अलकारो की स्वतत्र सत्ता को ही समाप्त किया है और न अलकारो के उन सूक्ष्म भेद-प्रभेदो को ही प्रस्तुत किया है, जिनको देखकर बुद्धि चकराने लगती है। विषय-विश्लेषण और स्पष्टीकरण के लिए भारतीय साहित्यशास्त्र और आधुनिक मनोविज्ञान दोनो का आश्रय लिया है। इस प्रकार पौर्वात्य और पाश्चात्य विचारधाराओ के समन्वय द्वारा मैने अपने दृष्टिकोण का निर्माण किया है।

यद्यपि आधुनिक काल के कवियो ने अलकारो की योजना जान-बूझ कर नही की है, तथापि भाषा की शक्ति एव सामर्थ्य के रूप मे उनकी कविता मे अनेकानेक अलकारो का विधान स्वत. हो गया है। विश्व-साहित्य, विशेषरूपेण भारतीय काव्य के अध्ययन के कारण अलकार सस्कार-रूप मे उनके मन की भाषा मे समाविष्ट है। अत. काव्य-रचना मे आधुनिक कवियो ने उनका पर्याप्त उपयोग किया है, और यही कारण है कि आधुनिक कवियो मे भारतीय और पाश्चात्य दोनो ही प्रकार की अलकार-योजना दृष्टिगत होती है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे अलकारो की अधिकता या न्यूनता का प्रश्न नही है, अपितु अलकार-प्रयोगों की पृष्ठभूमि मे कार्य करने वाली रूचि अथवा सौदर्य-भावना का है। आधुनिक युग मे कवियो ने परपराविहित अधिकाश अलकारो को त्याग दिया है और जिन प्राचीन अलकारो का प्रयोग किया है, उन्हे अभिनव अर्थ-दीप्त प्रदान की है।

प्रस्तुत विवेचन मे कवियो की कृतियो का इतिहास न लिख कर नव-चेतना से परिपूर्ण आधुनिक कवियो की नवीनरीत्या अलकृत अभिव्यक्तियो को यथामति समझने तथा उनकी प्रवृत्तियो का विश्लेषण एव स्पष्टीकरण करने का प्रयत्न किया गया है। अत व्यक्तियों को स्वतत्र महत्व नही प्राप्त हो सका है, किन्तु अधिकाशत· सभी प्रतिनिधि कवियो की प्रतिनिधि रचनाएँ आ गई है।

पुस्तक लेखन मे मुझे पूज्य गुरुवर प० अयोध्या नाथ शर्मा एम० ए० (कृतकार्य अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, विक्रमाजीतसिंह सनातन धर्म कालेज, कानपुर) के सतत् स्नेह, परामर्श और प्रोत्साहन से बल मिला है एव समादरणीय आचार्य डा० मुशीराम शर्मा 'सोम' एम० ए०, डी० लिट्० (कृतकार्य अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, डी०ए०वी० कालेज, कानपुर) से अनेक सुझाव प्राप्त हुए हैं। श्रद्धेय गुरुवर प० कृष्ण शकर शुक्ल एम० ए० (प्राध्यापक, हिन्दी-विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने विवेचन की विविध गूढ गुत्थियों को शका-समाधान द्वारा सुलझाया है। मान्यवर गुरुवर कुँवरचन्द्र प्रकाश सिंह एम० ए० (अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग, बड़ौदा विश्वविद्यालय, बडौदा) से तो पदे-पदे सहायता प्राप्त हुई है। अत. इन गुरुजनो के प्रति कृतज्ञ श्रद्धा व्यक्त करना मैं अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ। इन महानुभावो के अतिरिक्त विषय से सम्बन्धित वरेण्य विचारकों और सुधी साहित्यकारो की कृतियो से जो सहायता प्राप्त हुई है, उसके लिए मैं उनका चिर ऋणी हूँ। मेरे अनुज श्री शम्भूरत्न त्रिपाठी (सम्पादक—साप्ता-

हिक 'मनु', मासिक 'समाज विज्ञान' एव त्रैमासिक, 'साहित्यालोचन') तथा श्री कैलाश नाथ त्रिपाठी शास्त्री की सतत् प्रेरणा के परिणामस्वरूप इस पुस्तक का लेखन और 'अनुसधान-प्रकाशन' के अध्यक्ष श्री रामकुमार मिश्र की अत्यधिक रुचि और लगन के कारण इसका प्रकाशन सम्भव हो सका। इन लोगो के ये कार्य मेरे धन्यवादादि की तुलना मे इतने अधिक है कि औपचारिकता के प्रदर्शन मे कोई औचित्य नही समझता।

अध्यक्ष, हिन्दी-विभाग
डी०एन० डिग्री कालेज
फतेहगढ़।

—लेखक
जगदीश नारायण त्रिपाठी

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

१—अलकरण	—	२०
२—अलकार-वर्गीकरण	—	३८
३—सस्कृत-अलकार-साहित्य	—	५५
४—हिन्दी-अलकार-साहित्य	—	८३

द्वितीय खण्ड

५—आधुनिक हिन्दी-कविता मे उपमान-योजना	—	११७
६—आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रतीक-विधान	—	
७—आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्राचीन अलकारो का स्वरूप	—	२१४
८—आधुनिक अलंकृत उक्तियाँ और शब्द-शक्ति	—	२५२
९—आधुनिक अलकृत उक्तियो मे भाव और वस्तु-व्यजना	—	२८०
१०—उपसहार	—	२९८
परिशिष्ट—सहायक ग्रन्थो की सूची	—	३०१

प्रथम खण्ड

- अलंकरण
- अलंकार-वर्गीकरण
- संस्कृत-अलंकार-साहित्य
- हिन्दी-अलंकार-साहित्य

१

अलंकरण

● अलंकरण की प्रवृत्ति

अलंकरण की प्रवृत्ति मानव-जीवन में सार्वकालिक, सार्वजनीन और सार्वत्रिक है। अलंकरण का सम्बन्ध सौंदर्य से है और सौंदर्य का सर्वप्रथम उद्भव मानव की उपयोगितावादी लौकिक आवश्यकता से हुआ है, किन्तु कालान्तर मे सौंदर्य ने उपयोगितावादी दृष्टिकोण से पृथक् उच्चस्तर पर अपनी सत्ता को स्थापना करली और तभी ललितकलाओं का रूप समक्ष आया। मानव ने आत्मरक्षार्थ गृहों का निर्माण किया, किन्तु निर्माण की विशिष्ट आकर्षक शैलियों एवं भित्तियों पर चित्रकारी आदि का कोई उपयोग नही होता। इसी प्रकार वस्त्रों का आविष्कार भी इसी उद्देश्य से हुआ, लेकिन उनकी सिलाई के विभिन्न आकार-प्रकारों से उपादेयता का कोई सम्बन्ध नही है। यह सब मनुष्य की अलंकरण-प्रवृत्ति का परिणाम है जिससे उसे मानसिक परितोष होता है, कोई प्रत्यक्ष लाभ नही।

शरीर-अलकरण की उपर्युक्त विशेषता मस्तिष्क-अलंकरण में भी प्राप्त होती है। अनेक प्रकार की प्राचीन भाषाओं का अध्ययन, धनोपार्जन की भावना से दूर विविध वाद्य-यन्त्रों का शिक्षण, विश्व की घटनाओ की तथा महापुरुषो की जन्म-मृत्यु तिथियों आदि की अध्यवसायपूर्ण स्मृति का कोई प्रत्यक्ष उपयोग नही है, किन्तु मनुष्य ऐसा करता है। यह मस्तिष्क-अलंकरण मनुष्य इसलिए करता है, क्योंकि समाज इसे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण अंग समझता है, और हो सकता है कि इस प्रकार के ज्ञानाभाव मे वह समाज मे आदरणीय न हो सके। अतः ऐसा करता है।[1]

---

1 Men dress their children's minds as they do their bodies in the prevailing fashion. As the Orinico Indian puts on paint before leaving his hut, not with a view to any direct benefit, but because he would be ashamed to be seen without it, so a boy's drilling in Latin and Greek is insisted on, not because of their intrinsic value, but that he may not be disgraced by

उपादेयता से असम्पृक्त ललितकलाओ की एक स्वतन्त्र सत्ता है, और यदि उनकी कोई उपयोगिता है तो वह मानसिक है, शारीरिक नही। "दिवाली मे वास्तुकार का लघु अवतार, हलवाई के लिए शक्कर का बड़ा भारी महल तैयार करता है जिसमे कोई रहता नही है, केवल मन का अनुरजन करता है, और चमत्कार तथा कौतूहल को सजग रखता है। यहाँ सौंदर्य ऐहिक उपादेयता के उत्सग से बाहर आकर अपनी अलग स्थिति की घोषणा करता है। इस अलग स्थिति की रक्षा मे ही ललित कलाएँ सामने आई और सौंदर्य ने अपनी उपयोगिता को जन्म दिया। उसकी विभिन्नता और अनेक रूपता के दर्शन हुए। ठीक इसी प्रकार जब भाषा मर्मज्ञों ने अभिव्यक्ति को विधानों मे विभाजित किया, और उसके प्रकार बने और अलकार उन्हे नाम दिया गया तो अभिव्यज्य से अलग करके वे समझाए गए। अलकार-ग्रंथों मे उनका सहेतुक वर्गीकरण किया गया, और नाम के बाद उदाहरण बनाये गये। पडितो और शास्त्रियो द्वारा व्याख्या की गई। इस स्वतत्र घोषणा को बल मिला और इनका पठन-पाठन स्वतत्ररूप से सामने आया। कलाकार का मस्तिष्क भी इनसे बातुल हुआ और उसने कला मे इनकी योजना मस्तिष्क के सहारे की, हृदय के नैसर्गिक रुझान से नही, अतएव दोष आ गए। केशव प्रभृति पडितो ने तो केवल आचार्यत्व के रूप मे ही सब कुछ लिखा उसे रससिक्त हृदयोदधि के नवनीत के रूप मे न देखना चाहिए, जिसका प्रसवकर्त्ता कोई बाल्मीकि, कोई व्यास, कोई कालिदास तथा कोई तुलसीदास होता है। आचार्य केशव को जाने दीजिए, परन्तु यदि कलाकार का अलकार भाव से बँधकर, रस से बँधकर, विचार से बँधकर, मन्तव्य को समस्त बल के साथ सकेत न करेगा तो वह दीवाली के मिठाई के महल से अधिक उपयोगी न होगा।"[1] तात्पर्य यह है कि वाणी-विभूषण भावाभिव्यक्ति के साधन है, साध्य नही। किन्तु जब साधन ही साध्य का रूप धारण कर लेते है, तभी काव्य में अस्वाभाविकता आ जाती है। काव्य का जन्म हृदय से होता है, अत. उसका शृगार भी हृदय की नैसर्गिकता से होना अपेक्षित है, बुद्धि-व्यायाम-जन्म अलकारो से नही

● अलंकार क्या हैं?

विश्व-साहित्य विशेषरूपेण भारतीय साहित्य मे अलकारो का अत्यधिक

---

being found ignorant of them—that he may have "the education of a gentleman"—the badge marking a certain social position, and bringing a consequent respect · ·· The births, dates and marriages of kings, and other like historic trivialities, are committed to memory, not because of any directs that can possibly result from knowing them; but because society considers them parts of a good education.—because the absence of such knowledge may bring the comtempt of others —Herbert Spencer : Education, Ch. I, P. 2-3

१ सद्गुरुशरण अवस्थी—साहित्य-तरंग पृ० ६१

महत्व है। भारतीय काव्यशास्त्र मे इन वाणी-विभूषणों का बहुत गान हुआ है। राजशेषर ने तो इनको वेद का सातवां अग माना है। अलकार वेदार्थ के उपकारक है, क्योकि इनके बिना वेदार्थ की अवगति नही हो सकती।[1] भारतीय साहित्याचार्यों ने अलकारो के स्वरूप तथा कविता मे उनके महत्व का बहुत विवेचन किया है। उदाहरणार्थ यहाँ पर हम कतिपय विद्वानो के अलकार विषयक विचारो को उद्धृत करते है :—

वेदव्यास—अलकार रहित सरस्वती विधवा के समान मान को उल्लसित नही करती।[2]

भामह—सुन्दर होने पर भी भूषण के बिना नारी के मुख पर काति नही आती।[3]

दण्डी—काव्य शोभा के सम्पादक-धर्मों को अलकार कहते है।[4]

उद्भट—गुण और अलंकार चारुत्व के हेतु है।।[5]

वामन—काव्य में सौदर्य ही अलंकार है।[6]

रुद्रट—कवि की उदार मति सालकर काव्य की रचनाओ म सफल होती है।[7]

आनन्दवर्धन—कटक आदि के समान जो अंगाश्रित है वे अलकार है।[8]

कुंतक—सालकार काव्य है।[9]

भोजराज—अलकृत होने पर भी गुणवर्जित काव्य सुनने म अच्छा नहीं लगता; गुण और अलकार के योगो मे गुणयोग मुख्य है।[10]

क्षेमेन्द्र—उचित स्थान पर धारण करके ही अलकार शोभाकारक है।

---

१ उपकारकत्वात् अलंकार· सप्तमगमितियायावरीय: ।
ऋते च तत्स्वरूपपरिज्ञानात् वेदार्थानवगति ।। काव्यमीमासा

२ अलकाररहिता विधवेव सरस्वती ।

३ न कांतामपि निर्भूष विभातिवनितामुखम् ।

४ काव्यशोभाकरान्धर्मान् अलकारान् प्रचक्षते ।

५ चारुत्वहेतुत्वेपि गुणानामलकाराणा ।

६ सौंदर्यमलकार: ।

७ काव्यमलकर्तुमलंकर्तुरदारा मतिर्भवति ।

८ अङ्गाश्रितास्त्वलंकारामन्तव्या: कटकादिवत् ।

९ सालंकरस्य काव्यता ।

१० अलकृतमपि श्रव्य न काव्यं गुणवर्जितम् ।
गुणयोगस्तयो मुख्यो गुणालंकार योगयो .।।

११ उचितस्थान विन्यासाद अलंकृतिरलंकृति: ।

मम्मट—अलंकार हार आदि आभूषणों के समान हैं, ये कदाचित रस का उपकार करते है, सर्वदा नही, जहाँ रस नही है वहाँ भी अलकार रह सकता है।[1]

जयदेव—जो अलकार शून्य शब्दार्थ में काव्य स्वीकार करता है, वह कृती अग्नि मे शीतलता को क्यो नही स्वीकार करता ?[2]

विश्वनाथ—अङ्गद आदि के समान शोभा के अतिशयता और रसादि के उपकारक शब्दार्थ के अस्थिर धर्मो को अलकार कहते है।

केशवदास—जदपि सुजाति सुलक्षणी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषण विनु न विराजई, कविता वनिता मित्त॥

चिंतामणि—अलकार ज्यो पुरुष को हारादिक मन आनि।
प्रासोपम आदिक कवित अलकार ज्यों जानि॥

कुलपति मिश्र—उक्ति-भेद ते होत हैं, अलकार,यह जानि॥

देव कवि—सो रस बरसत भावबस अलकार अधिकार॥
कविता कामिनि सुखद प्रद, सुबरन सरस सुजाति।
अलकार पहिरे अधिक अद्भुत रूप लखाति॥

सोमनाथ—अलकार जो होत सो उक्ति-भेद सो होत॥

दास कवि—रस कविता को अग भूपण है भूपन सकल।
गुन सरूप औ अग, दूषण करैं कुरूपता॥

रामचन्द्र शुक्ल—भावो का उत्कर्ष और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलकार है।

सुमित्रानन्दन पन्त—अलकार केवल वाणी की सजावट के लिये नही हैं, वे भाव की अभिव्यक्ति के लिये विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिये राग की परिपूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है, वे वाणी के आचार, व्यवहार, रीति-नीति हैं, पृथक् स्थितियो के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओ के भिन्न चित्र है।

उपर्युक्त विचारों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि अलकार कविता के भाव और अभिव्यक्ति को सौदर्यमयी बनाने के अस्थिर साधन है। सौदर्यानुभूति के लिये अलकरण को सहज प्रवृत्ति मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती है। कविता

---

१ उपकुर्वन्ति त सन्त येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवद् अलकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥

२ अगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्ठामनलकृती॥

१ शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनपकुर्वन्तोऽलकारास्तेऽङ्गदादिवत्॥

के क्षेत्र में भी इसका समावेश है। वाणी और अर्थ-सौदर्य-तत्व की शोध करते-करते भारतीय. आचार्यो ने अलंकारो की उद्भावना की थी। मनुष्य अपनी अभिव्यक्ति को अधिक आकर्षक और प्रभावोत्पादक बनाने के लिये अलकारो का प्रयोग करता है। अलकार वाणी और अर्थ मे सौदर्य-सृष्टि करते है। कविता मे अलंकारों का प्रयोग भावो और अभिव्यक्ति दोनो को सौदर्यमयी बनाना होता है। इस प्रकार अलकार कविता के शोभा-साधक अवश्य है, किन्तु अनिवार्य सौदर्य-साधन नहीं कि इनके उपयोग के बिना कविता कुरूपा हो जाएगी। बिना अलकारो के भी कविता सुन्दर हो सकती है। यथा—

वह आता,
दो टूक कलेजे करता, पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिल कर है एक,
चल रहा लकुटिया टेक।
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को,
मुंह फटी पुरानी झोली को फैलाता। —निराला

'भिक्षुक' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ सर्वथा निरलकार होते हुए भी भिक्षुक की भावनाओ का हृदयस्पर्शी मार्मिक चित्र प्रस्तुत करने के कारण कोई भी सहृदय इसे कविता कहने से अस्वीकार नही कर सकता।

जिस प्रकार एक रूपवती स्त्री अपने नैसर्गिक सौदर्य के कारण बिना आभूषणों के भी आकर्षक बनी रहती है, उसी प्रकार कविता-कामिनी भी बिना अलंकारों के सहज सौदर्य एव माधुर्य के कारण विद्वानो द्वारा श्लाघनीय रहती है, गर्हणीय नही। रमणी के शरीर पर आभूषणो की जो उपयोगिता है, वही उपयोगिता कविता में अलंकारों की। यदि स्त्री मे नैसर्गिक सौदर्य है तो आभूषण उसको अधिक आकर्षक एवं मोहक बना देते हैं, किन्तु यदि स्त्री कुरूपा है तो अलकारो मे उसे सौदर्य प्रदान करने की क्षमता नही है। अलकार उसे हास्यास्पद बना कर उसकी कुरूपता मे ही वृद्धि करेंगे। इसी प्रकार यदि कविता मे स्वाभाविकता, मधुरता और सुन्दरता होगी तो अलकार उसकी शोभा बढ़ा सकते है, किन्तु यदि कविता ही निम्नकोटि की है तो अलकार उसमे सौदर्य-विधान नही कर सकते। इसका कारण यह है कि शैली की श्रेष्ठता और अलंकार-प्रयोग मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। अलंकार अपना पूर्ण प्रभाव तभी प्रदर्शित करते हैं, जब उनका प्रयोग एक ऐसी शैली मे होता है जो स्वत: थोडी बहुत उन्नत होती है। यदि शैली उन्नत न हुई और उसमें अलंकार प्रत्युक्त हुये तो बाह्याडम्बर भी समझे जा सकते हैं और उसमें कृत्रिमता का आभास भी मिल सकता है। अनेक पाठकों के मन मे यह सन्देह उठ सकता है कि कवि अपने कृत्रिम साधनो अथवा प्रयोगों से उन्हे प्रभावित करना चाहता है। स्वत: उन्नत शैली मे इस प्रकार की भावना का निवारण हो जायगा। अलकार तभी आकर्षक, प्रभावोत्पादक और सौंदर्य-साधक होंगे, जब उन्नत शैली मे सहज रूप से प्रयुक्त होंगे। कविता की भावावेश की स्थिति मे अलंकार स्वत उद्भुत होते हैं। और ये ही ग्रहण

1 Figures consist in the passional element—Home.

योग्य अलंकार प्रधानतः काव्याङ्गभूत हैं।[१] काव्य में केवल वे ही अलंकार-प्रयोग अपेक्षित हैं जो बुद्धि तथा कान दोनों को प्रिय लगें। कुछ अलंकार केवल बुद्धि को ही प्रभावित करते हैं और उनका प्रभाव अर्थ समझने के उपरांत पडता है। कुछ अलकार श्रुति-मधुर होते हैं और सुनते ही उनका प्रभाव पड़ने लगता है, परन्तु कुछ अलकारो मे दोनो गुण समरूप से रहते है। श्रेष्ठ प्रयोग तभी सम्भव होगा जब अलकार का आधार तर्क हो और वह श्रुतिमधुर भी हों।

अलंकारों द्वारा भावोद्रेक में सहायता मिलती है और भावों की व्यंजना चित्र रूप मे होने लगती है जो अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा आकर्षक होती है। कवि-कल्पना की तूलिका यथार्थ के आधार पर आकर्षक भावना-चित्र-विचित करती है, और सुदरतम सत्य का आभास मूर्त्तरूप में देने की चेष्टा करती है; परन्तु शैली मे यह गुण तभी आयेगा जब जड-चेतन प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण होगा। निरीक्षण द्वारा अलकार-प्रयोग मे सफलता प्राप्त होगी, तथा भावों का आलंकारिक चित्रण भी सरल हो जायगा, परिणामस्वरूप आलंकारिक उक्तियों मे दुरूहता के स्थान पर स्पष्टता आयेगी। उनके द्वारा नवीनता, विलक्षणता एवं भव्यता का आभास मिलेगा, किन्तु अलकारों का अधिक प्रयोग न होना चाहिये अन्यथा शैली बोझिल हो जायगी, सामंजस्य दूर हो जायगा, फलस्वरूप प्रभविष्णुता में कमी आ जायगी। अलकार वाणी-विभूषण है। वे भाषा को उर्वर बनाते हैं। भाषा को महत्-से-महत् सत्य की अभिव्यंजना कराने की शक्ति प्रदान करते हैं। पाठकों को गहरे रूप मे प्रभावित करते है और अभिव्यंजना मे सौष्ठव और सौंदर्य की प्राण-प्रतिष्ठा करते है। अलंकार केवल कवि की सौदर्य-प्रियता के ही द्योतक नही है, अपितु उसकी सीमित शब्दावली के भी प्रमाण हैं। जब कभी शब्द-शक्ति कवि को निराधार छोड़ देती है, तब वह कल्पना शक्ति के सहारे अलकारों के तथा लाक्षणिकता के मनोरम देश में पहुंच जाता है और वहां से नये-नये रत्नाभूषण लाकर कविता-कामिनी का अभिनव श्रृंगार करता है।[२]

अलंकार–प्रयोग में सतर्कता आवश्यक है और लक्ष्य पर समुचित विचार करने के पश्चात् ही अलंकार–प्रयोग करना चाहिए। उदाहरणार्थ यदि सौन्दर्य की

---

1 Permissible ornament being for the most part structural or necessary.

—Appreciation by Walter Pater.

2 Metapher took its rise from the poverty of language. Man not finding upon every occassion words ready made for their ideas. were compelled to have recourse towords analogous, and transfer them form their original meaning, to the meaning of the required.

-Phil 10ı Inq. P. 11. C. 10.

अनुभूति देना उद्देश्य है तो अलंकारों का चयन जीवन के गौरवपूर्ण स्तरों तथा सौन्दर्य-प्रसारक स्थलों से होना चाहिए। कवि यदि परिहास में सफलता पाना चाहे तो निम्नकोटि के जीवन तथा कुरूप स्थलो से ही चयन आवश्यक है। अलकार विशेष रूप से अर्थालकार अनुभूतिगत विशेषताओ को वर्णित करने के प्रयत्न है। "कहा जाता है कि समस्त अर्थालकारो का मूल उपमा है। यह उपमा कुछ नही, जीवन एव जगत की अर्थवत् छवियो को सम्बन्धित करने का एक प्रकार मात्र है। वैज्ञानिक भी वस्तुओ के सम्बन्ध-सूत्र खोजता है, किन्तु यह सम्बन्ध प्राय: कार्य-कारण मूलक होते है। साहित्यकार जिन सम्बन्धो को देखता व पाता है, वे नितान्त निम्न कोटि के होते है। शायद उनका मूल मानवता की अन्त प्रकृति मे रहता है, शायद वे मूल्य जगत के अनिर्वाच्य नियमो के वाहक होते है। इसका यह अर्थ हुआ कि उपमा अथवा अन्य अलकारो का विधान कोई खामखयाली चेष्टा नही है। वे अलकार जो वस्तुत: मार्मिक है, जो हृदय को स्पर्श करते है, प्रगल्भ कल्पना के रूप मे नही आते, वे अनुभूति का अवियोज्य अग, उसके विधायक अणु-परमाणु रूप होते है, ऐसे अलकार वाणी या कल्पना का विलास मात्र नही होते"[1] एतदर्थ अलकारों के चयन मे सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि वे परिचित हो और विषय से उनका सहज सम्बन्ध हो। यदि कही अलकार दूर देश से लाए गये और उनका सम्बन्ध विषय से बहुत दूर है, तो वे रुचिकर न होगे।

काव्य मे अलंकार-प्रयोग की एक मर्यादा है। अलकार यदि भावो को स्पष्ट एव रमणीय बना कर रसात्मकता मे वृद्धि करते हैं, तो वे अवश्यमेव अभिनन्दनीय है, किन्तु जब वे साधन न बन कर साध्य का रूप धारण करते है, तब वे भार रूप प्रतीत होते है। कविता मे अलकारो का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु वे कविता की आत्मा नही हो सकते। प्रकारान्तर से इसी तथ्य की पुष्टि सुप्रसिद्ध मनीषी कुमार स्वामी ने भी की है।[2] कविता की आत्मा मुख्य रूप से भाव, विचार और कल्पना है। इन्ही के कारण कविता मे स्थायित्व आता है। अलकार कविता-कामिनी को अधिक सुन्दर बना कर उसके स्थायित्व मे अधिक वृद्धि कर सकते हैं, परन्तु मूल पदार्थ का स्थान नही ग्रहण कर सकते और जब वे ऐसा करते हैं, तभी कविता-कामिनी का गला घुँटता है तथा आत्माभाव में अलकार सर्वथा अनाकर्षक और सौन्दर्यहीन प्रतीत होते है। जो शैली अलकारो को केवल सज्जा के लिए प्रयुक्त

---

१ साहित्य-चिंता—डा० देवराज।

2 It is evan harder for us to believe that ornament, or decoration are properly speaking, integral factors of beauty of the work of art, certainly not insignificant parts of it, but rather necessary to its efficacy.

—Figures of speech or Figures of Thought. chap. III. ornament by Anand K. Coomarswami.

करती है, वह कृत्रिम तथा अस्वाभाविक होती है और उससे दुरूहता बढ़ती है। अतः अलकारो मे प्राञ्जलता और रसात्मकता लाने के लिए उनके प्रयोगों मे सतर्कता, स्वाभाविकता, औचित्य और परिस्थिति का ध्यान परमावश्यक है।

● अलंकार और अलंकार्य

भारतीय आचार्यो ने अलकारो का बडा ही सूक्ष्म विवेचन किया है। एतदर्थ भारतीय काव्यशास्त्रियो ने अलकार विषयक जिन सैद्धान्तिक एव व्यावहारिक समस्याओं का सतोषजनक समाधान आज से सैकडो वर्ष पूर्व प्रस्तुत कर दिया था, उन्ही पर पाश्चात्य साहित्याचार्यो ने आधुनिक युग मे चितन प्रारम्भ किया है और जिन्हे सर्वथा अभिनव अनुशीलन जैसा अभिधान प्रदान करते है। क्रोचे के अभिव्यजनावाद की उद्भावना के उपरान्त यूरोप के आधुनिक साहित्य-जगत् मे अलकार और अलकार्य के भेदाभेद का प्रश्न एक नवीन विचार के रूप मे मान्य है, किन्तु भारतीय साहित्यशास्त्रियो के लिए इसमे कोई नवीनता नही दृष्टिगत होती, क्योकि इस प्रश्न का उत्तर वे अतिदीर्घकाल पूर्व दे चुके है। दडी, भामह वामनादि पूर्वालकारिकों ने अलकार-अलकार्य मे अभेद स्वीकार किया है।[1] आनन्दवर्धन, मम्मट, विश्वनाथादि ने अलकार-अलकार्य मे भेद माना है।[2] इन आचार्यो ने इस प्रश्न पर कोई पृथक् विवेचन नही किया है, किन्तु आचार्य कुतक ने अवश्य इस पर सर्वथा स्पष्ट मत व्यक्त किया है। "अलकार और अलकार्य (शब्द तथा अर्थ) को पृथक्-पृथक् करके उनकी विवेचना उस (काव्य की व्युत्पत्ति) का उपाय होने से ही की जाती है। (वास्तव मे तो) अलकार सहित (शब्द और अर्थ अर्थात् तीनों की समष्टि) काव्य है। (अतः तीनो का पृथक्-पृथक् विवेचन उचित नही है, फिर भी उस पृथक्-पृथक् विवेचन से काव्य-सौन्दर्य को ग्रहण करने की शक्ति प्राप्त होती है। अतः उनको अलग-अलग करके विवेचन करने की शैली अलकार ग्रथो मे पाई जाती है) अलकृति का अर्थ है अलकार, जिसके द्वारा अलकृत किया जाए (उसको अलकार कहते है)। इस प्रकार का विग्रह करने से (अलकृत शब्द अलकार के लिए प्रयुक्त होता है)। उसका (काव्यालकार ग्रथो मे) विवेचन अर्थात् विचार किया जाता

---

१ काव्यशोभाकरान् धर्मानलकारन् प्रचक्षते।
ते चाधपि विकल्प्यन्ते कस्तान् कार्त्स्न्येनवक्ष्यति।२। १ काव्यादर्श
सौन्दर्यमलकारः।१,१,२। काव्यालकारसूत्रवृत्ति

२ विवक्षा तत्परत्वेन नागित्वेन कदाचन।२।१८ ध्वन्यालोक
उपकुर्वन्ति तं सन्त मेऽङ्गद्वारेणजातुचित्।
हारादिवलकारास्तेऽनुप्रासोपमादयः॥ ८।६७ काव्यप्रकाश
शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिन.।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारातेऽङ्गदादिवत्॥ १०।१। साहित्यदर्पण

है और जो (उस अलकृति का) अलकरणीय अर्थात् वाचक (शब्द) रूप तथा वाच्य (अर्थ) रूप है, उसका विवेचन किया जाता है (अर्थात्) सामान्य तथा विशेष लक्षण द्वारा उसका स्वरूप निरूपण किया जाता है। किस प्रकार ? अपोद्धृत्य अर्थात् अलग निकाल करके, पृथक्-पृथक् करके जिस समुदाय (रूपवाक्य) मे उन दोनो (अलकार्य शब्द, अर्थ तथा अलकृति) का अतर्भाव है, उसमे विभक्त करके (उनका विवेचन काव्यालकार-ग्रथो मे किया जाता है)। किस कारण से (विवेचन किया जाता है)? उस (काव्य के समझने) का उपाय होने से। तत् काव्य का ग्राहक है। उसका उपाय तदुपाय हुआ। उसका भाव तदुपायता हुई। उसके कारण मे (विवेचन किया जाता है)। इसलिये इस प्रकार का विवेचन काव्युत्पत्ति का उपाय हो जाता है। (केवल इसी लिए शब्द और अर्थ रूप अलकार्य तथा उनके अलकारो का अलग-अलग विवेचन काव्यालकार ग्रथो मे किया जाता है। वास्तव मे तो काव्य की दृष्टि से उन तीनो की अलग अलग सत्ता नही है, अपितु उनकी समष्टि का ही नाम काव्य है। व्यष्टि का कोई महत्व नही)। परन्तु समुदाय के अतःपाती असत्य पदार्थों का भी (कभी-कभी) व्युत्पत्ति के लिए (शास्त्रो मे) विवेचन पाया जाता है। जैसे (वैयाकरणो के मत मे वाक्य के अन्तर्गत पदो का और पदो के अन्तर्गत वर्णो का अलग-अलग कोई अस्तित्व नही है, फिर भी) पदो के अन्तर्गत प्रकृति प्रत्यय का और वाक्य के अन्तर्गत पदो का अलग-अलग विवेचन व्याकरण-ग्रथो मे किया जाता है। इसी प्रकार काव्य मे शब्द तथा अर्थरूप अलकार्य और अलकारो की (अलग-अलग स्थिति न रहते हुए भी उनको अलग-अलग करके विवेचन किया जाता है)। यदि इस प्रकार काव्य-व्युत्पत्ति का उपाय होने से असत्य भूत (अलकारो तथा अलकार्य अथवा शब्द तथा अर्थ) उन दोनो का पार्थक्य (मानकर अलग-अलग निरूपण) किया जाता है तो फिर (वस्तुत) सत्य क्या है, इसको कहते है 'तत्व सालकारस्य काव्यता'। इसका तात्पर्य यह हुआ कि अलकार सहित अर्थात् अलकरण सहित, सम्पूर्ण अर्थात् अवयवरहित समस्त समुदाय की काव्यता अर्थात् कविकर्मत्व है। इसलिए अलकृत (काव्य का ही काव्यत्व है अर्थात् अलकार काव्य का स्वरूपाधायक धर्म है न कि काव्य मे अलकार का योग होता है"। अत साहित्यदर्पणकार ने काव्य प्रकाश-

---

१ अलंकृतिरलङ्कार्यमपोद्धृत्य विवेच्यते।
तदुपायतया तत्त्व सालंकारस्य काव्यता ॥१।६॥

अलंकृतिलङ्करणाम्। अलं क्रियते य येनिविगृह्य। सा विवेच्यते विचार्यते। यच्चालंकार्यमलङ्करणीयं वाचकरूपं वाच्यरूपञ्च तदपि विवेच्यते। तयो सामान्यविशेषलक्षणद्वारेण स्वरूपनिरूपणं क्रियते। कथम्, अपोद्धृत्य। निष्कृष्य, पृथक्-पृथगवस्थाप्य, यत्र समुदायरूपे तयोरन्तर्भावस्तस्माद्वि-भज्य। केन हेतुना, तदुपायतया। तदिति काव्यं परामृश्यते। तस्योपायस्त-दुपायस्तस्य भावस्तदुपायता तया हेतुभूतया। तस्मादेवविधो विवेक

कार के लक्षण का खंडन करते हुए जो अलंकारों को काव्य का शोभाधायक धर्म माना है, स्वरूपधायक नहीं, वह कुंतक के अभिप्राय के विपरीत है। वामन के इन दो सूत्रो 'काव्यग्राह्यमलकारात्' तथा 'सौन्दर्यमलकार.' इन दो सूत्रो द्वारा कुंतक के ही मत का समर्थन होता है।

वक्रोक्तिजीवितकार ने प्रथम उन्मेष मे ही स्वभावोक्ति मे अलकारता-निषेध प्रसग मे पुन: अलकार-अलकार्य का विवेचन किया है। आचार्य कुंतक का कथन है कि यदि स्वभावोक्ति को अलकार मान लिया जाय तो अलकार्य किसे कहा जाएगा ? इस पर वक्रोक्तिकार प्रश्नोत्तर शैली मे स्वभावोक्तिवादी दृष्टिकोण से शका उठाकर उसका वक्रोक्तिवादी दृष्टिकोण से समाधान करते हुए कहते है कि "यह दोनो (शब्द और अर्थ) अलकार्य होते है और चतुरतापूर्ण शैली से कथन (वैदग्ध्यभङ्गीभणिति) रूप वक्रोक्ति ही उन दोनो (शब्द का अर्थ) का अलकार होती है।"[1]

"पूर्व पक्ष आपने—पहले यह सिद्धान्त स्थापित किया है कि (अलंकार और अलकार्य के) विभाग से रहित सालकार (शब्दार्थरूप) वाक्य का ही काव्यत्व है तो आप यह क्यो कहते है ?

उत्तर पक्ष—ठीक है। (हम अलकार्य और अलकार का वास्तविक विभाग नही मानते हैं)। किन्तु (हमारे मत मे) वहाँ भेद विवक्षा (अपोद्धारबुद्धि) से पूर्वोक्त (१।१६ मे वर्णित) वर्ण पद-न्याय से अथवा वाक्य-पद न्याय से विभाग किया जा सकता है। यह कह ही चुके है। (इसीलिए यहाँ भी अलकार्य तथा अलकार का भेद होना आवश्यक है, भले ही वह पारमार्थिक न हो।)"[2]

काव्यव्युत्पत्त्युपायता प्रतिपद्यते। दृश्यते च समुदायान्त. पातिनामसत्यभूताना-मपि व्युत्पत्तिनिमित्तमपोद्धृत्य विवेचनम्। यथा पदान्तर्भूतयो: प्रकृतिप्रत्ययो., वाक्यन्तर्भूताना पदानाञ्चेति।

यद्येवमसत्यभूतोऽप्यपोद्धारस्तदुपायतया क्रियते तत् कि पुन: सत्यमित्याह—'तत्त्व सालंकरस्य काव्यता'।

अयमत्र परमार्थ.। सालङ्कारस्यालङ्करणसहितस्य सकलस्य निरस्तावयवस्य सत: काव्यता कविकर्मत्वम्। तेनालकृतस्य काव्यत्वमिति स्थिति., न पुन काव्यस्यालङ्कारयोग इति।।६।। वक्रोक्तिजीवितम्।

१ उभावेतावलङ्कार्यौ तयो: पुनरलकृति.।
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्यभङ्गीभाणितिरुच्यते ।।१।१०।। —वक्रोक्तिजीवितम्।

२ अलकारकृता येषा स्वभावोक्तिरलकृति:।
अलकार्यतया तेषा किमन्यदवतिष्ठते ।। १ ।११ ।।
ननु च पूर्वमेवावस्थापित यत्, वाक्यस्यैवाविभागस्य सालकरस्य काव्यात्ममिति (१।६) तत्किमर्थमेतदभिधीयते ? सत्यम्। किन्तु तत्रासत्यभूतोऽपि, अपोद्धार-बुद्धिविहितोविभाग: कर्तुं शक्यते वर्णपदन्यायेन वाक्यपदन्यायेन चेत्युक्तमेव।
—वक्रोक्तिजीवितम्

इस प्रकार आचार्य कुंतक तत्वत· अलंकार और अलंकार्य में अभेद मानते हैं, किंतु साहित्य-सौन्दर्य को समझने के लिये व्यवहाररूप मे पृथक् विवेचन भी मान्य है और साहित्य के लिए वह उपयोगी होता है। ऐसा केवल साहित्यशास्त्र मे ही नही, अपितु अन्य शास्त्रो मे भी होता है, जिसका उदाहरण आचार्य कुंतक ने स्वय दिया है।

पाश्चात्य साहित्य-जगत मे प्राचीन साहित्यकारो ने अलंकार और अलंकार्य मे पार्थक्य माना है, किंतु आधुनिक काल मे इटली के बेनेडेटो क्रोच ने इस मान्यता का खडन करते हुये लिखा है कि "स्वयं इस बात की जिज्ञासा की जा सकती है कि अभिव्यक्ति (अलंकार्य) मे अलंकार का किस प्रकार नियोजन किया जा सकता है ? क्या बहिरग भाव से ? ऐसी परिस्थितियो मे वह अभिव्यक्ति से सदा ही पृथक् रहेगा। क्या अतरगभाव से ? ऐसी दशा मे वह अभिव्यक्ति का साधक न होकर बाधक हो जायगा अथवा उसका अग बनकर अलंकार ही न रह जाएगा और तब अभिव्यक्ति का ही एक अग बन जाएगा"।[1] क्रोचे मूलत· एक तत्ववादी दार्शनिक हैं। वह द्वैतवाद के विरोधी हैं। क्रोच-दर्शन के प्रख्यात समालोचक विल्डन कार ने लिखा है कि "अन्तिम अर्थात् पूर्ण दार्शनिक योजना प्रस्तुत करने का दावा क्रोचे का नही है, अपितु एक ऐसे दार्शनिक सिद्धात की स्थापना है जो उसे द्वैततत्व-कल्पना से मुक्ति प्रदान करतीहै"।[2] इसी कारण कुंतक ने अभिव्यक्ति-विभाजन का विरोध किया है। क्रोचे ने साहित्य-विभाजन के विरोध मे यहाँ तक कह दिया कि विभाजनसे सम्बन्धित समस्त पुस्तकें यदि जला दी जायें, तो हानि न होगी। अलंकार-अलंकार्य के भेदाभेद के इस शास्त्रीय विवेचन को अब हम एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करेगे।

दृढ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओ पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकती दूर ताराएँ ज्यो हो कही पार।
—'निराला'

---

1 One can ask oneself how an ornament can be joined to expression. Externally ? In that case it must always remain separate. Internally ? In that case either it does not assist expression and mars it; or it does form part of it and is not an ornament but a constituent element of expression indistinguishable from the whole.

Aesthetic, ch IX, P. 69.

2 Croce's claim is not to have presented a final system of philosophy which finally delivers it from reproach of a dualistic hypothesis.

—The Philosophy of Benedetto Croce. P. 209.

इन पंक्तियों में कवि ने राम-रूप का वर्णन किया है। भगवान राम युद्ध स्थल से लौट रहे है। उनकी जटाएँ बिखर कर भुजाओ, वक्ष और पीठ पर फैल गई है तथा नेत्र चमक रहे है। राम के इस रूप की उपमा पहाड से दी गई है जो रात्रि के अधकार से आच्छादित हो चला है और जिसके ऊपर दो तारिकाएँ चमक रही हैं। कवि ने राम के रूप की विराटता का वर्णन करने का प्रयत्न किया है। राम के शरीर को विशालता के लिये पर्वत, शरीर पर फैली हुई कुतल राशि के लिए अधकार और दोनो नेत्रो के लिये दो तारिकाओ का अप्रस्तुत-विधान किया गया है। यह साम्यारोपण अत्यत समीचीन एव रम्य है। इसमे पाठक को राम के रूप की विराटता की अनुभूति होती है। इस प्रकार सस्कृत-काव्यशास्त्रियो ने वस्तु, भाव और अलकार की सत्ता को व्यवहार रूप मे पृथक् माना है, किन्तु क्रोचे को यह विवेचना मान्य नही है, क्योकि कवि की यह अनुभूति अखड है और इसलिए उनकी अभिव्यक्ति भी अखड होनी चाहिये। उसका उपर्युक्त ढग से विभाजन नही किया जा सकता।

तो, क्या भारतीय आचार्यों को अनुभूति-अभिव्यक्ति की अखण्डता का ज्ञान नही था? उन्हे उसका ज्ञान था और शताब्दियो पूर्व हो चुका था। सस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास मे इस पर पर्याप्त शास्त्रार्थ प्राप्त होता है। आचार्यों ने बतलाया है कि "पदो से भिन्न उनके अवयवभूत प्रकृति प्रत्यय अथवा वर्णों की और वाक्य से भिन्न उसके अवयव पदो की कोई पृथक् वास्तविक स्थिति नही है, अपितु केवल 'पदस्फोट' अथवा केवल 'वाक्यस्फोट' ही यथार्थ है।"[१] आचार्य कुतक ने भी इसे स्वीकार किया है, किन्तु काव्य-सौन्दर्य को हृदयगम करने के लिये अलकार-अलंकार्य मे भेद आवश्यक माना है।

अनुभूति-अभिव्यक्ति की अभेद-स्थापना के कारण क्रोचे किसी भी कलाकृति के विभाजन के विरुद्ध है। उनका कहना है कि इस प्रकार का विभाजन उस कृति को उसी प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार किसी सप्राण शरीर को अंगो मे विभक्त कर देने से वह शव-रूप मे परिवर्तित हो जाता है। पर उन्होने उन प्राणियो पर भी ध्यान रक्खा है जो कट कर कटे हुए अंशो से कई प्राणियो को जन्म देते है। इसी से उन्होने कहा है कि यदि कोई कलाकृतियो का ऐसा विभाजन कर सके, जिससे उसके विभाजित अंश भी नव-नव विजृम्भण के द्वारा अभिनव अभिव्यंजनओ के रूप मे उत्पन्न हो सके, तो उसका प्रमाण आवश्यक है।[२] क्रोचे की इस आलोचना मे

---

१ पदे न वर्णा विद्यन्तेवर्णोष्वयवा न च।
वाक्यात्पदानामत्यत प्रविवेको न कश्चन॥६८॥
—महामहोपाध्यायकौण्डभट्ट. वैयाकरणभूषणसार, स्फोट-निरूपण-प्राकरण।

But such division annihilates the work, as dividing the organism into heart, drain, nerves. muscles and so on, turns the

पर्याप्त औचित्य है। भारतीयों द्वारा काव्य के विविध रूपों के विभाजन से काव्य-सौदर्य उद्घाटित हुआ है। यदि ऐसा न किया गया होता तो भारत मे काव्यशास्त्र का अस्तित्व ही समाप्त हो गया होता।

हिन्दी-साहित्य मे सर्वप्रथम आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने क्रोचे की इस कला-समीक्षा का बड़े ही प्रबल शब्दो मे खण्डन किया कि "अलकार-अलकार्य का भेद मिट नही सकता। उक्ति चाहे कितनी ही कल्पनामयी हो, उसकी तह मे कोई प्रस्तुत अर्थ अवश्य ही होना चाहिए। इस अर्थ से या तो किसी तथ्य की या भाव की व्यंजना होगी। इस अर्थ का पता लगाकर इस बात का निर्णय होगा कि व्यंजना ठीक हुई या नही। अलकारो (अर्थालकारो) के भीतर भी कोई-न कोई अर्थ व्यग्य रहता है, चाहे उसे गौण ही रहिए।"[1] आगे चलकर इसी प्रसग मे पुन कहा है कि "इस अलकार आदि के नाना भेद-निरूपण क्रोचे के अनुसार कला के निरूपण मे कोई योग न देकर तर्क या शास्त्रपक्ष मे सहायक होते है। उन सब का मूल्य वैज्ञानिक समीक्षा मे है, कला-निरूपिणी समीक्षा मे नही। इस सम्बन्ध म मेरा वक्तव्य यह है कि वैज्ञानिक या विचारात्मक समीक्षा ही कला-निरूपणी समीक्षा है, उसी का नाम समीक्षा है। उसके अतिरिक्त जो कल्पनात्मक या भावात्मक पदावली व्यवहृत होगी, वह समीक्षा न होगी, किसी कविता का आधार लेकर खड़ा किया हुआ एक हवाई महल होगा, धुएँ का का धरहरा होगा।"[2] आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने आचार्य शुक्ल की इस स्थापना की आलोचना की है कि रस और अलकार, भावपक्ष और शैलीपक्ष का पृथक्करण और आत्यन्तिक विच्छेद शुक्ल जी का दूसरा साहित्यिक सिद्धात है। × × × न तो भारतीय साहित्याचार्य और क्रोचे जैसे नवीन सिद्धात-सस्थापक वस्तु और शैली मे इस प्रकार का कोई भेद मानते है।"[3] इस विषय मे मेरा मत है कि तत्वत आचार्य शुक्ल को अलकार-अलकार्य का अभेद अमान्य नहीं था, किन्तु वह व्यवहारगत भेद मानते थे, क्योकि उसके बिना तो काव्यशास्त्र की सत्ता ही समाप्त हो जाती है। डा० नगेन्द्र ने पौर्वात्य-पाश्चात्य विचारको की समीक्षा करने के पश्चात् आचार्य कुतक के ही मत का समर्थन किया है कि "इन दोनो की सापेक्षिक सत्यता पर यदि विचार किया जाय तो भारतीय आचार्य की ही

---

living being into a corpse. It is true that there exist organnisms in which the division gives place to more living things, but in such a case and if we transfer analogy to the aesthetic fact, we must conclude for a multiplicity of germs of life, that is to say, for a speedy reelaboration of the single parts into new single expressions. —Aesthetic P. 33-34.

१ चितामणि (द्वितीय-भाग), काव्य मे अभिव्यजनावाद पृ० २०७

२ ,, ,, ,, पृ० २०६

३ प्रो० जगन्नाथ प्रसाद मिश्र की पुस्तक 'साहित्य की वर्तमानधारा' की भूमिका

स्थिति अधिक विश्वस्त है। दोनो मे व्यवहारगत भेद न मानने से न केवल समस्त साहित्यशास्त्र वरन् भावशास्त्र और विचारशास्त्र का भी अस्तित्व लुप्त हो जाता है। विदेश के साहित्यमनीषी भी प्राय इसी के पक्ष मे है कि तत्वदृष्टि से अलकार और अलकार्य मे अभेद होते हुए भी व्यवहार-दृष्टि से दोनो मे भेद-भावना अनिवार्य है।"[1] साहित्य के लिये यही स्थापना उचित और उपादेय है।

● अलंकार और रसानुभूति

भारतीय साहित्याचार्यों ने रस को ही काव्य का सर्वोपरि तत्व माना है। रसानुभूति मे अलकारों का बहुत महत्वपूर्ण योग है। कविगण जिस भाषा-शैली द्वारा काव्य-रचना करते है उससे पाठको के मन मे प्रसुप्त भाव जाग्रत होने लगते हैं और उन्हे काव्य मे व्याप्त रस की अनुभूति होने लगती है। रससिद्ध कवि वही हो सकते है जो भावनाओ का बिम्बग्रहण कराने मे सक्षम हैं। बिम्बग्रहण कराना कवि की वाणी पर आश्रित है और कवि-वाणी मे अलकारो का प्रमुख स्थान है। अलकारो द्वारा भावो का गोचर प्रत्यक्षीकरण अधिक सुन्दरता से किया जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने कहा है कि "अलकार चाहे अप्रस्तुत वस्तु-योजना के रूप मे हों (जैसे उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा आदि), चाहे वाक्य-वक्रता के रूप मे (जैसे अनुप्रास) लाये जाते हैं वे प्रस्तुत भाव या भावना के उत्कर्ष के साधन के लिये ही है। मुख के वर्णन मे जो कमल, चद्र आदि सामने रक्खे जाते हैं वह इसलिये जिसमे इनकी वर्ण-रुचिरता, कोमलता, दीप्ति इत्यादि के योग से सौदर्य की भावना और बढ़े।"[2] आचार्य मम्मट के अनुसार भी काव्य मे अलकारों का प्रयोग चमत्कार शब्द-वैचित्र्य के लिये अपितु अर्थ-वैचित्र्य और रसोत्कर्ष-अग के रूप मे किया जाना चाहिए। रसोत्कर्ष भावनाओ के जागरण पर होता है और अलकार भावनाओ के उत्कर्ष के प्रधान उपादान है।

यत्नपूर्वक अलंकार-विधान से काव्य मे सौदर्य का समावेश नही हो सकता। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने कहा है कि स्वाभाविक रूप से किए गए अलकार-विधान से ही काव्य मे रमणीयता आती है। वे अलकारो मे चमत्कार के स्थान पर रमणीयता को ही आवश्यक मानते है, जिसमे शब्द-कौतुक और अलकार-सामग्री की विलक्षणता नही रहती, बल्कि भावरूप क्रिया या गुण का उत्कर्ष करने की शक्ति रहती है। उन्होने कहा है कि भावानुभव वृद्धि करने के गुण का नाम ही अलकार की रमणीयता है। अलंकारों की यह सहज रमणीयता ही काव्य-रमणीयता की सर्जना करती है और रसानुभूति मे योग देती है। रसानुभूति मे श्रोता या पाठक की चितवृत्तियाँ अन्वित हो जाती है। अलकारो द्वारा काव्यगत अर्थ का सौदर्य भी चित्तवृत्तियो को प्रभावित

---

१ रीति-काव्य की भूमिका पृ० ८४
२ चितामणि (कविता क्या है?) पृ० १८१

कर भाव-गाम्भीर्य तक पहुचा देता है। कवि की भावनाओं का यथातथ्यरूप पाठक के सम्मुख आ जाता है और रसानुभूति अधिक तीव्र हो जाती है। इस प्रकार अलंकारों और रसों का मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध भी स्थापित हो जाता है।

काव्य मे अलकार-प्रयोग की एक मर्यादा है। अलकार यदि भावो को स्पष्ट एवं रमणीय बनाकर रसात्मकता में वृद्धि करते है, तो वे अवश्यमेव अभिनन्दनीय है; किन्तु जब वे साधन न बनकर साध्य का रूप धारण करते है, तब वे भाररूप प्रतीत होते है। कविता मे अलकारों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है, किन्तु वे कविता की आत्मा का स्थान नही ग्रहण कर सकते। कविता की आत्मा मुख्यरूप से भाव, विचार और कल्पना है। इन्ही के कारण काव्य मे स्थायित्व आता है। अलकार कविता-कामिनी के स्थायित्व को और अधिक सुन्दर बना सकते हैं, परन्तु मूल पदार्थ का स्थान नही ग्रहण कर सकते और जब वे ऐसा करते है, तभी कविता-कामिनी का गला घुटता है तथा आत्माभाव मे अलकार सर्वथा अनाकर्षक और सौदर्यहीन प्रतीत होते है। जो शैली अलकारो को केवल सज्जा के लिये प्रयुक्त करती है, वह कृत्रिम तथा अस्वाभाविक होती है और उससे दुरूहता बढती है। अत अलकारो मे प्राञ्जलता एव रसात्मकता लाने के लिये उनके प्रयोगो मे सतर्कता, स्वाभाविकता औचित्य और परिस्थिति का ध्यान है।

● अलंकार और मनोविज्ञान

मानव स्वभावत. सौदर्यप्रिय प्राणी है। उसकी यह सौदर्यप्रियता उसके जीवन के अथ से लेकर इति तक के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रवेश पाती है। वह सर्वदा सुन्दर वस्तुओ का ही चयन कर कार्यों को सुन्दरता से सम्पादन करने का आकाक्षी रहता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि मे उसकी यही प्रवृत्ति अलकार-विधान मे भी कार्य करती है। कतिपय लोगो के अनुसार तो सौदर्य ही काव्य है। यदि यह मत भी मान लिया जाय तो जिस प्रकार एक सुन्दरी अपने सौदर्य मे और अधिक वृद्धि करने के लिये अपने को वस्त्राभूषणो से सुसज्जित करती है, उसी प्रकार कवि भी कविता-कामिनी को वाणी-विभूषणो मे अलकृत कर उसे रमणीय से रमणीयतम बना कर अभिव्यक्ति मे अत्यधिक प्रभविष्णुता लाने का प्रयत्न करत है।

मानव-हृदय और अलकारो का घनिष्ठ सबध है। मनुष्य कविता मे उन्ही के द्वारा अपनी सहज कलात्मक प्रवृत्ति का परिचय देता है। अधिकांश काव्यालंकारो का आधार मनोविज्ञान है, क्योंकि वे हमारी रसानुभूति मे सहायक होते हैं और रस तथा मनोविज्ञान का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस प्रकार अलकारो का भी मनोविज्ञान से सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। हमारी वाणी विभूषित होने का कारण भावोद्दीपन है। "जब हमारी भावना उद्दीप्त हो जायगी तो हमारी वाणी भी आप-से-आप उद्दीप्त हो जायगी। भावना के उद्दीपन का मूल कारण है मन का ओज, जो मन को उद्दीप्त कर देता है। मन के ओज का सहज माध्यम है आवेग, और वाणी

के ओज का सहज माध्यम है अतिशयोक्ति । इसी प्रश्न को दूसरे प्रकार से भी हल किया जा सकता है । हमारे अलंकार-प्रेम की प्रेरक प्रवृति है, आत्म-प्रदर्शन और प्रदर्शन मे अतिशय का तत्व अनिवार्यत होता है । इस प्रकार अलकृत वाणी (स्पष्ट शब्दो मे) अलकार का मूल रूप (अतिशयोक्ति) ठहरती है । अतिशयोक्ति का अर्थ है असाधारण उक्ति । वास्तव मे जैसा कि अभिनव के उद्धरण से स्पष्ट है कि भामह ने वक्रता की और दण्डी ने अतिशय की बहुत-कुछ एक-से ही शब्दो मे परिभाषा की है । दोनो का तात्पर्य लोकाक्रातगोचरता से ही है, इसलिये अतिशयोक्ति अथवा वक्रोक्ति किसी को भी अलकार-सर्वस्व माना जा सकता है । यह तो मूल प्रेरणा की बात हुई । व्यावहारिक धरातल पर आकर भी हम अलकारो के कुछ अपेक्षाकृत मूर्त आधार निर्धारित कर सकते है । यहाँ भी यदि वही प्रश्न फिर उठाया जाय कि हम अलकार का प्रयोग किसलिये करते है तो व्यवहारतल पर भी उसका एक ही स्पष्ट उत्तर है; उक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये । ऐसा करने के लिये हम सदृशलोकमान्य वस्तुओ मे तुलना के द्वारा अपने कथन को स्पष्ट बना कर उसे श्रोता के मन मे अच्छी तरह बैठाते है, बात को बढा-चढा कर उसके मन का विस्तार करते है, बाह्य वैषम्य आदि का नियोजन करके उसमे आश्चर्य की उद्भावना करते हैं, अनुक्रम अथवा औचित्य की प्रतिष्ठा करके उसकी वृत्तियो को अन्वित करते हैं । बात को घुमा-फिरा कर वक्रता के साथ कह कर उसकी जिज्ञासा उद्दीप्त करते हैं, अथवा बुद्धि की करामात दिखाकर उसके मन मे कौतूहल उत्पन्न करते हैं ''[१] इस प्रकार स्पष्ट है कि अलकारों का मनोविज्ञान से सान्द्र सम्बन्ध है ।

काव्य की मूल प्रेरणा के विषय मे साहित्य-ससार में मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अधुनातन विचार यह है कि काव्य के मूल मे यौन भावना है । फ्रायड के इस विचार को अनेक पौरस्त्य और पाश्चात्य विद्वानो की स्वीकृति प्राप्त हुई है ।[२] यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र, काव्य की मूल प्रेरणा के विषय मे इस प्रकार की विचारधारा को स्वीकृति नही प्रदान करता है, फिर भी हम यदि इसे स्वीकार करें तो काव्य सौंदर्य के विषय मे यह सिद्धात और अधिक सत्य सिद्ध होता है, अत अलकार-योजना के मूल में भी यौन-भावना ही कार्य करती है, इस कथन मे कोई विशेष अनौचित्य नही प्रतीत होता ।

---

१ डा० नगेन्द्र रीति-काव्य की भूमिका, पृष्ठ ८६

2 (a) The stuff of the sexual life is the stuff of art, if it is expressed in one channel it is lost for the other.
—Havelock Ellis : Psychology of Sex,—Vol VI, P. 173

(b) Much of what is best in religion, art and life, owes its charm to the progressively widening irradiation of sexual feeling.
—Dr. Bhagavan Das : Science of Emotions, P, 421

● प्रतीक और मनोविज्ञान

हिन्दी-कविता मे प्रतीकों का प्रयोग प्राय अलकार-प्रणाली के अन्तर्गत उपमान के रूप मे हुआ है। अत. यहा प्रतीको पर भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विचार कर लेना आवश्यक है।

प्रतीको का प्रसार भाषा, साहित्य, कला, धर्म, दर्शन और यहाँ तक कि मानव के दैनिक जीवन तक है।[1] भाषा वैज्ञानिको का कथन है कि भाषा का आदि रूप प्रतीको में ही था और ये ही प्रतीक तब मनोभावो, इच्छाओ आदि की अभिव्यक्ति थे। प्रतीकवाद का प्रारम्भ ही सृष्टि के प्रथम पुरुष के प्रथम प्रस्फुटित शब्दों से माना जाता है,[2] जिसमे मनुष्य के विचार, कल्पना, मनोभावादि निहित रहते है।[3] बिना अर्थ के शब्द का कोई महत्त्व नही है; अत. शब्द विचारो के प्रतीक है।

वैसे तो सम्पूर्ण विचार-क्षेत्र मे प्रतीक प्रयुक्त होते है, किन्तु साहित्य मे इनका विशेष महत्व है। हिन्दी कवियो ने प्रतीको का पर्याप्त प्रयोग किया है। आग्ल-कवियो मे स्विनबर्न और रोसटी इस कला म पारगत थे। साधारणतया प्रतीको का अर्थ सक्षिप्तता, स्पष्टता, बोधगम्यता, सौन्दर्य-बोधात्मकता, लाक्षणिकता आदि से लिया जाता है, किन्तु मनोविश्लेषण मे प्रतीक अवचेतन-मन की दमित-वासनात्मक (Erotic) आकाक्षाओ की अभिव्यक्ति माने जाते है। य दमित इच्छायें सवेगात्मक सतुष्टि के लिये वेष-परिवर्तन कर प्रतीको के रूप मे अभिव्यक्त होती है।[4]

---

1 Man lives in a symbolic universe. Language, myth, art and religion are parts of this Universe. They are the varied threads which weave the symbolic net, the tangled web of human experience.

—An Essay on Man by Ernest Cassirer, quoted in Exploring Poetry by M. L. Rosenthaland and A. J. M. Smith, P. 497.

2 Symbolism began with the first words uttered by the first man, as he named every living thing, or before them in heaven God named the world into being.

Arthur Symons : The Symbolist Movement in Literature.

3 The word is a symbol, and its meaning is constituted by the ideas, images and emotions which it raises in the minds of the hearers.

—Whitehead : Symbolism its Meaning and Effects, P. 2

4 A final means of expression of repressed material one which lends itself to very general use on account of its especial suitability for disguising the unconcious and adopting it (by compromise formation) to new contents of unconciousness, is the

प्रतीकों के विषय में यह विचारधारा फ्रायड और उसके अनुयायियों की है। जुंग ने फ्रायड के प्रतीक-सिद्धान्त की आलोचना की है कि फ्रायड को प्रतीक (Symbol) के स्थान पर संकेत (Sign) प्रयोग करना चाहिये था। जुंग ने प्रतीक को संकेत तथा रूपक (Allegory) से भिन्न बतलाते हुए कहा है कि प्रत्येक प्रतीक एक मनोवैज्ञानिक सूत्र और सिद्धान्त के प्रतिनिधिरूप मे मानव-जीवन का पथ-प्रदर्शन करता है। जुंग के अनुसार प्रतीक केवल स्थानापन्न नहीं हैं, अपितु उनका एक विशेष अर्थ और महत्व है,[1] और इस प्रकार प्रतीक अवचेतन-मन के व्याख्याता है।

प्रतीक द्वयर्थक होते है—वाह्य और आन्तरिक। आन्तरिक अर्थ ही वास्तविक होता है। प्रतीकों के अर्थ में गत्यात्मकता होती है। एक ही प्रतीक विभिन्न विचारों का द्योतक हो सकता है।[2] यद्यपि यह कहना ठीक है कि मानवी प्रकृति मे सर्वत्र कुछ न कुछ तत्व एक से है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि मानवी-प्रक्रियाओं के विभिन्न क्षेत्रों के विभिन्न व्यक्तियों द्वारा एक ही ढग की अभिव्यक्ति हो। यह अवश्य

---

symbol. By this term we understand a special kind of indirect representation which is distinguished by certain peculiarities from the simile, metaphor, allegory, allusion and other forms of pictorial representation of thought material (after the manner of rebus) to all of which it is related. The symbol represents an almost ideal union of all these means of expression, it is a substitutive, perceptual replacement, an expression for something hidden, with which it has evident characteristics in common or is coupled by internal associative connections.
—E. Jones : Papers on Psycho-analysis, P. 163.

1 Every view which interprets the symbolic expression as an analogous or abbreviated expression of a known thing is semiotic. A conception which interprets the symbolic expression as the best possibl formulation of a relatively unknown thing which cannot conceivably, therefore, be more clearly or characteristically represented is symbolic. A view which interprets the symbolic expression as an intentional transcription or transformation of a known thing is allegoric . Every psychological phenomenon is a symbol when we are willing to assume that it purports or signifies something different and still greater, something therefore which is withheld from the present knowledge.
—C. G. Jung : Psychological Types, P. 601.

2 A Symbol can express different thoughts at the same time,
—Pfister : Psycho-analytic Method, P. 183.

सत्य है कि सच्चे प्रतीक अन्तश्चेतना की अभिव्यक्ति होते हैं, जिन्हे न उससे अच्छे ढंग से समझा जा सकता है और न भिन्न ढग मे व्यक्त किया जा सकता है।[१] विद्वद्वर कुमारस्वामी ने ही प्रतीक-भाषा (Language of Symbols) और सकेत-भाषा (Language of Signs) का अन्तर स्पष्ट करते हुए इसी प्रकार का विचार प्रकट किया है।[२] विश्व-विकास-प्रक्रिया के अन्तर्गत विश्व का वाह्यरूप तो परिवर्तित होता रहता है, किन्तु मूल तत्व सदैव एक रूप रहता है। अर्थात् मूल अपरिवर्तनीय है। कभी भी नवीन तत्वो और सत्यो की सृष्टि नही होती। यह सम्भव है कि प्राचीन तत्व वेष-परिवर्तन कर हमारे समक्ष प्रस्तुत हो और हम उन्हे नवीन स्वीकार कर ले, किन्तु वास्तविकता यह नही है। यह तो केवल रूप और अभिव्यक्ति की भिन्नता है, मूल तत्व की नही। यही बात कला के लिए भी सत्य है। हम जब प्राचीन और आधुनिक कलाओं का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते है, तो दोनों के वहिरग मे अवश्य अन्तर प्रतीत होता है, किन्तु अन्तरग मे एक ही तत्व उभयनिष्ठ दृष्टिगत होता है।

—(•)—

---

1 The true symbol should be understood as the expression of an intuitive perception which can as yet neither be apprehended better nor expressed differently.

—C. G. Jung · Contribution to Analytical Psychology, P 232.

2 Coomar swami : Transformation of Nature, P. 126.

२

अलंकार-वर्गीकरण

प्राय: सभी साहित्याचार्यों ने साहित्य मे शब्द और अर्थ की अभिन्नता को ोकार किया है।[१] भारतीय साहित्यशास्त्र के आद्यालंकारिक आचार्य भामह ने ाद और अर्थ के अन्योन्याश्रित तत्व के आधार पर ही अलकारो को दो भागो मे ाजित किया है—शब्दालकार और अर्थालकार। तत्पश्चात् विभिन्न आचार्यो द्वारा ोकृत विभिन्न अलकारो को भिन्न-भिन्न वर्गों मे रक्खा गया है, किन्तु यह विभाजन केतिक है। इसका सर्वप्रथम स्पष्ट निर्देश आगे चलकर उद्भट ने अपने 'काव्या-कार-सारसग्रह' मे किया है। उद्भटकृत अलकारो का वर्गीकरण इस प्रकार है:—

अ—वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगत.पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।। रघुवश-कालिदास।

ब—शब्दार्थ सहितौ काव्यम् ।। काव्यालकार-भामह।

स—ननु शब्दार्थो काव्यम् ।। काव्यालकार-रुद्रट।

द—शब्दार्थो सहितौ वक्र कविव्यापारशालिनि।
बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं ।। वक्रोक्तिजीवितम्-कुतक।

य—तद्दोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन. क्वापि ।। का० प्र०-मम्मट।

र—गिरा अर्थ जल-बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दउँ सीता-राम-पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ।।
—रामचरित मानस, तुलसीदास।

ल Word and sense which directly aim at, and produce, pleasure are poetry.
—Definition of poetry or kavy by D. T. Tatacarya Siromani.

व What is poetry, but the thoughts and words in which emotion spontaneously embodies itself Thoughts on poetry and its varieties in Dissertions and Discussions. by J. S Mill.

प्रथम वर्ग—पुनरुक्तवदाभास, छेक, वृत्ति, लाट, अनुप्रास, रूपक, दीपक उपमा, प्रतिवस्तूपमा (चार शब्द के फिर चार अर्थ के। (८)।

द्वितीय वर्ग—आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना समासोक्ति, अतिशयोक्ति। (६)।

तृतीय वर्ग—यथासंख्य, उत्प्रेक्षा, स्वभावोक्ति। (३)।

चतुर्थ वर्ग—प्रेयस्वत्, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्ति, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट। (७)।

पंचम वर्ग—अपन्हुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्ययोगिता, अप्रस्तुतप्रशंसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, संकर, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति। (१)।

षष्ठ वर्ग—संदेह, अनन्वय, समृष्टि, भाविक, काव्यलिग, दृष्टान्त। (६)

यद्यपि उद्भट द्वारा किया गया यह अलकार-विभाजन वैज्ञानिक नही है, लेकिन इसमे हमे तत्कालीन प्रचलित विभिन्न अलकार-सम्प्रदायो और अलंकार-विकास की विभिन्न दशाओ का ज्ञान होता है। उद्भट के पूर्ववर्ती आचार्य दंडी और परवर्ती या समकालीन आचार्य वामन के ग्रथो मे किसी प्रकार का अलकार वर्गीकरण नही प्राप्त होता है। उन्होने तो शब्द और अर्थ के आधार पर ही अलंकारों का निरूपण किया है। हां, वामन के उपमा-प्रपंच मे अवश्य मूलतत्व पर समाधारित वर्गीकरण के लिये सहायता प्राप्त होती है और सम्भवत परवर्ती आचार्यो ने इसी के आधार पर औपम्यमूलक अलकार वर्ग का विधान किया है। इसके बीज हमे प्रारम्भ मे ही दडी के काव्यादर्श मे प्राप्त होते है।

वर्णन की विभिन्न शैलियों का अभिधान ही अलंकार है। अलकारो के कुछ मूलतत्व हैं जिनके आधार पर सजातीय अलकारो को भिन्न-भिन्न समूहो मे वर्गीकृत किया जा सकता है। इस ओर सर्वप्रथम दृष्टि आचार्य रुद्रट की गई। पहले तो उन्होंने अलंकारो को शब्दालंकार और अर्थालकार दो भागो मे बाटा और फिर भामह एवं उद्भट से भिन्न तथा बहुत कुछ वामन की शैली पर चार मूल अर्थालंकारों को मान कर समस्त अर्थालकारो को चार विभागों मे विभक्त किया—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष।

१ वास्तव मूलक—जो वस्तु के स्वरूप का वर्णन करे उसे "वास्तव" कहते हैं। यह अर्थ की पुष्टि करने वाला विपरीत प्रतीत से निवृत्ति कराने वाला तथा उपमा, अतिशय एवं श्लेष से भिन्न होता है। इसके तेईस भेद होते हैं—सहोक्ति, समुच्चय, जाति, यथासंख्य, भाव, पर्याय, विषम, अनुमान, दीपक, परिकर, परिवृत्ति परिसंख्या, हेतु, 'कारणमाला' व्यक्तिरेक, अन्योन्य, उत्तर, सार, सूक्ष्म, लेश, अवसर, मीलित और एकावली।

२ औपम्यमूलक—जिसमें वक्ता, किसी वस्तु के स्वरूप का सम्यक प्रतिपादन

करने के लिये उसके समान दूसरी वस्तु का वर्णन करे, उसमें औपम्य अलंकार होता है। इसके इक्कीस भेद होते हैं—उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अपन्हुति, सशय, समासोक्ति मत, उत्तर, अन्योप्रितीप, प्रतीप, अर्थान्तरन्यास, उभयन्यास, भ्रांतिमान्, आक्षेप प्रत्यनीक, दृष्टान्त, पूर्व, सहोक्ति, समुच्चय, साम्य और स्मरण।

३ अतिशयमूलक—जहाँ कोई अर्थ धर्म का नियम कही प्रसिद्धि के बाध मे लोक का उल्लघन करके अन्यथा स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, वहाँ अतिशय अलकार होता है। इसके बारह भेद होते है—पूर्व, विशेष, उत्प्रेक्षा, विभावना, तद्गुण, अधिक विरोध, विषम, असगति, विहित, व्याघात और अहेतु।

४ श्लेषमूलक—जहां अनेकार्थक पदों से एक ही वाक्य अनेक अर्थो का बोध करता है, वहा श्लेष अलकार होता है। इसके दो भेद हैं—शुद्ध और सकीर्ण। शुद्ध श्लेष के दस भेद किये है—अविशेष, विरोध, अधिक, वक्र, व्याज, उक्ति, असम्भव, अवयव, तत्व और विरोधाभास। सकीर्ण के केवल दो ही भेद किये हैं।

रुद्रट की भाति विद्यानाथ ने भी अलकारों को चार भागो मे विभक्त किया है—

१ वस्तुप्रतीतिवाले—इसमें समासोक्ति, आक्षेप आदि अलंकार हैं।
२ औपम्यप्रतीतिवाले—इसमे रूपक, उत्प्रेक्षा आदि हैं।
३ रसभाव प्रतीतिवाले—इसमे रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्वित् आदि अलंकार है।
४—अस्फुटप्रतीति वाले—इसमे उपमा, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारो की गणना की गई है।[1]

रुद्रट के वर्गीकरण मे कतिपय अलंकार ऐसे हैं, जिन्हे दो-दो वर्गों मे रक्खा गया है। उदाहरणार्थ उत्तर, सहोक्ति और समुच्चय नामक अलकार वास्तव और औपम्य दोनो मे आए है। उत्प्रेक्षा और पूर्व अलकारो का सन्निवेश औपम्य तथा अतिशय वर्गो मे हुआ है। श्लेष शब्दालकार और अर्थालाकार दोनो मे आया है। इस प्रकार के अलाकारो मे केवल नाम-साम्य है, लक्षण और उदाहरणो मे पृथक्ता है। अच्छा होता यदि नामो मे भी भिन्नता होती, तो किसी प्रकार का भ्रम न होता।

रुद्रट का यह वर्गीकरण बहुत महत्वपूर्ण नही है, क्योकि चार प्रमुख अर्थालाकारो के ही शेष अर्थालाकार विशेष रूपान्तर के रूप मे स्वीकार किये गए है। अत. अलंकारों के मूलतत्व का उपर्युक्त विभाजन न हो सकने के कारण रुद्रट के वर्गीकरण को पूर्णरूपेण वैज्ञानिक नही कहा जा सकता।

---

१ केचित्प्रतीयमानस्तव:, केचित्प्रतीयमानौपम्या:।
केचित्प्रतीयमान रसभावादय:, केचित्स्फुटप्रतीयमाना:॥
—प्रतापरुद्रीय।

महाराज भोज ने 'सरस्वतीकंठाभरण' मे अलंकारों को तीन भागों में विभक्त किया है-वाह्य, आभ्यतर और उभय, जिनका क्रमश: अर्थ शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार है। आपके अलंकार-विवेचन और विभाजन में कोई विशिष्टता नही है।

रुद्रट के पश्चात् अलंकार-विभाजन का महत्वपूर्ण कार्य करने वाले आचार्य रुय्यक और उनके शिष्य मखक है। उन्होने 'अलंकार-सर्वस्व या अलंकारसूत्र' मे अलंकारों का वर्गीकरण उनके मूल तत्त्वो के आधार पर किया है जो रुद्रट की अपेक्षा अधिक स्पष्ट, उपयुक्त और वैज्ञानिक है। रुय्यक ने समस्त अर्थालंकारों को पाँच भागों में विभक्त किया है—(१) सादृश्यगर्भ (२) विरोधगर्भ (३) शृंखला-बन्ध (४) न्यायमूल (५) गूढार्थ प्रतीतिमूल। इसके पश्चात् प्रत्येक वर्ग के अनेक अवान्तर भेद किये है, जो इस प्रकार है—

१. सादृश्यगर्भ (औपम्यगर्भ या उपमामूलक)

क—भेदाभेदतुल्य प्रधान—उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण (४)
ख—अभेद प्रधान—

१—आरोपमूलक—रूपक, परिणाम, संदेह, भ्रांति, उल्लेख, अपन्हुति। (६)।

२—अध्यवसायमूल—उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति। (२)।

ग—गम्यमान औपम्य—

१—पदार्थगत—तुल्ययोगिता, दीपक। (२)।
२—वाक्यार्थगत—प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना। (३)।
३—अभेद प्रधान—व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति। (३)।
४—विशेषण वैचित्र्य—समासोक्ति, परिकर। (२)।
५—विशेषण विशेष्य वैचित्र्य—श्लेष। (१)।
६—शेष—अप्रस्तुतप्रशसा, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, व्याजस्तुति, आक्षेप। (५)।

इस प्रकार सादृश्यमूलक अलंकारों की संख्या २८ है।

२. विरोधगर्भ

विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात, अतिशयोक्ति (कार्यकारणपौर्वापर्य), असंगति, विषम। (१२)।

३. शृंखलाबन्ध

कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार। (४)

४ न्यायमूल

क–तर्कन्याय—काव्यलिग, अनुमान। (२)।

ख–वाक्यन्याय या वाह्यन्याय—यथासख्य, पर्याय, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसंख्या, समुच्चय, समाधि। (८)।

ग–लोकन्याय—प्रयत्नीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण, अतद्गुण, उत्तर। (७)।

५. गूढ़ार्थप्रतीतिमूल

सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति। (३)।

इस वर्गीकरण मे अलकारों की सख्या (२८–१२–४–२–८–७–३) ६४ है। इसमे रसवत्, प्रेयस्, ऊर्जस्वी, समाहित, भावोदय, भावसधि, भावसबलता, ससृष्टि, सकर, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त, विनोक्ति, उन्मीलित, विशेषक आदि अलकारो का समावेश नही हुआ है।

विद्याधर की एकावली के अष्टम उन्मेष में अर्थालंकारों का निम्नलिखित वर्गीकरण परिलक्षित होता है :—

भेदाभेदप्रधान–१	उपमा, उपमेयोपमा, अनन्वय, स्मरण।
भेदप्रधान२	व्यतिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति।
अभेदप्रधान३	रूपक, परिणाम, सन्देह, भ्रान्तिमत, उल्लेख, अपन्हुति।
अध्यवसायाश्रय४	उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति।
गम्यौपम्याश्रय५	तुल्योगिता, दीपक
वाक्यार्थगत६	प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शन।
विश्लेषणविच्छित्याश्रय	समासोक्ति, परिकर, अप्रस्तुतप्रशंसा।
विशेष्यविच्छित्याश्रय	परिकरांकुर।
उभयविच्छित्याश्रय७	श्लेष।

---

१ ब्रूम प्रथमं भेदाभेदप्राधान्यतस्तावत्॥८।१॥

२ तथाहि क्वचिद् भेद प्राधान्य दृष्ट यथा व्यतिरेके॥वृत्ति॥

३ सम्प्रति कतिचिद्भेदप्राधान्येऽलकृती ब्रूम॥८।५॥

४ इत्थमलाकारद्वयमध्यवासायाश्रयेणनिर्णीय।
अधुनालकृतिवर्ग गम्यौपम्याश्रयब्रूमः॥८।१४॥एकावली।

५ एतदलकृति युगलं कथितं तावत्पदार्थगत्वेन॥८।१६॥

६ वाक्यार्थगत्वेन स्यात् सामान्य पृथग्विनिर्दिष्टम्॥८।१९॥

७ यत्र विशेष्य विशेषणस्तस्य्॥८।२६॥ —एकावली।

सामान्यविशेषभाव	अर्थान्तरन्यास ।
प्रतीयमान प्रस्ताव	पर्यायोक्त ।
गम्यत्वविच्छित्ति प्रस्ताव	व्याजस्तुति ।
विशेषगम्यत्व	आक्षेप ।
विरोधगर्भ	विरोधाभास, विभावना, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति, असंगति, विषम, सम, विचित्र, अधिक, अन्योन्य, विशेष, व्याघात ।
शृंखलाकार	कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार ।
तर्कन्यायमूल	काव्यलिग, अनुमान ।
न्यायमूल	यथासख्या, पर्याय, परिवृत्ति ।
एकानेक	परिसख्या ।
वाक्यन्याय	अर्थापत्ति, विकल्प, समुच्चय, समाधि ।
लोकन्यायाश्रय	प्रत्यनीक, प्रतीप, मीलित, सामान्य, तद्गुण । अतद्गुण, उत्तर, प्रश्नोत्तरिका ।
गूढार्थप्रतीति	सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति, भाविक, उदात्त ।
अन्योन्याश्लेष	समृष्टि, सकर ।

यह अलकार-विभाजन बहुत कुछ रूय्यक के अलकार-वर्गीकरण पर समाधारित है । यद्यपि एकावलीकार का अपने इस वर्गीकरण के लिये कोई विशेष आग्रह नही प्रतीत होता, फिर भी इस प्रकार के अलकार-विवेचन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उक्त अलकार-वर्गीकरण विषय-प्रतिपादन के समय ग्रन्थकार के मस्तिष्क मे अवश्य विद्यमान था ।

विद्यानाथ ने अर्थालकारो को नौ भागो मे विभक्त किया है—१—साधर्म्यमूल २—अध्यवसायमूल ३—विरोधमूल ४—वाक्यन्यायमूल ५—लोकव्यवहारमूल ६—तर्कन्यायमूल ७—शृखलावैचित्र्य ८—अपन्हवमूल तथा ९—विशेषण वैचित्र्यमूल ।

हिन्दी-आचार्यों ने भी अलकार-वर्गीकरण की ओर प्रयास किया है । हिन्दी के प्रथमालकारिक आचार्य केशवदास ने 'कविप्रिया' के नवें प्रभाव मे लेकर सोलहवे प्रभाव तक अलकार-निरूपण किया है । निरूपित सम्पूर्ण अलकारो की सख्या ३७ है जिन्हे आठ वर्गो मे विभक्त कर आठ प्रभावो मे रक्खा है । प्रभावानुसार अलकारो की सख्या तथा नाम निम्नलिखित है —

नवा प्रभाव	स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष, उत्प्रेक्षा । (६) ।
दसवा प्रभाव	आक्षेप । (१) ।

ग्यारहवां प्रभाव	क्रम, गणना, आशिष, प्रेय,श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, ऊर्ज, रसवत्, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपन्हुति। (१३)।
बारहवां प्रभाव	उक्ति (वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्याधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, सहोक्ति), व्याजस्तुति, व्याजनिंदा, अमित, पर्यायोक्ति, युक्त। (६)
तेरहवा प्रभाव	समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्त। (८)
चौदहवां प्रभाव	उपमा। (१)।
पन्द्रहवा प्रभाव	यमक। (१)।
सोलहवां प्रभाव	चित्र। (१)।

केशव संस्कृत के प्राचीन आचार्यों से प्रभावित थे, उन पर नव्याचार्यों का प्रभाव नही परिलक्षित होता है। इससे प्रतीत होता है कि उनका वर्गीकरण भामह, उद्भटादि के समान ही है। अत केशव के वर्गीकरण को वैज्ञानिक नही कहा जा सकता।

कविवर भिखारीदासकृत 'काव्यनिर्णय' हिन्दी-काव्यशास्त्र-परम्परा का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमे अलकारो के विवेचन के साथ-साथ अलकारो का वर्गीकरण भी किया गया है। इस ग्रथ मे अलकार-वर्णन तीन स्थानो पर किया गया है—पहलीबार तीसरे उल्लास मे, दूसरीबार आठवे से अठारहवे उल्लास तक और तीसरी बार बीसवे से इक्कीसवें उल्लास तक। प्रथम दो बार अर्थालकार-अनुशीलन और तीसरी बार शब्दचित्र-चित्रण किया गया है।

तीसरे उल्लास मे 'अलकार-मूलकथन' शीर्षक देकर मूल अर्थात् केवल प्रधान अलकारो का ही वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित है—

उपमा, अनन्वय, प्रतीप, दृष्टान्त, अर्थान्तरन्यास, निदर्शना, तुल्ययोगिता, उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, स्मरण, भ्रम, सदेह, व्यतिरेक, अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अन्योक्ति, व्याजस्तुति, पर्यायोक्ति, आक्षेप, विरुद्ध, विभावना, विशेषोक्ति, उल्लास, तद्गुण, मीलित, उन्मीलित, सम, भाविक, समाधि, सहोक्ति, विनोक्ति, परिवृत्त, सूक्ष्म, परिकर, स्वभावोक्ति, काव्यलिग, परिसख्या, प्रश्नोत्तर, यथासख्या, एकावली, पर्याय, ससृष्टि और सकर।

दास जी ने इन अलकारों का बड़ा ही सक्षिप्त वर्णन 'भाषा-भूषण' शैली में किया है। इनके अवान्तर भेदादि नही लिखे है। शायद पाठको को अलकारो का साधारण ज्ञान एवं सुविधाजनक कठस्थ करने के लिये भाषाभूषण-पद्धति मे अलंकारों का सक्षिप्त वर्णन किया है।

इसके पश्चात् आठवें से अठारहवें उल्लास तक अलंकारों को ११ वर्गों में विभक्त कर ११ उल्लासो मे उनका विशद विवेचन किया है। वर्गानुसार अलकारों के नाम एव सख्या इस प्रकार है :—

पहला वर्ग– आठवां उल्लास– उपमादि अलकार वर्णन
लुप्तोपमा, अनन्वय, उपमेयोपमा, प्रतीप, श्रौती उपमा, दृष्टात, अर्थान्तरन्यास, विकस्वर, निदर्शना, तुल्ययोगिता, प्रतिवस्तूपमा। (१२)।

दूसरावर्ग– नवां उल्लास– उत्पेक्षादि अलकार वर्णन
उत्प्रेक्षा, अपन्हुति, स्मरण, भ्रम, संदेह। (५)।

तीसरा वर्ग– दसवा उल्लास– व्यतिरेकरूपकादि अलकार वर्णन
व्यतिरेक, रूपक, उल्लेख। (३)।

चौथा वर्ग- ग्यारहवां उल्लास– अतिशयोक्ति आदि अलकार वर्णन
अतिशयोक्ति, उदात्त, अधिक, अल्प, विशेष। (५)।

पाचवां वर्ग– बारहवा उल्लास– अन्योक्ति आदि अलकार वर्णन
अन्योक्ति, अप्रस्तुतप्रशसा, प्रस्तुतताकुर, समासोक्ति, व्याजस्तुति, आक्षेप। (६)

छठवां वर्ग– तेरहवां उल्लास– विरुद्धादि अलकार वर्णन
विरुद्ध, विभावना, व्याघात, विशेषोक्ति, असगति, विषम। (६)।

सातवां वर्ग– चौदहवा उल्लास– उल्लासादि अलंकार वर्णन
अवज्ञा, उल्लास, अनुज्ञा, लेश, विचित्र, तद्गुण, स्वगुण, अतद्गुण, पूर्वरूप, मीलित, सामान्य, उन्मीलित, विशेष। (१४)।

आठवां वर्ग– पन्द्रहवां उल्लास– समासादि अलकार वर्णन
सम, समाधि, परिवृत्ति, भाविक, हर्ष (प्रहर्षण), विषाद, असम्भव, सम्भावना, समुच्चय, अन्योन्य, विकल्प, सहोक्ति, विनोक्ति, प्रतिषेध, विधि, काव्यार्थापत्ति। (१६)।

नवां वर्ग– सोलहवां उल्लास– सूक्ष्मादि अलकार वर्णन
सूक्ष्म, पिहित, युक्ति, गूढ़ोत्तर, गूढ़ोक्ति, मिथ्याध्यवसित, ललित, विवृतोक्ति, व्याजोक्ति, परिकर, परिकराकुर। (११)।

दसवां वर्ग– सत्रहवा उल्लास– स्वाभावोक्ति आदि अलंकार वणन
स्वभावोक्ति, हेतु, प्रमाण, काव्यलिंग, निरुक्ति, लोकोक्ति, छेकोक्ति, प्रत्यनीक, परिसंख्या, प्रश्नोत्तर। (१०)।

ग्यारहवां वर्ग– अठारहवां उल्लास– दीपकादि अलंकार वर्णन
दीपक, यथासंख्य, एकावली, कारणमाला, उत्तरोत्तर, रसनोपमा, रत्नावली, पर्याय। (८)।

दास कवि के इस अर्थालकार–वर्गीकरण का क्या आधार है, यह निश्चय-पूर्वक नही बतलाया जा सकता है, क्योकि इसका कोई मनोवैज्ञानिक आधार तो प्रतीत नही होता। यदि ऐसा होता तो सादृश्यमूलक अलकार ही पृथक्-पृथक् वर्गों के प्रमुख अलकार न हो जाते। लेकिन इसका यह भी तात्पर्य नही है कि दास का यह अलकार-वर्गीकरण बिल्कुल व्यवस्थाविहीन है, क्योकि लगभग प्रत्येक उल्लास के प्रारम्भ मे अलकारो के नाम, सख्या और विभाजन-विधि के कारण का निर्देश किया गया है।

उक्त ग्यारह वर्गों मे से नौ वर्गो के आधारो का तो स्पष्ट रूप से लेखक ने निर्देश किया है। तीसरे और पाचवे वर्ग का कोई स्पष्ट और उपयुक्त आधार नही बतलाया है। अलकार-विभाजन के लिये जो कारण दिये गये हैं उनमें से कतिपय में तो पर्याप्त औचित्य है। उदाहरणार्थ यह कहना कि उपमा के सहयोगी बारह अलंकार उपमानोपमेय के ही विकार है,[1] सर्वथा सत्य है। अतः दास का अलकार-वर्गीकरण, चाहे हम उससे पूर्णतया सहमत न हों—नितात निरर्थक और निराधार नही है, अपितु सार्थक और साधार है।

आधुनिक हिन्दी-साहित्यकारो मे सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने 'अलकार-मजरी' मे रुय्यक के ही वर्गीकरण को मान्यता प्रदान की है। रुय्यक के वर्गीकरण मे कुल ६४ अलंकार है, किन्तु पोद्दार जी ने १०० अलकारो का निरूपण किया है। सुब्रह्मण्य शर्मा ने अर्थालकारो का एक नवीन वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने समस्त अर्थालकारो को आठ वर्गो मे विभक्त किया है, जो निम्नाकित है —

(१) औपम्यमूला —	३८ अलकार।
(२) विरोधमूला —	१० अलकार।
(३) कार्यकारण सिद्धान्तमूला (न्याय-दर्शनशास्त्र-मूला):—	११ अलंकार।
(४) न्यायमूला —	
(क) वाक्य न्याय—	५ अलकार।
(ख) तर्कन्याय—	३ अलंकार।
(ग) लोकव्यवहारमूला—	२१ अलकार।
(५) अपन्हवमूला :—	११ अलकार।
(६) शृखला वैचित्र्यमूला —	४ अलकार।
(७) विशेषण वैचित्र्यमूला —	२ अलकार।
(८) कविसमयमूला :—	१ अलकार।

---

१ उपमान और उपमेय को, है विकार समझौ मुचित ॥
—काव्य-निर्णय।

यह वर्गीकरण किसी सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक आधार पर नही आश्रित है, क्योंकि अपन्हवमूलक, विशेषण वैचित्र्यमूला और कविसमयमूला वर्ग बिल्कुल बाह्य और स्थूल समानता पर ही स्थित है। इनका कोई सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक आधार नही है।

ब्रजरत्नदास ने भी 'भाषाभूषण' की भूमिका मे अर्थालंकारो का वर्गीकरण किया है, जो इस प्रकार है—

(१) औपम्य (सादृश्य, साम्य, साधर्म्य)—

क— अभेद प्रधान
ख— भेद प्रधान
ग— भेदाभेद प्रधान
घ— प्रतीति प्रधान
ङ— गम्य प्रधान
च— अर्थवैचित्र्य प्रधान

(२) विरोध (कार्य-कारण विच्छेद)

(३) शृंखला मूलक (क्रममूलक)

(४) न्याय मूलक —

क— वाक्यन्याय
ख— तर्कन्याय
ग— लोकन्याय

(५) वस्तुमूलक—

ब्रजरत्नदास जी के वर्गीकरण का बहुत कुछ आधार सुब्रह्मण्य शर्मा का वर्गीकरण है। अन्तर केवल इतना है कि ब्रजरत्नदास जी ने औपम्यमूलक के छ भेद किये है और शर्मा जी के ५–६–७ और ८ संख्या वाले वर्गो को एक ही वर्ग वस्तुमूलक मे रख दिया है। यह नवीनता किसी मौलिक उद्भावना की द्योतक नही है।

सभी लोगो ने अर्थालंकारो का ही वर्गीकरण किया है। किसी ने शब्दालंकारो का वर्गीकरण नही किया है। इस ओर सर्वप्रथम प्रयास डाक्टर रामशंकर शुक्ल 'रसाल' ने किया है। उन्होने 'अलंकार पीयूष' के पूर्वार्द्ध मे शब्दालंकारो का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है.—

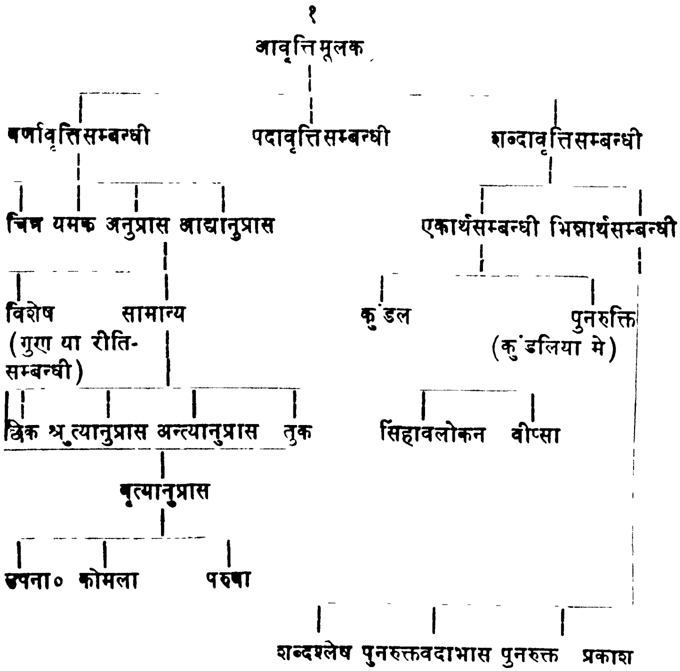

शब्दालंकारों का दूसरा भेद (२) वर्ण कौतुक या चित्र है।

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने 'वाङ्मय—विमर्श' मे अलंकारो का वर्गीकरण रुय्यक के अनुसार किया है और प्रत्येक वर्ग के प्रमुख अलंकारों का विवेचन उनके मूल तत्वों के आधार पर नवीन ढग से किया है, उदाहरणार्थ "सादृश्यगर्भ वर्ग के अन्तर्गत जितने अलंकार आते हैं उनकी कडिया भी एक दूसरे से मिली हुई हैं। इनके बीचो-बीच उपमा अलंकार होता है। उपमा अलंकार मे उपमेय और उपमान दोनों मे भेद भी रहता है और कुछ कुछ अभेद भी। एक ओर भेद बढने लगता है और दूसरी ओर अभेद। भेद बढते-बढते उस सीमा पर पहुच जाता है जहाँ उपमेय और उपमान एकदम पृथक हो जाते है (व्यक्तिरेक)। दूसरी ओर अभेद बढते-बढते उस सीमा पर पहुंच जाता है जहाँ दोनो मे एकता हो जाती है (रूपक)। इसके अनन्तर भेद से आगे बढ कर अभेद का प्रधानत्व और उपमान का गौणत्व बढने लगता है। दूसरे शब्दो मे कहे तो एक प्रकार से उपमान का उत्तरोत्तर तिरस्कार और साथ ही साथ बहिष्कार होता जाता है (प्रतीप)। फलस्वरूप उपमान का लोप हो जाता है और उसके स्थान पर भी केवल उपमेय ही रह जाता है (अनन्वय)। यहाँ उपमेय का उपमान उपमेय ही होता है, जैसे—राम से राम सिया सी सिया सिरमौर विरंचि विचारि संवारे।' ठीक इसी प्रकार रूपक से आगे बढ़कर धीरे-

धीरे उपमेय गौण होता जाता है और उपमान प्रधान, और अन्त मे उपमान की प्रधानता उस सीमा को पहुँच जाती है, जहाँ उपमेय का एकदम लोप हो जाता है, केवल उपमान ही रह जाता है। उपमान यहाँ उपमेय तथा उपमान दोनो मे काम देता है (रूपकातिशयोक्ति) जैसे—

राम सीय-सिर सेंदुर देही। उपमा कहि न सकत कवि केही ॥
अरुन पराग जलज भरि नीके। ससिहि भूष अहि लोभ अमी के ॥

यहाँ 'अरुनपराग' का तात्पर्य सिंदूर, 'जलज' (कमल) का तात्पर्य राम का 'हाथ' और 'चन्द्रमा' (ससि) का तात्पर्य सीता का 'मुख' और अहि (सर्प) का तात्पर्य राम की 'भुजा' है।" इसी प्रकार अन्य वर्गो के अलंकारो का भी निरूपण किया है।

विद्यावाचस्पति पण्डित रामदहीन मिश्र ने भी 'काव्यदर्पण' मे अलंकार-वर्गीकरण रुय्यक के अनुसार ही किया है। जो अन्तर है वह इतना है कि मिश्र जी ने 'विनोक्ति' को शेष मे डाला है, जिसे रुय्यक ने 'भेदप्रधानगम्यमान औपम्य' वर्ग मे लिया है। रुय्यक के वर्गीकरण मे 'लोकन्यायमूल' वर्ग के अलंकारों की सख्या सात है, किन्तु 'काव्यदर्पण' मे प्रश्नोत्तर को जोड कर इस वर्ग के अलंकारो की सख्या आठ कर दी है। इसके अतिरिक्त 'गूढार्थप्रतीतिमूल' मे स्वभावोक्ति, ससृष्टि और संकर को जोड देने के कारण इस वर्ग के अलंकारो की सख्या सात हो गई है।

इस प्रकार मिश्र जी का वर्गीकरण कुल ६९ अलंकारो का है। उन्होने 'काव्यदर्पण' मे कुल ७७ अलंकारो का निरूपण किया है। ललित, अत्युक्ति, उल्लास, अवज्ञा, प्रहर्षण, विषादन, विकस्वर, मिथ्याध्यवसित नामक आठ अलंकारों को किसी वर्ग मे न रख कर 'कुछ अन्य अलंकार शीर्षक' के अन्तर्गत पृथक् विवेचन किया है।

डा० नगेन्द्र ने 'रीतिकाल की भूमिका' मे अलंकारों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न किया है। उन्होने अलंकारों का मनोवैज्ञानिक विवेचन करते हुये कहा कि "व्यावहारिक धरातल पर आकर भी हम अलंकारों के कुछ अपेक्षाकृत मूर्त आधार निर्धारित कर सकते है। यहां भी यदि वही प्रश्न फिर उठाया जाय कि हम अलंकार का प्रयोग किस लिये करते है तो व्यवहारतल पर भी उसका एक ही स्पष्ट उत्तर है—उक्ति को प्रभावोत्पादक बनाने के लिये। ऐसा करने के लिये हम सदृश लोकमान्य वस्तुओं से तुलना के द्वारा अपने कथन को स्पष्ट बना कर उसे श्रोता के मन मे अच्छी तरह बैठाते हैं, बात को बढा-चढा कर उसके मन का विस्तार करते हैं, बाह्य वैषम्य आदि का नियोजन करके उसमे आश्चर्य की उद्भावना करते है, अनुक्रम अथवा औचित्य की प्रतिष्ठा करके उसकी वृत्तियो को अन्वित करते है। बात को घुमा फिरा कर वक्रता के साथ कह कर उसकी जिज्ञासा उद्दीप्त करते हैं, अथवा

बुद्धि की करामात दिखा कर उसके मन मे कौतूहल उत्पन्न करते है। अलंकारो के ये ही मनोवैज्ञानिक आधार हैं, स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा और कौतूहल। इनके मूर्तरूप है—साधर्म्य, अतिशय, वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार (बौद्धिक)। इसके पश्चात् अलंकारो का एक सक्षिप्त वर्गीकरण दिया है जो वर्गानुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) साधर्म्यमूलक— उपमा और रूपक से लेकर दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार।

(२) अतिशयमूलक— अतिशयोक्ति के विभिन्न भेदो से लेकर उदात्तादि अलंकार।

(३) वैषम्यमूलक— विरोध, विभावना, असगति से लेकर व्याघात, आक्षेप आदि अलंकार।

(४) औचित्यमूलक— यथासंख्य, कारणमाला, एकावली से लेकर स्वभावोक्ति आदि अलंकार।

(५) वक्रतामूलक— पर्याय, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतप्रशसा से लेकर सूक्ष्म पिहित आदि अलंकार।

(६) चमत्कारमूलक— श्लेष और यमक से लेकर मुद्रा और चित्र आदि अलंकार।

यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक होते हुए भी इसमे अतिशय, वक्रता और चमत्कार ये तीन ऐसे आधार है जो यथार्थ मे समस्त अलंकारो के मूलाधार है, जैसा कि डा० नगेन्द्र ने स्वय स्वीकार किया है। लेकिन लेखक ने इनका प्रयोग एक विशेष और सकीर्ण अर्थ मे किया है, अर्थात् अतिशय का बढा-चढा कर बात करने के अर्थ मे, वक्रता का घुमा-फिरा कर कथन करने के अर्थ मे और चमत्कार का जिज्ञासा और कौतूहल के अर्थ मे प्रयोग किया है; अत. इस वर्ग मे औचित्य है।

यूरोप के आचार्यों ने भी अलंकारों के वर्गीकरण का प्रयत्न किया है। उन लोगो ने छः आधार माने हैं—साधर्म्य, सम्बन्ध, अन्तर, कल्पना, वक्रता और ध्वनि। उपमा, रूपक, अन्योक्ति आदि साधर्म्य के अन्तर्गत है, अतिशयोक्ति कल्पनाश्रित है, विरोधाभास को वक्रता मे, सार को अन्तर के, तथा यमक, अनुप्रास आदि को ध्वनि के अन्तर्गत माना है। यह विभाजन भी सूक्ष्म तत्वो पर आश्रित नही प्रतीत होता, क्योंकि अलंकार तो सभी कल्पनाश्रित है, लेकिन केवल अतिशयोक्ति को ही कल्पनाश्रित कहना कुछ विचित्र-सा लगता है।

अलंकारों का वर्गीकरण पूर्णरूपेण उनके मूल तत्वो के आधार पर नही किया गया है। एतदर्थ अनेक अलकार अनुपयुक्त वर्गों मे पहुच गये है। उदाहरणार्थ मीलित, उन्मीलित, सामान्य और विशेषक नामक अलकारो को लोकमान्य वर्ग मे रक्खा गया है। वास्तव मे इनके मूलतत्व के आधार पर इन्हे सादृश्यमूलक वर्ग मे आना चाहिये।

मीलित और उन्मीलित अलकारो मे लोकन्याय की अपेक्षा सादृश्य का ही अधिक योग है। अत उक्त अलकारों को लोकन्याय वर्ग मे न रख कर सादृश्य मूलक वर्ग मे रखना ही अधिक उचित है। इसी प्रकार सामान्य और विशेषक नामक अलकारो मे भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत के गुणसाम्य का तत्व आधारभूत होने के कारण इनकी गणना सादृश्यमूलक वर्ग के अन्तर्गत होनी चाहिये। इन चारो अलकारो मे लोकन्याय का ना सहयोग मात्र लिया जाता है और प्रधानता सादृश्य की ही रहती है।

उक्त अलकारों के समान प्रतीप को भी लोकन्याय म रक्खा गया है। प्रतीपालकार वास्तव मे औपम्यमूलक अलकार है। सेठ कन्हैयालाल ने 'काव्यकल्पद्रुम' मे इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—"प्रतीप अलकार मे उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है।" इस परिभाषा से यह तात्पर्य निकलता है कि उपमान और उपमेय बिल्कुल निश्चित होते हैं, किन्तु वास्तविकता यह नही है। प्रतीप मे उपमा विपरीत अवश्य हो जाती है, किन्तु यह वैपरीत्य वर्ण्य-अवर्ण्य के आधार पर होता है। उदाहरणार्थ—१—मुख चन्द्र के समान है २—चन्द्र मुख के समान है। प्रथम मे मुख वर्ण्य है। अत उपमालकार है। द्वितीय मे चन्द्र वर्ण्य है। इसलिये प्रतीप अलकार है। प्रतीप को प्रतीपोपमा या विपरीतोपमा भी कहा गया है। अत इसे लोकन्याय मे रखना अनुचित है। यह तो सादृश्यमूलक अलकार है। अतिशयोक्ति अलकार को सादृश्यगर्भ के अभेद प्रधान अध्यवसायमूलवर्ग मे रखा गया है। इसके रूपकातिशयोक्ति नामक भेद मे तो अवश्य सादृश्य है, किन्तु अन्य भेदो मे कही भी किंचित सादृश्य नही परिलक्षित होता।

अतिशयोक्ति के अवान्तर भेदो मे कही सादृश्य तो है नही, केवल रूपकातिशयोक्ति के कारण इसे सादृश्यमूलक वर्ग मे लिया गया है। वास्तव मे इस अलकार का विघटन हो जाना चाहिये। इसके रूपकातिशयोक्ति को रूपक का कोई भेद बना देना चाहिये और शेष समस्त भेदो को अत्युक्ति मे ले लेना चाहिये।

सम अलकार विषम का विलोम है। इसलिए सम को भी विषम के साथ विरोध मूलक वर्ग मे रख दिया गया है, किन्तु यह उचित नही प्रतीत होता, क्योकि सम अलकार मे यथायोग्य सम्बन्ध का विधान लोकन्याय से पुष्ट होता है। सम के समान अधिक अलकार मे भी कोई विरोध का तत्त्व नही है। इसमे आधेय और आधार का न्यूनाधिक वर्णन होता है। आचार्य दडी ने तो इसे अतिशयोक्ति के अन्तर्गत लिया था। अधिक और अल्प साथ-साथ ही रहेगे। इन दोनो अलंकारों के लिये लोकन्याय वर्ग उपयुक्त है।

विशेष और पर्याय नामक अलकारो मे बडा सूक्ष्म भेद है। अत इन दोनो के लिए एक ही वर्ग होना चाहिये। इन्हे विरोधमूलक वर्ग मे रखना युक्तिसगत नही

बुद्धि की करामात दिखा कर उसके मन मे कौतूहल उत्पन्न करते है। अलंकारो के ये ही मनोवैज्ञानिक आधार हैं, स्पष्टता, विस्तार, आश्चर्य, अन्विति, जिज्ञासा और कौतूहल। इनके मूर्तरूप है—साधर्म्य, अतिशय वैषम्य, औचित्य, वक्रता और चमत्कार (बौद्धिक)। इसके पश्चात् अलकारो का एक संक्षिप्त वर्गीकरण दिया है जो वर्गानुसार इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है—

(१) साधर्म्यमूलक— उपमा और रूपक से लेकर दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास आदि अलंकार।

(२) अतिशयमूलक— अतिशयोक्ति के विभिन्न भेदो से लेकर उदात्तादि अलकार।

(३) वैषम्यमूलक— विरोध, विभावना, असगति से लेकर व्याघात, आक्षेप आदि अलंकार।

(४) औचित्यमूलक— यथासख्य, कारणमाला, एकावली से लेकर स्वभावोक्ति आदि अलकार।

(५) वक्रतामूलक— पर्याय, व्याजस्तुति, अप्रस्तुतप्रशसा से लेकर सूक्ष्म पिहित आदि अलकार।

(६) चमत्कारमूलक— श्लेष और यमक से लेकर मुद्रा और चित्र आदि अलकार।

यह वर्गीकरण मनोवैज्ञानिक होते हुए भी इसमे अतिशय, वक्रता और चमत्कार ये तीन ऐसे आधार है जो यथार्थ मे समस्त अलकारो के मूलाधार है, जैसा कि डा० नगेन्द्र ने स्वय स्वीकार किया है। लेकिन लेखक ने इनका प्रयोग एक विशेष और सकीर्ण अर्थ में किया है, अर्थात् अतिशय का बढा-चढा कर बात करने के अर्थ मे, वक्रता का घुमा-फिरा कर कथन करने के अर्थ मे और चमत्कार का जिज्ञासा और कौतूहल के अर्थ मे प्रयोग किया है; अत इस वर्ग मे औचित्य है।

यूरोप के आचार्यों ने भी अलकारो के वर्गीकरण का प्रयत्न किया है। उन लोगो ने छ आधार माने हैं—साधर्म्य, सम्बन्ध, अन्तर, कल्पना, वक्रता और ध्वनि। उपमा, रूपक, अन्योक्ति आदि साधर्म्य के अन्तर्गत है, अतिशयोक्ति कल्पनाश्रित है, विरोधाभास को वक्रता मे, सार को अन्तर के, तथा यमक, अनुप्रास आदि को ध्वनि के अन्तर्गत माना है। यह विभाजन भी सूक्ष्म तत्वो पर आश्रित नही प्रतीत होता, क्योकि अलकार तो सभी कल्पनाश्रित है, लेकिन केवल अतिशयोक्ति को ही कल्पनाश्रित कहना कुछ विचित्र-सा लगता है।

अलंकारों का वर्गीकरण पूर्णरूपेण उनके मूल तत्वो के आधार पर नही किया गया है। एतदर्थ अनेक अलकार अनुपयुक्त वर्गों मे पहुच गये है। उदाहरणार्थ मीलित, उन्मीलित, सामान्य और विशेषक नामक अलकारो को लोकमान्य वर्ग मे रक्खा गया है। वास्तव मे इनके मूलतत्व के आधार पर इन्हे सादृश्यमूलक वर्ग मे आना चाहिये।

मीलित और उन्मीलित अलकारो मे लोकन्याय की अपेक्षा सादृश्य का ही अधिक योग है। अत उक्त अलकारो को लोकन्याय वर्ग मे न रख कर सादृश्य मूलक वर्ग मे रखना ही अधिक उचित है। इसी प्रकार सामान्य और विशेषक नामक अलकारो मे भी प्रस्तुत-अप्रस्तुत के गुणसाम्य का तत्व आधारभूत होने के कारण इनकी गणना सादृश्यमूलक वर्ग के अन्तर्गत होनी चाहिये। इन चारो अलकारो मे लोकन्याय का तो सहयोग मात्र लिया जाता है और प्रधानता सादृश्य की ही रहती है।

उक्त अलकारो के समान प्रतीप को भी लोकन्याय मे रखा गया है। प्रतीपालकार वास्तव मे औपम्यमूलक अलकार है। सेठ कन्हैयालाल ने 'काव्यकल्पद्रुम' मे इसका लक्षण इस प्रकार दिया है—"प्रतीप अलकार मे उपमान को उपमेय कल्पना करना आदि कई प्रकार की विपरीतता होती है।" इस परिभाषा से यह तात्पर्य निकलता है कि उपमान और उपमेय बिल्कुल निश्चित होते है, किन्तु वास्तविकता यह नही है। प्रतीप मे उपमा विपरीत अवश्य हो जाती है, किन्तु यह वैपरीत्य वर्ण्य-अवर्ण्य के आधार पर होता है। उदाहरणार्थ—१—मुख चन्द्र के समान है २—चन्द्र मुख के समान है। प्रथम मे मुख वर्ण्य है। अत उपमालकार है। द्वितीय मे चन्द्र वर्ण्य है। इसलिये प्रतीप अलकार है। प्रतीप को प्रतीपोपमा या विपरीतोपमा भी कहा गया है। अत इसे लोकन्याय मे रखना अनुचित है। यह तो सादृश्यमूलक अलकार है। अतिशयोक्ति अलकार को सादृश्यगर्भ के अभेद प्रधान अध्यवसायमूलवर्ग मे रखा गया है। इसके रूपकातिशयोक्ति नामक भेद मे तो अवश्य सादृश्य है, किन्तु अन्य भेदो मे कही भी किंचित सादृश्य नही परिलक्षित होता।

अतिशयोक्ति के अवान्तर भेदो मे कही सादृश्य तो है नही, केवल रूपकातिशयोक्ति के कारण इसे सादृश्यमूलक वर्ग मे लिया गया है। वास्तव मे इस अलकार का विघटन हो जाना चाहिये। इसके रूपकातिशयोक्ति को रूपक का कोई भेद बना देना चाहिये और शेष समस्त भेदो को अत्युक्ति मे ले लेना चाहिये।

सम अलकार विषम का विलोम है। इसलिए सम को भी विषम के साथ विरोध मूलक वर्ग मे रख दिया गया है, किन्तु यह उचित नही प्रतीत होता, क्योकि सम अलकार मे यथायोग्य सम्बन्ध का विधान लोकन्याय से पुष्ट होता है। सम के समान अधिक अलकार मे भी कोई विरोध का तत्व नही है। इसमे आधेय और आधार का न्यूनाधिक वर्णन होता है। आचार्य दडी ने तो इसे अतिशयोक्ति के अन्तर्गत लिया था। अधिक और अल्प साथ-साथ ही रहगे। इन दोनो अलकारो के लिये लोकन्याय वर्ग उपयुक्त है।

विशेष और पर्याय नामक अलकारो मे बडा सूक्ष्म भेद है। अत इन दोनो के लिए एक ही वर्ग होना चाहिये। इन्हे विरोधमूलक वर्ग मे रखना युक्तिसगत नही

है, इन्हे तो लोकन्याय मे रक्खा जाना चाहिये। अन्योन्य अलकार मे विरोध का भाव नही है, अपितु समन्वय का भाव है। इसका उपयुक्त वर्ग लोकन्याय है। व्याजस्तुति और व्याजनिंदा स्पष्टरूपेण व्यग्य प्रधान अलकार है। न जाने क्यो इन्हे व्यग्य प्रधानवर्ग मे नही रखा गया है।

विस्तारप्रिय आचार्यो ने अनेक ऐसे अलकारो की उद्‌भावना की है, जिनमे कोई अलकारत्व ही नही है। उदाहरणार्थ स्वभावोक्ति अलकार नही है, बल्कि अलकार्य है। इसी प्रकार प्रहर्षण, विषादन और युक्ति अलकार नही, अपितु संचारी भाव है।

ऊपर के विवेचन के आधार पर अर्थालकारो का स्थूल वर्गीकरण निम्नलिखित ढंग का हो सकता है—

१ सादृश्यमूल		उपमा, उपमेयोपमा, प्रतीप, अनन्वय, स्मरण, परिणाम, संदेह, भ्राति, उल्लेख, अपन्हुति, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति (केवल रूपकातिशयोक्ति), तुल्ययोगिता, दीपक, प्रतिवस्तूपमा, दृष्टान्त, निदर्शना, व्यक्तिरेक, सहोक्ति, विनोक्ति, समासोक्ति, परिकर, अप्रस्ततप्रशसा, पर्यायोक्ति, अर्थान्तरन्यास, आक्षेप, मीलित, उन्मीलित, सामान्य, विशेषक।
२ विरोधमूल		विरोध, विभावना, विशेषोक्ति, विचित्र, व्याघात, असगति, विषम।
३ शृंखलाबद्ध		कारणमाला, एकावली, मालादीपक, सार।
४ न्यायमूल	(अ)	तर्कन्याय—काव्यलिंग, अनुमान।
	(ब)	वाक्यन्याय-यथासख्य, परिवृत्ति, अर्थापत्ति, विकल्प, परिसख्या, समुच्चय, समाधि।
	(स)	लोकन्याय-प्रयत्नीक, तद्‌गुण, अतद्‌गुण, उत्तर, सम, अधिक, अल्प, अत्युक्ति, विशेष, पर्याय, अन्योन्य।
५ गूढार्थप्रतीतिमूल		सूक्ष्म, व्याजोक्ति, वक्रोक्ति, व्याजस्तुति, व्याजनिंदा।

दृष्टिकोण की विभिन्नता के कारण वर्गीकरणों मे आचार्यों का मतभेद है। उक्त वर्गीकरण अलकारो के मूलतत्व पर समाधारित होने के कारण इसमे एकसूत्रता है, अत. वैज्ञानिक अवश्य है। अलकारो का विशुद्ध मनोवैज्ञानिक वर्गीकरण भी हो सकता है, किन्तु यदि वह सर्वथा उपेक्षणीय नही, तो काव्यशास्त्र के लिये आवश्यक और उपयोगी भी नही है।

अलकारो की कोई सख्या नही निश्चित की जा सकती। किसी अलंकार-वर्गीकरण या अलंकार-ग्रन्थ मे अलकारों की जितनी संख्या गिनाई गई है उतनी ही

नही हो सकती। प्रतिभा ईश्वर-प्रदत्त है। उसके अनन्त प्रकार है।[1] युग-प्रवर्तक साहित्यकार अपनी अभिव्यक्ति मे नये-नये प्रयोग करते हैं और इन प्रयोगो की सख्या अनन्त है। अत: अलकार भी अनन्त है।[2] दडी ने भी कहा है कि अलकारो की आज भी सृष्टि हो रही है। अत. सम्पूर्णत कौन उनकी गणना कर सकता है?[3] ध्वनिकार का कथन है कि वाग्विकल्प-कथन के प्रकार अनन्त है और वे ही अलकार हैं। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुये रुद्रट ने कहा है कि हृदयाह्लादक जितने अर्थ है वे सभी अलकार है।[4] साहित्य मे एक ही वस्तु का बोध कराने की विभिन्न शैलिया हैं। उदाहरणार्थ किसी युवती के प्रसन्न-मुख-सौदर्य को निम्नलिखित ढगो से व्यक्त किया जा सकता है—

१ उसका मुख चन्द्रमा के समान है (उपमा)। २ चन्द्रमा के समान उसका मुख और उसका मुख चन्द्रमा के समान है (उपमेयोपमा)। ३ चन्द्रमा उसका मुख-सा है (प्रतीप)। ४ उसका मुख ही चन्द्रमा है (रूपक) ५ यह मुख है या चन्द्रमा (सदेह)। ६ यह मुख नही चन्द्रमा है (अपन्हुति)। ७ उसके मुख को चन्द्रमा समझ कर चकोर उसकी ओर उडा (भ्रातिमान)। ८ मुख मानो चन्द्रमा है (उत्प्रेक्षा)। ९ चन्द्रमा को देख कर उसके मुख की याद आती है (स्मरण)। १० मुख सुषमा से और चन्द्रमा चन्द्रिका से शोभित होता है (दीपक)। ११ मुख पृथ्वी पर सुशोभित है और चन्द्रमा आकाश मे अपनी ज्योत्स्ना विकीर्ण करता है (प्रतिवस्तूपमा)। १२ उसका मुख बडी-बडी काली आँखों और मुस्कान की आभा से शोभित है (समासोक्ति)। १३ मुख अपने सौन्दर्य से दर्शको को प्रसन्न करता है और चन्द्रमा अपनी चन्द्रिका से ससार को सुशीतलता प्रदान करता है (दृष्टान्त)। १४ चन्द्रमा कलकित है और उसका मुख निष्कलक है (व्यतिरेक)। १५ उसके मुख मे चन्द्रमा की सुन्दरता है (निर्दशना)। १६ चन्द्रिका उसके मुख की काति के समक्ष मन्द है (अप्रस्तुत प्रशसा)। १७ उसका मुख एक दूसरा चन्द्रमा है (अतिशयोक्ति)। १८ चन्द्रमा और कमल उसके मुख के कारण विलीन हुए (तुल्ययोगिता)। १९ उसके चन्द्रमुख से वासना उत्तेजित होती है (परिणाम)। २०. उसका मुख उसके मुख-सा ही है (अनन्वय)। २१ यह चन्द्रमा है, यह कमल है, चकोर और भ्रमर उसके मुख की ओर उडते है (उल्लेख)।

---

१ प्रतिभानन्त्यात्। लोचन

२ अलकाराणाम् अनन्तत्वात्। ध्वन्यालोक।

३ ते चाद्यपि विकल्प्यन्ते कस्तान् कात्स्यर्नेन वक्ष्यति। काव्यादर्श।

४ ततो यावन्तो हृदयावर्धका अर्थप्रकाश तावन्त अलकारा। काव्यालंकार।

इसी प्रकार अभिव्यजन–विधान के और भी नये प्रयोग हो सकते है और होते ही हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि अलकारो की कोई परिमित सख्या नही हो सकती। भाषा की उन्नति के साथ इनमे भी उन्नति होती है।

साहित्य के विकास के साथ-साथ अलकारो की सख्या मे वृद्धि होती गई और इनकी वृद्धि यहाँ तक की गई कि जो अलकार काव्य मे साधन रूप प्रयुक्त होते थे, वे काव्य के साध्य बन गये। अलकारो के विषय मे आचार्यो के मत-मत के कारण अलकारो की परिभाषाएँ भी अस्पष्ट होने लगी। लेकिन मम्मट, रुय्यक आदि परिवर्ती आचार्यो ने समस्त अलकारो का चयन कर उन्हे एक व्यवस्था प्रदान करने का प्रयत्न किया, जिसमे उन्हे पर्याप्त सफलता मिली।

३

संस्कृत-अलंकार-साहित्य

आचार्य दण्डी ने कहा है कि यदि शब्दात्मिका ज्योति इस लोक को आलोकित न करती तो सम्पूर्ण संसार अंधकारमय होता।[1] अनन्तकाल से शब्दार्थमयी वाणी विविध साधनो द्वारा विश्व को प्रकाशित करने का प्रयत्न कर रही है। इन साधनो मे से वाणी के क्षेत्र मे अलकारो की सत्ता की बडी महत्ता है। प्राचीनकाल मे अलकारशास्त्र समस्त साहित्यशास्त्र का अभिधान था, किन्तु साहित्य के विकास के साथ-साथ अलकार शब्द के प्रयोग मे अर्थ-सकुचन होता गया और कालान्तर मे वह विशिष्ट अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा।

भारतीय साहित्य मे अलंकारशास्त्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है, किन्तु इस शास्त्र का कब उद्भव हुआ, यह अनिश्चित है। राजशेखर ने 'काव्यमीमासा' के प्रारम्भ मे इस शास्त्र के प्रचलन की चर्चा करते हुए कहा है कि भगवान शकर ने काव्यविद्या का सर्वप्रथम उपदेश परमेष्ठी, वैकुण्ठ आदि चौसठ शिष्यो को किया था। उनमे से प्रथम शिष्य स्वयम्भू ब्रह्मदेव ने इस विद्या का द्वितीय बार उपदेश अपनी इच्छा से उत्पन्न अयोनिज शिष्यो–ऋषियो को किया। इन शिष्यो मे से सरस्वती का पुत्र काव्यपुरुष भी एक था। जगद्वन्द्य देवता भी इसकी वन्दना करते थे। ब्रह्मदेव ने त्रिकालज्ञ और दिव्य दृष्टि द्वारा भविष्य की बातो को जानने वाले उस काव्यपुरुष भू, भुव और स्वर्ग तीनो लोक-निवासिनी प्रजा मे काव्यविद्या-प्रचार के लिये आज्ञा दी। काव्य-पुरुष के अठारह भागो मे विभक्त काव्य-विद्या का उपदेश सर्वप्रथम सहस्राक्ष आदि दिव्य स्नातको को किया। उनमे से एक-एक शिष्य ने अठारह भागो मे विभक्त उस काव्य-विद्या के एक-एक भाग मे विशेषता प्राप्त करके अपने-अपने विषय पर पृथक्-पृथक् ग्रंथ-रचना की। सहस्राक्ष इन्द्र ने कविरहस्य नामक प्रथम भाग की रचना की। इसी प्रकार उक्तिगर्भ ने उक्तिविषयक ग्रंथ का निर्माण किया। सुवर्णनाभ

१ इदमन्धतम. कृत्स्न जायेत भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वय ज्योतिरा ससारान्नदीप्यते ॥ १।४॥ 'काव्यादर्श।'

ने रीतिविषयक, प्रचेता ने अनुप्रास सम्बन्धी, यम ने यमक सम्बन्धी, चित्रागद ने चित्र काव्य-विषयक, शेष ने शब्द श्लेष पर, पुलस्त्य ने वास्तव अर्थात् स्वभावोक्ति पर, औपकायन ने उपमालकार के सम्बन्ध मे, पाराशर ने अतिशयोक्ति के सम्बन्ध मे, उतथ्य ने अर्थ श्लेष पर, कुबेर ने शब्द और अर्थ-उभयालकारो के सम्बन्ध मे, कामदेव ने विनोद सम्बन्धी, भरत ने नाट्यविषय पर, नन्दिकेश्वर ने रसविषय पर, बृहस्पति ने दोष पर, उपमन्यु ने गुणो के सम्बन्ध मे और कुचमार ने औपनिषदिक विषयो पर स्वतन्त्ररूप से अपने-अपने ग्रथो की रचना की। यद्यपि इस प्रकार का वर्णन अन्यत्र कही प्राप्त नही होता है, फिर भी हो सकता है कि यह वर्णन किसी सर्वथा उच्छिन्न एव अति प्राचीन तथा अतिअप्रसिद्ध परम्परा की परिगति हो। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग का तार्किक व्यक्ति इसे राजशेखर की पौराणिक कल्पनामात्र मानता है। अतः इस पर तर्क-वितर्क न कर उपलब्ध सामग्री पर ही विचार करना श्रेयस्कर है।

विश्व-वाङ्मय के वेद सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है। उनमे भी ऋग्वेद प्राचीनतम है। काव्य मे रमणीयता लाने वाले अलकारो का उसमे पर्याप्त प्रयोग हुआ है। केवल ऋग्वेद मे ही नही, अपितु शेष तीनो वेदो की भी ऋचाओ मे उपमा,[1] रूपक[2] अतिशयोक्ति[3], पर्याय,[4] उपमा[5] आदि अलकारो के दर्शन होते है। काव्य को हृदयगम, सुखद और रोचक बनाने के कारण अलकारो का काव्य मे महत्वपूर्ण स्थान है और इसीलिये अलकारशास्त्र भी वेदो के समान अनादि है। रामायण, महाभारत एव पुराणो मे इस काव्य-रचना-शैली का क्रमशः विकास हुआ। इसके पश्चात् पाणिनि आदि ऋषियो ने जाम्बवती-विजय जैसे महाकाव्यो का प्रणयन किया। वैदिक काल के ऋषियो की कृतियो मे समीक्षा का सूक्ष्म स्वरूप प्राप्त होता है। वेदो की सुन्दर ऋचाओ मे अलकारो का प्रचुर प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद मे 'उपमा' और 'अरङकृता' शब्द भी प्रयुक्त हुए है। उपमा का अर्थ सायण

---

१ अभ्रातेव पुस एति प्रतीची, गर्त्तारुगिव सनयेधनानान्।
जायेवपत्य उशती सुवासा, उषाहृस्त्रेवनिरिणीते अप्स.॥ ।१२४।६॥

२ इहा सुपर्णा सयुजा, सखाया, समान वृक्ष परिषस्व जाते।
तयोरन्यः पिप्पलस्वा द्वत्यनश्नन्नन्योऽभिवाक्शीति ॥१।१६४।२०॥

३ तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानोहविर्भिः।
अहेलमानो वरुणोह वोध्यरुशं समान आयुः प्रमोषीः ॥१।२४।११॥

४ शन्नोदेवी रभीष्टये शन्नोभवन्तुपीतयेशयोरमिश्रन्तुन· ॥१।३३॥सा० वे०

५ यत्र वाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ॥१।४८। यजुर्वेद।

ने उपमान या द्रष्टान्त किया है। इसी प्रकार के तथ्यों के आधार पर तो कुप्पूस्वामी ने ऋग्वेद के मन्त्रदृष्टा मे समालोचक का स्वरूप स्वीकार किया है।[१]

अलंकारशास्त्र और व्याकरणशास्त्र का घनिष्ट सम्बन्ध रहा है। इसीलिए अलकार-निरूपण के बीज सर्वप्रथम हमे व्याकरणाचार्यो के ग्रन्थो मे ही प्राप्त होते हैं। उपमा का स्पष्ट विवेचन सबसे पहले निघण्टु और निरुक्त मे मिलता है। निघण्टु में वैदिक उपमावाचक बारह शब्दो का उल्लेख किया गया है।[२] निरुक्तकार यास्क ने उपमा निरूपण के प्रसग मे वैयाकरण गार्ग्य के उपमा-वर्णन का भी उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि गार्ग्य मुनि यास्क से भी प्राचीन थे। गार्ग्याचार्य के अनुसार उपमा वहाँ होती है, जहाँ एक वस्तु दूसरे से भिन्न होते हुए भी उसी के सदृश हो। गार्ग्य का यह भी कहना है कि उपमा को उपमेय की अपेक्षा गुणो मे श्रेष्ठ होना चाहिये। इसके विपरीत भी उदाहरण दिये गये हैं, जिनमे न्यून गुण वाले उपमान से अधिक गुण वाले उपमेय की तुलना की गई है और उदाहरण ऋग्वेद से दिये गये है। आचार्य मम्मट ने उपमा का लक्षण इसी प्रकार का दिया है।[३] यास्क ने पाँच प्रकार की उपमा का वर्णन किया है—कर्मोपमा, भूतोपमा, रूपोपमा, सिद्धोपमा तथा अर्थोपमा या लुप्तोपमा। इनके उपमावाचक निपात इव, यथा, न, चित्, नु और आ हैं। प्रत्येक उपमा का उदाहरण भी दिया है। उपमा की यह व्याख्या पाणिनिकाल मे सर्वमान्य हो चुकी थी। इसीलिये पाणिनि की अष्टाध्यायी मे उपमा, उपमान, उपमित तथा सामान्य जैसे अलकारशास्त्र के पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किये गये है।[४] पूर्ण उपमा के चार अग होते है—उपमान, उपमेय, सादृश्य-वाचक तथा साधारण धर्म और इन चारो का स्पष्ट निर्देश पाणिनि ने अपने व्याकरण शास्त्र मे किया है। इतना ही नही कृत, तद्धित, समासान्त प्रत्ययों, समास के विधान

---

1 The oldest phase of literary criticism may be traced back to the Rigveda It is not meant to suggest that the Rigveda bard was concious of his position as critic, yet it is quite possible that th bards were quite also critics without being conciou- of it.

—The Highways of Byways of Criticism in Sanskrit.

२ इदमिव। इद यथा। अग्निर्नये। चतुश्चिद ददमानात्। ब्रह्मणाव्रतचारिण.। वृक्षस्यनुते पुरहूत वया जार आ मगम्। मेषो भूतोऽमियन्नय.। तद्रूप। तदवर्ण। तद्वत्। तयेत्युपमा। १३। (तृतीयोऽध्याय.)।

३ साधर्म्यं उपमा भेदे।१०।१ 'काव्यप्रकाश'

४ तुल्यार्थैरतुलपमाभ्या तृतीयान्यतरस्याम्।२।३।७२
उपमानानि सामान्यवचनैः।२।१।५५
उपमितं व्याघ्रादिभि. सामान्यप्रयोगे।२।१।५६।

तथा स्वर के ऊपर सादृश्य के कारण जो व्यापक प्रभाव पड़ता है, उसका पाणिनि के सूत्रो में स्पष्ट उल्लेख है। कात्यायन इस विषय मे पाणिनि के स्पष्ट अनुयायी हैं। शान्तनव नामक आचार्य ने अपने फिट् सूत्रों मे (२।१६, ४।१८) स्वर-विधान पर सादृश्य का जो प्रभाव पडता है, उसका स्पष्ट वर्णन किया है। पतञ्जलि ने पाणिनि के द्वारा प्रयुक्त 'उपमान' शब्द की व्याख्या महाभाष्य मे (२।१।५५) की है। उनका कहना है कि मान वह वस्तु है कि जो किसी अज्ञातवस्तु के निर्धारण के लिये प्रयुक्त की जाती है। 'उपमान' मान के समान होता है और वह किसी वस्तु का अत्यन्त रूप से नही, प्रत्युत सामान्यरूप से निर्देश करता है, जैसे 'गौरिवगवय.' गाय के समान नीलगाय होती है।[1] काव्य पद्धति से 'गौरिवगवय.' चमत्कारविहीन होने के कारण उपमालकार का उदाहरण नही हो सकता, तथापि शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक दृष्टि से पतंजलि का यह उपमा-निरूपण महत्व रखता है।"[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि अलकारशास्त्र अपने प्रारम्भकाल से ही व्याकरणशास्त्र से प्रभावित है। उपमा-विभाजन तथा वर्णन बहुत कुछ व्याकरण के आधार पर ही है। उपमा का श्रौती तथा आर्थीरूप मे विभाजन पाणिनि के सूत्रो पर ही अवलम्बित है। जहाँ यथा, इव, वा आदि पदों के द्वारा साधर्म्य की प्रतीति होती है, वहाँ आर्थी उपमा होती है। पाणिनि के 'तत्र तस्येव' सूत्र के अनुसार 'इव' के अर्थ को घोषित करने के लिये जब वत् प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है तब श्रौती उपमा होती है, यथा—'मथुरावत् पाटलिपुत्रें प्रसादा.' अर्थात् मथुरा के समान पाटलिपुत्र मे महल है। यहाँ 'मथुरावत्, पद मे 'वत्' प्रत्यय सप्तमी की विभक्ति से युक्त होने पर जोडा गया है, चैत्रवत्-चैत्रस्य इव। परन्तु जहाँ क्रिया के साथ सादृश्य का बोध कराना अभीष्ट होता है वहाँ भी 'वत्' प्रत्यय जोड़ा जाता है और वहाँ आर्थी उपमा होती है। 'ब्राह्मणवत् क्षत्रियोअधीते', इस वाक्य में आर्थी उपमा है और यह 'तेन तुल्य क्रियाचेद्वित सूत्र के अनुसार है। इसी प्रकार समासगा श्रौती उपमा 'इव' पद के प्रयोग करने पर 'इवेन सह नित्यसमासोविभक्त्यलोपश्च' वार्तिक के अनुसार होती है। इसी तरह कर्म तथा आधार मे 'क्यप्' प्रत्यय के प्रयोग होने पर तथा 'क्यङ्' प्रत्यय के विधान करने पर कई प्रकार की लुप्तोपमाएँ उत्पन्न होती हैं। उपमा का यह समग्र विभाजन पाणिनि के सूत्रो के आधार पर ही किया गया है। इस विभाजन को सर्व प्रथम आचार्य उद्भट ने किया था। अतः यह अर्वाचीन आलकारिको के प्रयत्न का फल नही है; वरन् अलंकार के आदिमयुग से सम्बन्ध रखता है।[3]

---

१ मानं हि नाम अनिर्ज्ञातार्थमुपादीयते अनिर्ज्ञातमर्थं ज्ञास्यामीति।
तत्समीपेयत् नात्यन्ताय मिमीते तद् उपमानं गौरिव गयवः इति।
पाणिनि पर २।१।५५ महाभाष्य।

२ भारतीय साहित्यशास्त्र—पं० बलदेव उपाध्याय

३ भारतीय साहित्यशास्त्र—पं० बलदेव उपाध्याय।

संस्कृत-काव्यशास्त्र के उपलब्ध ग्रन्थों मे भरत का 'नाट्यशास्त्र' सर्वाधिक प्राचीन है। विश्व मे इस विषय पर इतना प्राचीन और परिपूर्ण अन्य कोई ग्रन्थ नही है। आरिस्टाटिल की 'पोइटिक्स' नाट्यशास्त्र के विषय मे योरुप में आकर ग्रन्थ माना जाता है, परन्तु इसमे नाटक के केवल एक भाग दु खात का ही विधिवत् वर्णन है। 'नाट्यशास्त्र' के दशमाश से भी इसका आकार छोटा है। डाक्टर राघवन् ने लिखा है कि अपने ३६ अध्यायों मे यह 'नाट्यशास्त्र' अरिस्टाटिल की रचना की अपेक्षा अधिक पूर्ण और सस्कृत नाट्यसाहित्य के सम्बन्ध मे पूर्ण ज्ञान प्रदान करता है।[1] नाट्यशास्त्र के दो सस्करण प्राप्त होते है—काव्यमाला बम्बई (निर्णयसागर) का सस्करण और सस्कृत सीरीज काशी (चौखम्बा) का संस्करण। दोनो मे क्रमश: ३७ और ३६ अध्याय है। काशी का सस्करण ही ठीक प्रतीत होता है, क्योंकि अभिनव ने भरत के सूत्रो की सख्या ३६ बतलाई है।[2] सूत्र का सम्भवत: तात्पर्य अध्यायो से ही है। 'नाट्यशास्त्र' मे उतने ही अध्याय है, जितने शैवमतानुसार विश्व मे तत्त्व होते है। 'नाट्यशास्त्र' के विवेचन के तीन भाग है—१–सूत्र २–भाष्य ३–श्लोक या कारिका। ३६ अध्यायो मे विभक्त 'नाट्यशास्त्र' नाट्य-विधानों का एक अमर विश्वकोष है। इसमे नाट्यकला के विस्तृत विवेचन के अतिरिक्त छद, अलकार, नृत्य, सगीत आदि का भी वर्णन है।

'नाट्यशास्त्र' के सत्रहवे अध्याय मे काव्य के केवल चार अलकारों का निरूपण प्राप्त होता है—उपमा, यमक रूपक तथा दीपक।[3] उपमा का वर्णन करते हुए भरत ने लिखा है कि काव्य-रचनाओ मे जो भी सादृश्य से उपमित किया जाय, वह उपमा है। यह गुण और आकृति पर आधारित होती है।[4] यह चार प्रकार की होती है—एक की एक से उपमा, अनेक से एक की, एक से अनेक की तथा अनेक से अनेक की उपमा होती है।[5] इन चारो के पृथक्-पृथक् उदाहरण दिये गये है। तत्पश्चात् फिर उपमा के सोदाहरण पाँच भेद बतलाए

1 The Natya Sastra, in 36 chapters, is more complete than the work of Aristotle, and provides a full view of Sanskrit dramatic poetry —Encyclopedia of Literature.

२ षट्त्रिंशकात्मक जगत्गगनावभास—
संविन्मरीचिचयचुम्बितविश्वशोभम्
षट्त्रिंशक भरतसूत्रमिद विवृण्वन्
वन्दे शिव तदर्थविवेकि धाम्।
—'अभिनवभारती'

३ उपमा रूपक चैव दीपक यमक तथा।
अलकारास्तुविज्ञेयाश्चत्वारो नाटकाश्रया ॥१७।४३॥

४ यत्किचित् काव्यबन्धेपु सादृश्येनोपमीयते।
उपमानाम विज्ञेया गुणाकृति समाश्रया ॥१७।४४॥

५ एकस्यैकेन सा कार्यानेकेनाप्यथवापुन।
अनेकस्य तथैकेन बहूना बहुमिस्तथा ॥१७।४५॥

गये हैं—(१) प्रशंसा (२) निंदा (३) कल्पिता (४) सदृशी और (५) किंचित् सदृशी।[1] इन भेदों के बाद यह कहा गया है कि उपमा के यही भेद संक्षेप से जानने चाहिए, शेष जो लक्षणो द्वारा नही कहे गये है, उनका लोक से लक्षण जान लेना चाहिये।[2] इस कथन से ज्ञात होता है कि उपमा के और भी भेद प्रचलित थे, किन्तु वे साधारण थे; अत: उनका वर्णन अनावश्यक समझा गया। उपमोपरात रूपक का लक्षण करते हुए लिखा है कि नाना द्रव्यो से जो गुणाश्रय उपमा हुआ करती है, जिसमें रूपक का सम्यक् वर्णन होता है, उसे रूपक कहते है।[3] अपने विकल्प से रचित तुल्य अवयवों वाला, कुछ सदृशता से युक्त रूप ही रूपक होता है।[4] भिन्न विषयो वाले शब्दो का दीपक की भाँति एक वाक्य द्वारा सयोग होने पर दीपक होता है[5] और शब्दों की पुनरावृत्ति यमक होती है।[6] यमक का भेदो सहित विस्तार-पूर्वक विवेचन किया गया है, किन्तु रूपक और दीपक के भेद नही किये गये है।

भरत के 'नाट्यशास्त्र' के पश्चात् वेदव्यासकृत 'अग्निपुराण' प्राप्त होता है। इसके साहित्य-प्रकरण के अश की रचना मे विद्वानो को सन्देह है। फिर भी 'अग्निपुराण' मे अलकारों की अल्पसख्या, जो भरत मुनि के 'नाट्यशास्त्र' से कुछ ही अधिक है उसका साधारणतया निरूपण किया जाना हमको विकासोन्मुख प्रगतिशील अलकारशास्त्र के दूसरे सोपान के रूप मे दृष्टिगत होता है।[7] अग्निपुराण के ३३७ से ३४७ तक के अध्यायो मे साहित्य-विवेचन हुआ है, जिसमे ३४२ से ३४४ अध्याय तक पन्द्रह अलंकारों का निरूपण है, पन्द्रह अलकारो मे से कुछ भामह से और कुछ दंडी से मिलते हैं। हो सकता है भामह और दंडी ही अग्निपुराण के अलकार-निरूपण से प्रभावित हुए हों।

---

१ प्रशसा चैव निंदा च कल्पिता सदृशी तथा।
किञ्चिच्च सदृशी ज्ञेया ह्यपमा पञ्चधा बुधै: ।।१७।५०।।

२ उपमाबुधैरेते भेदा ज्ञेया· समासत:।
शेषा ये लक्षणैनोक्तास्ते ग्राह्यकाव्यलोक्त ।।१७।५६।।

३ नानाद्रव्यानुषङ्गाथैर्यदौपम्यगुणाश्रयम्।
रूपनिर्वर्णनायुक्तं तद्रूपकमितिस्मृतम् ।।१७।५७।।

४ स्वविकल्पेन रचित तुल्यावयवलक्षणम्।
किन्चित्सादृश्यसपन्न यद्रूपंरूपक तुतत् ।।१७।५८ ।।

५ नानाधिकरणस्थानानाशब्दाना सप्रदीयत·।
एकवाक्येनसयोगोयस्तद्दीपक मुच्यते ।।१७।६०।।

६ शब्दाभ्यासस्तु यमक पादादिषुविकल्पितम्म।
विशेषदर्शन चास्य गदतो मे निबोधत ।।१७।६२।।

७ संस्कृत-साहित्य का इतिहास।
—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

आचार्य भामह भारतीय अलकारशास्त्र के आद्यालकारिक माने जाते है। इन्होने ही सर्वप्रथम 'नाट्यशास्त्र' की परतन्त्रता से मुक्त होकर अलंकारशास्त्र का अभिनव अनुशीलन प्रस्तुत किया। भामह का 'काव्यालकार' एक बहुत ही महत्वपूर्ण रचना है। इसकी महत्ता इसी से स्पष्ट है कि परवर्ती आनन्दवर्धन और मम्पट जैसे गम्भीररुचि के आचार्यो ने भी इनके मत का उल्लेख किया है। उद्भटाचार्य ने तो 'भामह विवरण' नाम से भाष्य ही लिख डाला। ४०० श्लोको वाले 'काव्यालकार' के छः परिच्छेदो मे पाँच विषयो का विवेचन हुआ है[1] जो इस प्रकार है—काव्यशरीर, अलकार, दोष, न्याय-निर्णय और शब्द शुद्धि। दूसरे और तीसरे परिच्छेदों के एक सौ साठ श्लोकों मे अलकार-निरूपण हुआ है।

भामह अलकारवादी आचार्य है। वह अलकारो का मूलाधार वक्रोक्ति मानते हैं। भामह की वक्रोक्ति अतिशयोक्ति का पर्याय है। उनके अनुसार जो वचन किसी निमित्त से लोकसीमा का अतिक्रमण कर जाय उसे अतिशयोक्ति कहा जाता है।[2] यह सारी अतिशयोक्ति ही वक्रोक्ति है। इससे अर्थ चमत्कृत हो जाता है। कवि को इसी मे यत्न करना चाहिए। कौन अलकार है जो इससे रहित हो।[3] इसी सिद्धान्त को मानने के कारण ही तो भामह ने हेतु, सूक्ष्म और लेश को अलकार नही माना, क्योकि ये इतिवृत्तात्मकता के वाचक है और वक्रोक्ति के अभिधान से शून्य है।[4] उदाहरणार्थ सूर्यास्त हो गया, चन्द्रमा चमक रहा है, पक्षीगण निवास के लिये जा रहे हैं, यह भी कोई काव्य है? इसे तो 'वार्ता' कहते है।[5] वक्रोक्ति का माहात्म्य-वर्णन करते हुए भामह ने लिखा है कि 'नितान्त' आदि शब्दो द्वारा व्यक्त अतिशयोक्ति से ही वाणी-सौष्ठव नही हो जाता। वक्र शब्द और अर्थ की उक्ति ही वाणी का काम्य अलकार है।[6]

---

१ षष्ठ्या शरीर निर्णीत शतषष्ठ्या त्वलङ्कृति.।
पन्चाशता दोषदृष्टि: सपृत्या न्यायनिर्णय.॥
षष्ठ्या शब्दस्यशुद्धिः स्यादित्येववस्तुपन्चकम्।
उक्त षड्भि. परिच्छेदैः भामहेन क्रमेण व॥ 'काव्यालकार'

२ निमित्ततो वचो यतु लोकातिक्रन्तगोचरम्।
मन्यन्तेऽतिशयोक्ति तामलङ्कारतया यथा॥ २। ८१॥

३ सैषा सर्वैव वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते।
यतोऽस्था कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनयाविना॥ २। ८५॥

४ हेतुश्च सूक्ष्मो लेशोऽथ नालङ्कारतया मत।
समुदायाऽभिधानस्य वक्रोवल्यनाभिधानत॥ २। ८६॥

५ गतोऽस्तमार्को भातीन्दुर्यान्ति वासाय पक्षिणः।
इत्येवमादि कि काव्यं वार्त्तामेना प्रचक्षते॥ २। ८७॥

६ नितान्तादिमात्रेण जायते चारुता गिराम्।
वक्राऽभिधेय शब्दोक्तिरिष्धवाचामलङ्कृतिः॥ १। ३६॥

भामह ने 'काव्यालंकार' मे अपने पूर्ववर्ती अनेक आचार्यों का नामोल्लेख किया है। इससे प्रतीत होता है कि भरत और भामह के मध्यकालीन आचार्यों ने अलंकारो की संख्या मे वृद्धि की थी, किन्तु उनके ग्रंथ अनुपलब्ध है। उन्ही आचार्यों द्वारा निरूपित अलंकारो के आधार पर द्वितीय परिच्छेद मे अलंकारो के पृथक्-पृथक् वर्ग निश्चित किये गये हैं। जैसे 'पन्चैवा न्यैरुदाहृता' कह कर अनुप्रास, यमक रूपक दीपक और उपमा नामक पाँच अलंकारो को एक वर्ग मे रक्खा है।[1] किसी अन्य आचार्य द्वारा निरूपित आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, विभावना, समासोक्ति और अतिशयोक्ति नाम से छ अलंकारो को दूसरे वर्ग मे रक्खा है।[2] इसी प्रकार किसी दूसरे आचार्य के हेतु, सूक्ष्म तथा लेश अलंकारो को 'वार्ता' कह कर इनका खण्डन किया है और अन्त मे प्रचलित यथासंख्य, उत्प्रेक्षा और स्वभावोक्ति अलंकारो का वर्णन किया है। स्वभावोक्ति को भामह ने कोई महत्त्व नही प्रदान दिया है। इस प्रकार द्वितीय परिच्छेद मे केवल सत्रह अलंकारो का वर्णन किया गया है। तृतीय परिच्छेद मे प्रेयस्, रसवत्, उर्जस्वी, पर्यायोक्त, समाहित, उदात्त, श्लिष्ट, अपन्हुति, विशेषोक्ति, विरोध, तुल्योगिता, अप्रस्तुतप्रशसा, व्याजस्तुति, निदर्शना, उपमारूपक, उपमेयोपमा, सहोक्ति, परिवृत्ति, ससंदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षावयव, संसृष्टि, भाविकत्व नामक तेइस अलंकारो का निरूपण हुआ है। अन्त मे आशी अलंकार का वर्णन है। इस प्रकार 'काव्यालंकार' मे कुल ४१ अलंकार है, किन्तु हेतु, सूक्ष्म और लेश मे भामह अलंकारत्व नही मानते, अत भामह वक्रोक्ति को काव्य का जीवातु मानते है। फिर भी, उन्होने भट्टिकाव्यकार के सदृश, दुरूह रचना के प्रति असंतोष प्रकट किया है और प्रहेलिका को काव्य नहीं माना है।[3] भामह ने काव्यालंकार मे अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का केवल अनुकरण ही नही किया, अपितु कतिपय नवीन अलंकारो का आविष्कार भी किया है।[4]

भामह के पश्चात् दण्डी का समय आता है। यह भी अलंकारवाद के समर्थक है। इनका 'काव्यादर्श' बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ रहा है। इसमे तीन परिच्छेद और

---

१ अनुप्रास समयको रूपक दीपकोपमे।
इतिवाचामलङ्कारा पन्चैवान्येरुदाहृता ॥ २ । ४ ॥

२ आक्षेपोऽर्थान्तरन्यासो व्यतिरेकोविभावना।
समासातिशयोक्ती च षडलङ्कृतयोऽपरा ॥२।६६॥

३ काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवत्।
उत्सवस्सुधियामेव हन्तादुर्मेधसो हता ॥२।२१॥ 'काव्यालंकार।'
व्याख्यागम्यमिद काव्यमुत्सवस्सुधियामलम्।
हता दुर्मेधसश्चास्मिन्विद्वत्प्रियचिकीर्षया ॥१२।३४॥ 'भट्टिकाव्य।'

४ इतिनिगदितास्तास्ता वाचामलङ्कृतयोमया।
बहुविधकृतीर्दृष्ट्वाऽन्येषा स्वय परितर्क्य च ॥ ५ । ६६ ।

१६० श्लोक है । प्रथम परिच्छेद में काव्य की परिभाषा, उसके भेद, महाकाव्यलक्षण, गद्य के भेद, कथा और आख्यायिका की अभिन्नता तथा उनका विवरण, भाषाभेद, वैदर्भी तथा गौडी शैलियाँ, अनुप्रास, रस, गुण और अत मे कवित्व के तीन साधन-प्रतिभा, पठन, अभ्यास का वर्णन है । द्वितीय परिच्छेद मे सस्वृति सहित ३५ अर्थालंकारो के लक्षण और उदाहरण है । तृतीय परिच्छेद मे ७७ श्लोको मे यमक का विस्तार के साथ वर्णन १८ श्लोको मे चित्रबध, २६ श्लोको मे प्रहेलिका तथा ६३ श्लोको मे दोष-विवेचन किया गया है ।

दण्डी अल कारो को काव्य की शोभा बढाने वाले धर्मो के रूप मे स्वीकार करते है ।[1] वह शब्द और अर्थ से सम्बन्धित दो प्रकार के अल कार मानते है । शब्दाल कारो के अन्तर्गत पदासत्ति (श्रुत्यानुप्रास), अनुप्रास (वृत्यानुप्रास), यमक और चित्र आते है । इनमे अन्तिम दो को वे एकान्त मधुर नही मानते । इसलिये इनका अन्तिम परिच्छेद मे वर्णन किया है । अर्थाल कारो के वर्णन मे दण्डी ने सम्पूर्ण वाङ्मय को दो भागो स्वभावोक्ति और वक्रोक्ति मे विभक्त करते हुए श्लेष को प्राय सभी वक्रोक्तियो को शोभा देने वाला कहा है ।[2] स्वभावोक्ति का आधार स्वभावाख्यान और वक्रोक्ति का आधार कल्पिताख्यान है । शास्त्रो मे स्वभावोक्ति का अटल साम्राज्य है ही, काव्यो मे भी वाछित है ।[3] इस प्रकार स्वभावोक्ति को वक्रोक्ति से अधिक महत्वपूर्ण स्थान दिया है । भिन्न-भिन्न अवस्थाओ मे स्थित पदार्थो के रूप को स्पष्ट करती हुई स्वभावोक्ति प्रथमालकार है ।[4] जाति इसी का अपर पर्याय है । भामह ने इसके विपरीत स्वभावोक्ति को महत्त्वहीन स्वीकार किया । दण्डी ने भामह के छोडे हुए सभी अलकारों को स्वीकार कर लिया तथा उपमारूपक, उपमेयोपमा, ससदेह, अनन्वय, उत्प्रेक्षवयव को स्वतन्त्र अलंकार मान कर अलकार-भेद के रूप मे माना । उपमारूपक को रूपक का भेद, उपमेयोपमा को अनन्योपमा, ससदेह को सशयोपमा और अनन्वय को नियमोपमा माना । ये सभी दण्डीकृत उपमा-भेद है । उत्प्रेक्षावयव को काव्यादर्श मे अचेनोत्प्रेक्षा कहा जा सकता है । कही-कही दण्डी ने अलकारो के नामो मे परिवर्तन भी कर दिया है, यथा लेश को लव, अप्रस्तुन-प्रशसा को अप्रस्तुतस्तोत्र । साथ ही आवृत्ति और सकीर्ण नामक नवीन अलकारो की उद्भावना की है । इसके अतिरिक्त चित्रबन्ध और प्रहेलिका को भी अलकारान्तर्गत् वर्णन किया है, किन्तु भामह ने इन दोनो का विवेचन नही किया है ।

---

१ काव्यशोभाकरान्धर्मान्लकारान् प्रचक्षते ॥ २ । १ ॥ 'काव्यादर्श'

२ श्लेषः सर्वासु पुष्णातिप्रायो वक्रोक्तिषुश्रियम् ।
द्विधा स्वभावोक्तिः वक्रोक्तिश्चेति वाङ्मयम् ॥ २ । ३६३ ॥

३ शास्त्रेष्वस्यैव साम्राज्यं काव्येष्वप्येतदीप्सितम् ॥ २ । १३ ॥

४ नानावस्थं पदार्थाना रूप साक्षाद्विवृण्वती ।
स्वभावोक्तिश्च जातिश्चेत्याद्यासालङ्कृतिर्यथा ॥ २ । ८ ॥

भामह और दण्डी के समान उद्भट भी अलकार सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। सस्कृत–काव्यशास्त्र में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। लगभग सभी आचार्यों ने इनके मत का सादर उल्लेख किया है। इनका "काव्यालंकारसारसग्रह" अलंकारों का एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रथ है। छ वर्गो मे विभक्त इस ग्रथ मे लगभग ७६ कारिकाओं द्वारा ४१ अल कारो का निरूपण किया गया है। इनके अल कार-विवेचन का बहुत कुछ आधार भामह का काव्यालंकार है। आक्षेप, विभावना, अतिशयोक्ति, यथासख्य, पर्यायोक्त, अपन्हुति, विरोध, अप्रम्तुतप्रशसा, सहोक्ति, सन्देह और अनन्वय की परिभाषाये सर्वथा भामह के अनुसार है। इसके अतिरिक्त अनुप्रास, उत्प्रेक्षा, रसवत्, भाविक आदि अल कारो के लक्षणो मे अत्यधिक साम्य है। भामह के समान उद्भट भी सूक्ष्म और लेश मे अल कारता नही मानते, किन्तु, इसका यह तात्पर्य नही है कि उद्भट ने भामह का बिल्कुल अनुकरण ही किया है। कही-कही पर उद्भट ने भामह के निरूपित अल कारो का उल्लेख तक नही किया है, यथा उपमारूपक, यमक, उत्प्रेक्षावयव, और आशी नामक अल कार। इसके अतिरिक्त काव्याल कार-सार- सग्रह मे ऐसे भी अल कार आये है, जिनका काव्याल कार मे नाम तक नही प्राप्त होता, उदाहरणार्थ काव्यलिग (काव्यहेतु), काव्यदृष्टान्त, सकर और पुनरुक्तवदाभास। उद्भट के ये अलंकार सर्वथा नवाविष्कृत है, जो अल कारशास्त्र को मौलिक देन है। निदर्शना को उद्भट विदर्शना कहते है। रसभावादि को यह भी रसवदादि अल कारो के अन्तर्गत मानते है। इन अल कारो को सर्व प्रथम व्यवस्थितरूप देने का श्रेय उद्भट को ही है।

"अर्थभेदेन तावत शब्दा: भिद्यन्ते" के अनुसार शब्द और अर्थ के भेद से श्लेष के दो भिन्न रूप दिखला कर दोनो को अर्थाल कार मे रक्खा है तथा अल कारो के योग मे श्लेष की प्रबलता प्रदर्शित की है। इसका खण्डन मम्मटाचार्य ने अपने 'काव्य-प्रकाश' मे किया है। अनुप्रास अलकार के अन्तर्गत् उपनागरिका आदि वृत्तियों के निरूपण करने की जो शैली मम्मट ने चलाई थी, उसका आधार काव्यालकार सार-सग्रह ही है। व्याकरणानुसार उपमा-भेद का प्रतिपादन सर्व प्रथम उद्भटाचार्य ही ने किया था। बाद मे इसी का विस्तृत विवेचन मम्मटादि आचार्यो द्वारा हुआ। भट्टोद्भट ने भामह के लक्षणो का अनुकरण, परिवर्तन और त्याग स्वाभिमतानुकूल किया है। जहाँ कही उद्भट भामह से सहमत थे वहाँ तो उनके लक्षणो को उसी रूप मे ग्रहण कर लिया है, जहा थोडा मतभेद था वहा लक्षणो मे परिवर्तन कर दिया है और जहा बिल्कुल असहमत थे, वहा नवीन परिभाषाओ का निर्माण कर कतिपय मौलिक उद्भावनायें की है। इस प्रकार उद्भट का 'काव्यालकार सार-सग्रह' पर्याप्त मौलिक ग्रंथ है। यह भारतीय अलंकार-शास्त्र की परम्परा मे सदा सादर स्मरणीय रहेगा।

रीति–सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य वामन के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "काव्यालकार–सूत्रवृत्ति" के पाच अधिकरणो मे १२ अध्याय और ३१६ सूत्र हैं। "यह ग्रन्थ सूत्रो

में है और इस पर वृति स्वय वामन ने लिखी है। इसके प्रथम अधिकरण में काव्य-लक्षण, काव्याप्रयोजन, अधिकारी, रीति और काव्य के अनेक प्रकारों का वणन है। दूसरे अधिकरण मे पद, वाक्य और वाक्यार्थ दोषों का विवेचन किया गया है। तीसरे अधिकरण मे अलंकार और गुण की भिन्नता का निरूपण कर शब्द और अर्थ के दश गुणो का पृथक्-पृथक् विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है। चौथे अधिकरण मे अलकार-वर्णन हुआ है और पाचवा प्रकरण शब्द-शुद्धि का है।

वामन का सिद्धान्त है कि अलंकार के योग से ही काव्य उपादेय होता है[1] और काव्य मे सौन्दर्य के आधायक तत्व का नाम अलकार है[2]। गुण और अलंकार के पार्थक्य का निरूपण करते हुए वामन ने कहा है कि गुणकाव्य के शोभाधायकधर्म है तथा अलंकार काव्य के उत्कर्षाधायक हेतु है[3]। इस प्रकार गुण काव्य के नित्य अंग और अलंकार अनित्य अंग हुए।

वामन ने कुल ३३ अलंकारों का विवेचन किया है। जिसमे ३१ पूर्ववर्ती आचार्यों के समान है और शेष दो व्याजोक्ति तथा वक्रोक्ति नवाविष्कृति हैं। वामन ने उपमा को प्रमुख अलंकार माना है और इसी के प्रपञ्चरूप में समस्त अलंकारो को स्वीकार किया है। इन्होने भामह और दण्डी द्वारा निरूपित स्वभावोक्ति, प्रेय, रसवत्, ऊर्जस्वी, पर्यायोक्ति, उदात्त, भाविक और आशी नामक आठ अलंकारों को छोड़ दिया है। इनके अतिरिक्त केवल दण्डी द्वारा निरूपित सकीर्ण, आवृत्ति, हेतु, सूक्ष्म और लेश अलंकारों को भी नहीं लिया है। इसी प्रकार उद्भट के काव्यलिग, दृष्टान्त का भी वर्णन नही प्राप्त होता।

भामह और दडी वक्रोक्ति को अलकार का मूलाधार मानते थे, किन्तु वामन ने नितान्त नवीन और विलक्षण कल्पना कर वक्रोक्ति को अर्थालकार के रूप में माना है। इनका वक्रोक्ति लक्षण है कि सादृश्य से उत्पन्न होने वाली लक्षणा वक्रोक्ति कहलाती है[4]। इसी प्रकार इनकी विशेषोक्ति का लक्षण भी सर्वथा भिन्न है, जो पण्डितराज जगन्नाथ के अनुसार दृढारोपरूपक है। वामन ने आक्षेप के दो भेद किये हैं। मम्मटानुसार इसमे से एक प्रतीप है और दूसरा समासोक्ति है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वामन के विवेचन की अपनी कुछ सीमायें हैं, किन्तु उनके अन्तर्गत उन्होने अनेक महत्त्वपूर्ण स्थापनायें की हैं जिनके कारण वह अन्यतम आचार्यों मे प्रतिष्ठित किये जाते हैं।

आचार्य रुद्रट का 'काव्यालङ्कार' नामक ग्रन्थ काव्यशास्त्र का एक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें अलंकारो का बहुत ही विद्वतापूर्ण अपूर्व शैली मे प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ मे १६ अध्याय और ७३४ आर्याछन्द हैं। पहले अध्याय मे काव्य प्रयोजन, काव्यहेतु, दूसरे अध्याय मे काव्यलक्षण, रीति, भाषाभेद,

---

(१) काव्य ग्राह्यमलंङ्कारात्।। १। १। १।।

(२) सौन्दर्यमलङ्कारः ।। १। १। २।।

(३) काव्यशोभाया कर्तारोधर्मागुणाः तदतिशयहेतवोऽलङ्काराः।।३। १। १, २।।

(४) सादृश्यात् लक्षणा वक्रोक्तिः ।।४।३।८।।

वक्रोक्ति आदि तीन शब्दालंकार; तीसरे अध्याय में यमकालंकार; चौथे अध्याय में श्लेषालंकार, पाँचवें अध्याय मे चित्रकाव्य; छठे अध्याय मे शब्दकोष, सातवें, आठवें, नवें और दसवें अध्यायो मे अर्थालकार, ग्यारहवें अध्याय मे अर्थालकार-दोष, बारहवें, तेरहवें, चौदहवे और पन्द्रहवे अध्यायो मे रस और नायिका-भेदादि-निरूपण तथा सोलहवे अध्याय मे महाकाव्य प्रबन्धादि का विवेचन है। ग्रन्थ के विषय-विवेचन को देखने से ज्ञात होता है कि रुद्रट ने आठ अध्यायों मे अलकार-निरूपण और शेष अध्यायो मे शेष विषयो का विवेचन किया है। इससे प्रतीत होता है कि यद्यपि रुद्रट का भुझाव अलंकारवाद की ओर ही था; फिर भी भरत के पश्चात् रस का व्यवस्थित और स्वतन्त्रनिरूपण इनके ही ग्रन्थ मे प्राप्त होता है। नायक-नायिका-भेद का भी व्यवस्थितविवेचन इन्होने ही सर्वप्रथम किया है।

रुद्रट ने पाच शब्दालंकार माने हैं—वक्रोक्ति, यमक, अनुप्रास, श्लेष और चित्र। अर्थालकार-निरूपण में रुद्रट ने मौलिकता दिखलाई है। इन्होंने ही सर्वप्रथम अर्थालकारो का वैज्ञानिक वर्गीकरण प्रस्तुत करने का प्रयास किया। यद्यपि वर्गीकरण को पूर्णरूपेण वैज्ञानिक नही कहा जा सकता; फिर भी किये गये प्रयास से अलंकारो के प्रति रुद्रट की सूक्ष्म बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। अर्थालंकारों को चार भागो मे विभक्त किया है—वास्तव, औपम्य, अतिशय और श्लेष। अन्य समस्त अलकार इन्ही के विशेष रूप होते हैं।[१] जो वस्तु के स्वरूप का वर्णन करे, उसे वास्तव कहते है। यह अर्थ की पुष्टि करने वाला, विपरीत प्रतीति से निवृत्त कराने वाला तथा उपमा, अतिशय एव श्लेष से भिन्न होता है।[२] इसके २३ भेद होते हैं जिनमे १४ नाम नये है—समुच्चय, भाव, पर्याय, विषय, अनुमान, परिकर, परिसंख्या कारणमाला, अन्योन्य, उत्तर, सार, अवसर, मीलित और एकावली। भावालंकार के अतिरिक्त इस वर्ग के सभी अलंकारो को उत्तरकालीन आचार्यो ने ग्रहण कर लिया है। जिसमे वक्ता किसी वस्तु के स्वरूप का सम्यक् प्रतिपादन करने के लिये उसके समान दूसरी वस्तु का वर्णन करे उसमे औपम्य अलंकार होता है।[३] इसके २१ भेद होते है जिनमे आठ नवीन हैं—मत, प्रतीप, उभयन्यास, भ्रातिमत्, प्रयत्नीक पूर्व, साम्य और स्मरण। आगे चल कर इनमे से प्रतीप, भ्रातिमान, प्रयत्नीक और स्मरण अपना लिये गये। जहाँ कोई अर्थ और धर्म का नियम कही प्रसिद्धि के बाद से लोक का उल्लघन करके अन्यथा स्वरूप को प्राप्त हो जाता है, वहाँ अतिशय

---

१ अर्थस्यालंकारा वास्तवमौपम्यतिशय. श्लेषः।
एषामेवविशेषा अन्ये तु भवन्ति नि शेष ॥७।९॥ 'काव्यालकार'।

२ वास्तवमिति तज्ज्ञेय क्रियते वस्तुस्वरूपकथन यत्।
पुष्टार्थमविपरीत निरूपमनतिशयमश्लेषम् ॥७।१०॥

३ सम्यक्प्रतिपादयितु स्वरूपतो वस्तु तत्समानमिति।
वस्त्वन्तरमभिदध्याद्वक्ता यस्मिस्तदौपम्यम् ॥८।१॥

अलंकार होता है।[१] इसके बारह भेद होते हैं जिनमे छ नवीन है—विशेष, तद्गुण, अधिक, असगति, पिहित और व्याघात। जहाँ अनेकार्थकपदो से एक ही वाक्य अनेक अर्थों का बोध कराता है, वहाँ श्लेष अलंकार होता है।[२] इसके दो भेद है—शुद्ध और सकीर्ण। शुद्ध के दस भेद होते है और सकीर्ण के दो भेद। शुद्ध श्लेष मे विरोध ने तो विरोधाभास नाम से स्वतन्त्र अलंकार का रूप धारण कर लिया है और व्याजश्लेष व्याजस्तुति है। इस प्रकार रुद्रट ने ५ शब्दालंकार और ५८ अर्थालंकारों का निरूपण किया है। अर्थालंकारो मे कुछ अलंकार ऐसे है जो दो-दो वर्गों मे आ गये है। यथा-सहोक्ति, समुच्चय, उत्तर, उत्प्रेक्षा, पूर्व आदि है। श्लेषालंकार शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो मे आया है। इस प्रकार के अलंकारो मे नाम-साम्य अवश्य है, किन्तु लक्षणो मे विभिन्नता है। अच्छा होता यदि इन अलंकारो के नामो मे भी विभिन्नता होती।

इतने विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुचते है कि रुद्रट ने न केवल अलंकारो को एक नवीन वर्गीकरण मे रक्खा, अपितु अनेक अलंकारो का आविष्कार कर अलंकारशास्त्र को समृद्ध बनाने का स्तुत्य कार्य किया।

रुद्रट के पश्चात् युगान्तरकारी आचार्य आनन्दवर्धन ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'ध्वन्यालोक' में ध्वनि नामक सार्वभौम सिद्धान्त की स्थापना की। 'ध्वन्यालोक' मे चार उद्योत और ११७ कारिकाएँ है। प्रथम उद्योत मे ध्वनि-सिद्धान्त की स्थापना की गई है। द्वितीय उद्योत मे ध्वनि-भेदो का विस्तृत निरूपण, प्रसगवश गुण, रीति पदवाक्य-व्यजकता, सघटना, रसौचित्य है और चतुर्थ उद्योत मे ध्वनिप्रयोजन का पर्याप्त निरूपण किया गया है। 'ध्वन्यालोक' मे तीन भाग है—कारिका, वृत्ति और उदाहरण।

आनन्दवर्धन ने गुण और अलंकार का भेद स्पष्ट करते हुये लिखा है कि गुण रसादि अङ्गी अर्थो का, शौर्यादि के समान, अवलम्बन करते है और अलंकार वाच्यवाचक कटकादिवत् आश्रय लेते है।[३] अर्थात् शब्द-अर्थ काव्य के अंग है, अलंकार काव्य के आभूषण और ध्वनित रस काव्य की आत्मा है। आनन्दवर्धन को ध्वनिकाव्य मे वे ही अलंकार मान्य है जिनकी रचना रस आक्षिप्त रूप मे बिना

---

१ यत्रार्थधर्मनियम प्रसिद्धिबाधाद्विपर्यय याति।
कश्चित्क्वचिदतिलोक स स्यादित्यतिशयस्तस्य ॥९।१॥

२ यत्रैकमनेकार्थैर्वाक्यं रचित पदैरनेकस्मिन्।
अर्थे कुरुते निश्चयमर्थश्लेष स विज्ञेय ॥१०।१॥

३ तमर्थमवलम्बते येऽङ्गिनं ते गुणाः स्मृता।
अङ्गाश्रितास्त्वलङ्कारा मन्तव्या कटकादिवत् ॥२।६॥ ध्व० लो

किसी अन्य प्रयत्न के हो सके ।[1] कोई-कोई रसयुक्तरचनाएँ महाकवि के रस निबन्धानुकूल एक ही व्यापार से सालंकार भी बन जाती है । परन्तु यमकादि की रचना मे तो प्रतिभावान् कवि को भी पृथक् प्रयत्न करना पड़ता है । इसीलिये वे रस के अङ्ग नही होते । हाँ, रसाभासो मे उनको अङ्ग बनाने का निषेध नही है, केवल प्रधानभूत ध्वनिरूप श्रृंगार आदि रसो मे यमकादि-निबन्धन निषिद्ध है । इसीलिये ध्वन्यात्मक श्रृंगार मे अवसर की अनुकूलता और प्रतिकूलता को सोचसमझ कर रूपकादि अलंकार प्रयुक्त किये जाने चाहिये । तभी वे वास्तविक अलंकारता को प्राप्त होते है ।[2] अलंकारादि से युक्त होने पर भी जैसे लज्जा ही कुलबधुओं का मुख्य अलकार है, उसी प्रकार उपमादि अलकारों से भूषित होने पर भी व्यग्यार्थ की छाया ही महाकवियो की वाणी का मुख्य अलकार है ।[3] रसभावादि की विवक्षा के अभाव मे अलकारों की जो रचना होती है उसे चित्रकाव्य माना है ।[4] आनन्दवर्धन के अनुसार व्यंग्य के संस्पर्श होने पर शोभातिशय को प्राप्त होने वाले रूपकादि सभी अलकार गुणीभूतव्यग्य के मार्ग हैं । यह गुणीभूतव्यग्यत्व व्यंग्यसंस्पर्श चारुत्वयोगी सभी अलंकारो मे सामान्यरूप से रहता है । उस गुणीभूतव्यग्य के लक्षण को समझ लेने पर सभी अलंकार स्पष्ट हो जाते है । सामान्यलक्षण-रहित प्रत्येक अलंकार के पृथक्-पृथक् स्वरूप कथन से तो प्रतिपद पाठ से अनन्त शब्दों के ज्ञान के समान अनन्त अलकारों का ज्ञान नही हो सकता । कथन की अनन्त शैलिया है और वे ही अलंकारों के अनन्त प्रकार हैं ।[5] आनन्दवर्धन के इस प्रकार के मौलिक विवेचन ने भामह, दण्डी, उद्भटादि आचार्यों के अलकारवाद को महत्वहीन बना दिया और ध्वनि को पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित कर दिया ।

आनन्दवर्धन और कुंतक के मध्यकाल मे अभिनवगुप्त, राजशेखर, मुकुलभट्ट और धनञ्जय नामक आचार्यों के काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थ प्राप्त होते हैं । साहित्य और दर्शन के मेधावी आचार्य अभिनव-

---

१ रसाक्षिप्ततया यस्य बन्धः शक्यक्रियोभवेत् ।
अपृथग्यत्ननिर्वर्त्यः सोऽलङ्कारोध्वनौमत. ।।२।१६।।

२ ध्वन्यात्मभूते श्रृङ्गारे समीक्ष्यविनिवेशित. ।
रूपकादिलङ्कारवर्ग एति यथार्थताम् ।।२।१७।।

३ मुख्यामहाकवि गिरामलंकृतिभृतामपि ।
प्रतीयमानच्छायैषाभूषा लज्जैवयोषिताम् ।३।३८।।

४ रसभावादिविषयविवक्षा विरहे सति ।
अलकारनिबन्धो यः स चित्रविषयोमतः ।।३।४३ पर वृत्ति ।।

५ एकैकस्य स्वरूपविशेषकथनेन तु सामान्यलक्षणरहितेन प्रतिपदपाठेनैवशब्दा न शक्यन्तेतत्वतो निर्ज्ञातुम् । आनन्त्यात् ।
अनन्तता हिवाग्वि कल्पास्तत्प्रकाश एव चालकाराः ।।
।।३।३७ पर वृत्ति ।।

गुप्त 'नाट्यशास्त्र' और 'ध्वन्यालोक' के व्याख्याता के के रूप मे प्रसिद्ध है। इनकी व्याख्याये इतनी प्रौढ और पाडित्यपूर्ण है कि वे मौलिकग्रन्थो स भी अधिक आदरणीय हो गई है। कविराज राजशेखर की 'काव्यमीमासा' के अठारह अधिकरण माने जाते है, लेकिन 'कविरहस्य' नामक एक ही अधिकरण उपलब्ध है जिसमे अठारह अध्याय है। यह काव्यशास्त्र का अपने ढग का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। आचार्य मुकुलभट्ट की केवल एक ही कृति 'अभिधावृत्तिमातृका' प्राप्त होती है। इसमे पन्द्रह कारिकाये है जिन पर मुकुलभट्ट ने स्वय वृत्ति लिखी है। ग्रन्थ मे अभिधा और और लक्षणा का विशिष्ट विवेचन किया गया है। आचार्य धनजय का 'दशरूपक' भरत के 'नाट्यशास्त्र' का उपयोगी सारग्रन्थ है। इसमे चार अध्याय और लगभग तीन सौ कारिकाये है है। इसके टीकाकार धनजय के भाई धनिक है।

ध्वनि-विरोधी आचार्यों मे कुतक और महिमभट्ट प्रसिद्ध है। वक्रोक्ति को काव्य का जीवनाधायक तत्व माननेवाले आचार्य कुतक का 'वक्रोक्तिजीवितम्' भारतीय काव्यशास्त्र का एक मौलिक विवेचनापूर्ण ग्रन्थ है। इसके विवेचन के तीन अग है—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। भामह से प्रेरणा प्राप्त कर कुतक ने काव्य मे वक्रोक्ति का व्यापक विधान किया है। 'वाक्य-वक्रता' के अन्तर्गत ही समस्त अलकारो का अन्तर्निवेश कर दिया है। कुतक ने वक्रोक्ति को काव्य का प्राण और अलकार दोनो माना है।[1] यद्यपि कुतक ने 'सालकरस्यकाव्यता' कह कर काव्य मे अलकारों की अनिवार्यता स्वीकार की है, फिर भी उन्होने अलकारो के विस्तार को महत्व नही दिया है। कुतक ने अपने सिद्धात के अनुसार अलकारो का बहुत ही मौलिक विवेचन प्रस्तुत किया है। सर्व प्रथम तो आचार्य कुतक ने स्वभावोक्ति को अलंकार मानने की परम्परा का विरोध करते हुए कहा कि जिन आलंकारिक आचार्यों के मत मे स्वभावोक्ति भी अलकार है, उनके मत मे अलकार्य क्या रह जाता है ?[2] वह शरीर ही यदि स्वभावोक्ति नामक अलकार हो जाय तो स्वभावोक्ति अलकार अन्य किस अलंकार्य को अलकृत करेगा ? क्या कोई स्वय अपने कधे पर चढ़ सकता है, अर्थात् स्वभावोक्ति को अलकार मानना उचित नही है।[3] स्वभावोक्ति की भाति भामह आदि के रसवत् अलकारो का भी खडन किया है कि किसी की प्रतीति न होने से तथा रस के साथ अलकार शब्द का प्रयोग करने पर शब्द तथा

---

१ उभावेतावलकार्यो तयोः पुनरलकृति· ।
वक्रोक्तिरेव · ·····।
॥१।१०॥ 'वक्रोक्तिजीवितम् ।

२ अलकारकृता येषा स्वभावोक्तिरलकृति. ।
अलकार्यतया तेषा किमन्यदवतिष्ठते ।१।११।

३ शरीरचेदलङ्कारः किमलकुरुते परम् ।
आत्मैव नात्मनः स्कन्धम् क्वचिदप्यधिरोहति ॥१।१३॥

अर्थ की संगति भी न होने से रसवत् अलंकार नही हो सकते।[१] इसके अतिरिक्त और भी छोटे मोटे तर्क रसवत् अलकार खण्डनार्थ प्रस्तुत किए गए है। इसी प्रकार रसवत् वर्ग के प्रेयस्, ऊर्जस्वी और समाहित अलकारो के साथ उदात्त को भी अमान्य घोषित किया है। रसवत् अलकारो की सत्ता तो कुतक को मान्य है; किन्तु पूर्वाचार्यों से भिन्न रूप मे। रसतत्व के विधान से सहृदयो के आल्हाददायक होने से जो कोई अलकार रस के समान हो जाता है, वह अलकार कुतक के मतानुसार रसवत् अलकार कहा जा सकता है।[२] इन्ही अलकारो के सदृश कुछ और भी अलकार हैं, जिनका वास्तव मे सम्बन्ध वर्णन शैली से न होकर वर्ण्य-विषय से है। ये अलकार है आशी, विशेषोक्ति आदि। 'स्वभावमात्रमेवरमणीयम्' कहकर कुतक ने इन्हे अलकार नही माना है। कतिपय तथाकथित अलकारो मे अलकारता का निषेध इस आधार पर किया है कि वे चमत्कार रहित है। इस प्रकार के अलकारो मे यथासख्य, हेतु, सूक्ष्म, लेश आदि हैं, जिनमे भणिति-वैचित्र्य के अभाव मे कोई सौदर्यदृष्टिगत नही होता। इसी आधार पर सदेह के भेदो का भी खडन किया है। अलकारों के भेद-विस्तार को महत्व न देने के कारण कुतक ने अनेक अलकारो का महत्वपूर्ण अलंकारों में अन्तर्निवेश कर दिया है। जैसे प्रतिवस्तूपमा, तुल्ययोगिता, निदर्शना, परिवृत्ति और अनन्वय का उपमालकार मे अन्तर्भाव कर दिया है। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने अनन्वय को कल्पितोपमान उपमा नाम दिया है। समासोक्ति की सता भी श्लेष से पृथक् कुतक को अमान्य है। इस प्रकार कुतक ने दीपक, रूपक, अप्रस्तुतप्रशंसा, पर्यायोक्त, उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति, उपमा, श्लेष, व्यतिरेक, सहोक्ति, दृष्टान्त, अर्थान्तर-न्यास और आक्षेप नामक अलकारों को ही मान्यता प्रदान की है। इनके अतिरिक्त विभावना, सन्देह, अपन्हुति, संसृष्टि और संकर को भी अलंकार माना है, किन्तु इन्हे कोई विशेष महत्व नही दिया है। कुतक के समान महिमभट्ट ने भी 'व्यक्तिविवेक' (व्यक्ति=व्यजना, विवेक=समीक्षा) नामक ग्रन्थ की रचना कर ध्वनि-सिद्धांत का अनेक युक्तियों से खण्डन किया है।

महाराज भोज का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'सरस्वतीकठाभरण' पाच परिच्छेदों मे विभक्त है। पहले परिच्छेद मे दोष-वर्णन है। दूसरे, तीसरे और चौथे परिच्छेदों में क्रमश: शब्दालंकार, अर्थालकार और उभयालकार-निरूपण है। पांचवे परिच्छेद मे रस, भाव, पंच-सधि और नायक-नायक भेद का विवेचन किया गया है।

---

१ अलंकारो न रसवत् परस्याप्रतिभासनात्।
स्वरूपादतिरिक्तस्यशब्दार्थासगतेरपि ॥३।११॥

२ रसेन वर्तते तुल्य रसवत्यविधानत:।
योऽलङ्कार: स रसवत् तद्विदाल्हादनिर्मिते: ॥३।१५॥

'सरस्वतीकंठाभरण' के द्वितीय परिच्छेद मे शब्दालंकारो पर विचार किया गया है। प्रारम्भ मे अलंकारों को तीन भागो मे विभक्त किया गया है—बाह्य, आभ्यंतर और उभय, जिनका क्रमश: अर्थ शब्दालंकार, अर्थालंकार और उभयालंकार है। शब्दालंकारो की सख्या चौबीस है—जाति, गति, रीति, वृत्ति, छाया, मुद्रा, उक्ति, युक्ति, भणिति, गुम्फना, शय्या, पठिति, यमक, श्लेष, अनुप्रास, चित्र, वाकोवाक्य, प्रहेलिका, गूढ, प्रश्नोत्तर, अध्येय, श्रव्य, प्रेक्ष्य तथा अभिनीति। यमक और चित्र का विस्तारपूर्वक वर्णन है। रीतियो को शब्दालंकारो के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। तीसरे परिच्छेद मे चौबीस अर्थालंकारो का निरूपण है—जाति, विभावना, हेतु, अहेतु, सूक्ष्म, उत्तर, विरोध, सम्भव, अन्योन्य, परिवृत्ति, निदर्शना, भेद, समाहित, भ्रांति, वितर्क, मीलित, स्मृति, भाव, प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, अर्थापत्ति और अभाव। जाति अलंकार शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनो मे आया है। महर्षि जैमिनि के छः प्रमाणो को भी अर्थालंकारो के अन्तर्गत रक्खा है। चौथे परिच्छेद मे चौबीस उभयालंकारो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है—उपमा, रूपक, साम्य, संशय अपन्हुति, समाधि, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, अप्रस्तुत प्रशंसा, तुल्ययोगिता, लेश, सहोक्ति, समुच्चय, आक्षेप, अर्थान्तरन्यास, विशेषोक्ति, परिकर, दीपक, क्रम, पर्याय, अतिशयोक्ति, श्लेष, भाविक तथा संसृष्टि। उपमा, आक्षेप, अपन्हुति, रूपकादि को शब्दार्थालंकार मानना विलक्षण लगता है, क्योकि किसी भी आचार्य ने इन्हे उभयालंकार नही माना है।

यद्यपि 'सरस्वती कंठाभरण' को सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने मौलिक सिद्ध करने का प्रयास किया है, किन्तु वास्तविकता यह है कि उसमे मौलिकता की अपेक्षा संग्रह अधिक है। इस ग्रंथ का उपजीव्य दंडीकृत 'काव्यादर्श' है। भोजराज का दूसरा विपुलकायग्रंथ 'शृंगार प्रकाश' है। जिसमे ३६ अध्याय हैं। इसमे गुण, दोष, महाकाव्य, नाटक और रसो का सांगोपांग वर्णन किया गया है।

भोजराज के पश्चात् औचित्य सिद्धान्त के व्याख्याता महाकवि क्षेमेन्द्र के 'औचित्यविचारचर्चा' और 'कविकंठाभरण' नामक काव्यशास्त्रसम्बन्धी ग्रंथ उपलब्ध होते है। 'औचित्यविचारचर्चा' मे औचित्यसिद्धांत की सुन्दर व्याख्या प्रस्तुत की गई है। 'कविकंठाभरण' कविशिक्षाविषयक ग्रन्थ है। इन ग्रंथो के अतिरिक्त क्षेमेन्द्र ने अलंकारो पर भी 'कविकर्णिका' नामक ग्रंथ की रचना की थी, जिसका उल्लेख उन्होने 'औचित्यविचारचर्चा' मे किया है, किन्तु यह ग्रंथ अनुपलब्ध है।

मम्मटाचार्य का 'काव्यप्रकाश' साहित्य-संसार का प्रचुर प्रतिष्ठाप्राप्त ग्रंथ है। इसके विवेचन की प्रौढता और पाण्डित्य अद्यापि अक्षुण्ण है। इसके दस उल्लासों में एक सौ बयालिस कारिकायें और छः सौ तीन उदाहरण हैं। प्रथम उल्लास में काव्यस्वरूप-निरूपण, द्वितीय मे शब्दार्थ-स्वरूप-निरूपण, तृतीय मे आर्थीव्यंजना-निरूपण चतुर्थ मे ध्वनिकाव्य-निरूपण, पंचम मे गुणीभूतव्यंग्यकाव्य-निरूपण, षष्ठ मे

चित्रकाव्य-निरूपण, सप्तम में दोष-निरूपण, अष्टम मे गुण-निरूपण, नवम में शब्दालंकार-निरूपण और दशम उल्लास मे अर्थालंकार-निरूपण किया गया है ।

मम्मट ने काव्य के स्वरूप का विवेचन करते हुये कहा है कि जिसके शब्दो और अर्थो मे दोष तो नही ही हो, किन्तु गुण अवश्य हो, चाहे अलंकार कही-कही पर न हो, उसे काव्य कहते हैं ।[1] यह कह कर मम्मट ने काव्य मे अलंकारो की अनिवार्यता का निषेध किया है । इसी प्रकार गुण और अलकार का अन्तर स्पष्ट करते हुये लिखा है कि काव्य में रस अंगी हैं, उसके नित्य धर्म गुण हैं, ये उसी प्रकार हैं जैसे व्यक्ति मे शौर्य आदि । अलकार हारादि आभूषणो के समान हैं । ये कदाचित् रस का उपकार करते है, सदा नही, जहाँ रस नही वहाँ भी अलकार हो सकते है ।[2]

'काव्य प्रकाश' के नवम उल्लास में वक्रोक्ति (श्लेष और काकु), अनुप्रास (छेक, वृत्ति, लाट) यमक, श्लेष, चित्र और पुनरुक्तवदाभास नामक शब्दालंकारों का विवेचन किया गया है । अनुप्रास अलकार के अन्तर्गत रीतियों की भी चर्चा की गई है । शब्दालकार सभी पुराने हैं । दशम उल्लास में ६२ अर्थालकार है । प्राय: सभी पुराने अलंकार है, केवल अतद्गुण, मालादीपक, विनोक्ति, सामान्य और सम सम्भवत मम्मट द्वारा नवाविष्कृत, प्रतीत होते हैं । मम्मट में मौलिकता तो अधिक नहीं हैं किन्तु साहित्य-संसार में उनके प्रतिपादन की प्रौढ़ता एवं पांडित्य प्रसिद्ध है । विवेचन की इन्हीं विशेषताओं के कारण तो महेश्वर भट्टाचार्य ने कहा था कि 'काव्यप्रकाश' की घर-घर मे टीकाएँ होने पर भी वह दुर्गम है ।[3] हिन्दी के सर्वाङ्गनिरूपक प्राय: सभी आचार्यों ने 'काव्यप्रकाश' का ही अनुकरण किया है ।

मम्मटाचार्य के पश्चाद्वर्ती आचार्य रुय्यक का 'अलंकारसर्वस्व' जिसे 'अलंकार-सूत्र' भी कहा जाता है, एक प्रौढ और प्रामाणिक अलंकार प्रधान ग्रंथ है । इसके ८९ सूत्रों मे छ शब्दालकार और सात रसवदादि तथा सकर–संसृष्टि को मिलाकर ७५ अर्थालंकारों का निरूपण किया गया है । अलंकारो के लक्षण सूत्रो मे और वृत्ति मे विस्तृत विवेचन हुआ है ।

---

१ तद्दोषौशब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुन. क्वापि ।।

२ ये रसस्याङ्गिनोधर्मं शौर्यादय इवात्मन. ।
उत्कर्षहेतवस्तुस्युरचलस्थितयोगुणा: ।।८।६६।।
उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्
हारादिवदलकारास्तेऽनुप्रासोपमादय: ।।८।६७।।

ग्रन्थारम्भ मे रुय्यक ने पूर्ववर्ती आचार्यों के काव्यशा.त्र स.बन्धी विचारों का पर्यवेक्षण करते हुए लिखा है कि "इस साहित्य-संसार मे भ मह उद्भट आदि प्राचीन आलकारिको ने प्रतीयमान (व्यग्य) अर्थ को वाच्यार्थ का उत्कर्ष करने वाला होने से उसे अलंकारो की ओर लगाया है। जैसे कि पर्यायोक्ति, अप्रस्तुतप्रशसा, समासोक्ति, आक्षेप, व्याजस्तुति, उपमेयोपमा, अनन्वय, आदि अ.ल.कारो मे से वस्तुरूप व्यग्य को उन्होंने 'स्वसिद्धयेपराक्षेप' और 'परार्थ स्वसमर्पण' इन दो प्रकार की शैली से बतलाया है।

रुद्रट ने तो भावालकार को ही दो प्रकार का कहा है -रूपक, दीपक, अपन्हुति, तुल्ययोगिता आदि अलकारो मे उपमा आदि अलकार को .र्थ का उपस्कारक माना है। उत्प्रेक्षा को तो स्वय ही प्रतीयमान माना है। रसवत्, .े.स् आदि अलकारो मे रसभावादि को वाच्यार्थ की शोभा का हेतु कहा है। इस प्रकार तीन ही प्रकार के व्यग्य को अलकार रूप से रक्खा है।

वामन ने तो सदृश्य-निबन्धन (गौणी) लक्षणा को वक्रोक्ति कहते हुए कई ध्वनि-भेदो को अलकार-रूप से ही कहा है। केवल गुणयुक्त पद-रचनात्मिका रीति को काव्य की आत्मा माना है। उद्भट आदि ने तो गुण और अलकारो की प्रायश समता ही सूचित की है। विषयमात्र से ही केवल इनमे भेद माना है और सघटना धर्मत्व से चेष्टा की है। इस प्रकार अलकार ही प्रधान है—यह प्राच्य आलकारिकों का मत है।"[1] प्राचीन आलकारिको के पश्चात् कुतक, भट्टनायक, आनन्दवर्धन, महिमभट्ट की धारणाओ का विवेचन किया है। विभिन्न सिद्धान्तो का यह समीक्षण सक्षिप्त होते हुये भी बहुत ही सुसम्बद्ध और सारगर्भित है।

रुय्यक ने अपने ग्रन्थ मे मम्मट से अधिक अलकारो का निरूपण किया है। अलकारो की शब्दगतता अथवा अर्थगतता का आधार मम्मट ने अन्वयव्यतिरेक को माना था, पर रुय्यक ने आश्रयाश्रयिभाव को मान है। अलकार-निरूपण मे रुय्यक ने विचित्र और विकल्प नामक दो नवीन अलकारो की उद्भावना की है। पश्चात्कालीन आचार्य विश्वनाथ, अप्पयदीक्षित, विद्याधर आदि ने 'अलकारसर्वस्व' से प्रेरणा प्राप्त की है।

जैनधर्माचार्य हेमचन्द्र का 'काव्यानुशासन' अलंकारशास्त्र का एक उपयोगी ग्रन्थ है। इसकी रचना सूत्रात्मक शैली मे हुई है। ग्रन्थकार ने स्वय सूत्रों पर अलकार चूडामणि नामक वृत्ति और विवेक नामक टीका लिखी है। 'काव्यानुशासन' मे आठ अध्याय है। पाँचवें मे शब्दालकार और छठवें मे अर्थालकार का विवेचन हुआ है। शब्दालकार छ है—अनुप्रास, यमक, चित्र श्लेष, वक्रोक्ति तथा पुनरुक्ताभास। अर्थालकार २६ है। इनकी सख्या कम इसलिये है कि कतिपय अलंकारो को अन्य

---

१ अलंकार-सर्वस्व।

अलंकारो के भीतर रख दिया गया है। संकर में संसृष्टि और दीपक में तुल्ययोगिता का सन्निवेश किया गया है। परावृत्ति नामक एक नवीन अलंकार का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसके अन्तर्गत मम्मटाचार्य द्वारा निरूपित पर्याय और परिवृत्ति नामक दोनों अलकार आ जाते है। इसी प्रकार निदर्शना के भीतर प्रतिवस्तूपमा और दृष्टात का समावेश किया गया है। रस और भाव से सम्बन्वित अलकारो को छोड़ दिया गया है। भोजराज के 'सरस्वती–कठाभरण' के समान 'काव्यानुशासन' मे भी विशेष मौलिकता नही है, सग्रह अधिक है। ग्रन्थकार ने ध्वन्यालोक, लोचन, अभिनवभारती, वक्रोक्तिजीवित, काव्यमीमांसा और काव्प्रकाश से पर्याप्त सहायता ली है। लगभग १५०० पद्य विभिन्न ग्रन्थो से उद्धृत किये गये हैं।

वाग्भट (प्रथम) की एकमात्र कृति 'वाग्भटालकार' मे पांच परिच्छेद और २६० पद्य हैं, जिनमे साहित्यशास्त्र के सिद्धान्तो का संक्षेप मे विवेचन किया गया है। 'वाग्भटालकार' मे केवल ४ ध्वन्यलक्रिया (शब्दालकार) हैं—चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास तथा यमक; चित्र के कुछ चित्र प्रथम परिच्छेद मे भी आ चुके थे। चतुर्थ परिच्छेद (श्लोक २ से ६ तक) मे ३५ अर्थालकार गिनाये है, जिनका उसी क्रम से पचम परिच्छेद मे वर्णन है।"[१]

वाग्भट (द्वितीय) का 'काव्यानुशासन' सूत्रात्मक पद्धति का ग्रन्थ है। इसके सूत्रों पर ग्रन्थकार ने स्वय अलकारतिलक नामक टीका लिखी है। इस ग्रन्थ के विवेचन का बहुत कुछ आधार 'काव्यप्रकाश' और 'काव्यमीमासा' है। "इसमें पांच अध्याय है, जिनमे काव्यप्रयोजन, कविसमय, काव्यलक्षण, दोष, गुण, रीति, ६४ अर्थालंकार, ६ शब्दालकार, नवरस और उनके विभाव, अनुभाव, व्यभिचारीभाव एव नायक-नायिकादि भेद निरूपित है। इसने एक 'आशी' अलकार भट्टि, भामह और दण्डी द्वारा निरूपित और चार अलकार भाव, मत, उभयन्यास और पूर्व रुद्रट द्वारा निरूपित ये पाँच अलकार ऐसे लिखे हैं, जिनको इनके आविष्कारकों के सिवा इसके पूर्ववर्ती मम्मट आदि किसी ने निरूपित नही किये थे और २ अलकार 'अन्य' तथा 'अपर' नवीन भी लिखे है, किन्तु ये दोनो ही महत्त्वसूचक नही है। जिसे इसने 'अन्य' कहा है वह प्राचीनों की तुल्ययोगिता के अन्तर्गत है।"[२]

जयदेवकृत 'चन्द्रालोक' अलकारशास्त्र की एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है। हिन्दी-अलंकार-साहित्य पर इसका बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। महाराज जसवंतसिंह के 'भाषाभूषण' का आधार 'चन्द्रालोक' ही है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि बड़ी रोचक एवं ललितभाषा में श्लोक की प्रथम पक्ति में अलंकार-लक्षण और द्वितीय

---

१ हिन्दी-अलंकार-साहित्य—डा० ओमप्रकाश।

२ संस्कृत-साहित्य का इतिहास —सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

में उसका उदाहरण दिया गया है। इस प्रकार का अलकार–निरूपण अलंकार-साहित्य मे अपूर्व है।

उदाहरणार्थ—

> व्यतिरेको विशेषश्चेद उपमानोपमेययो. ।
> शैला इवोन्नता. सन्त. किन्तु प्रकृति कोमला. । ॥५ । ५६॥

चन्द्रालोक मे १० मयूख और ३५० अनुष्टुप छद है। पचम मयूख मे अलंकारो का विवेचन किया गया है। मम्मट के 'तद्दोषौशब्दार्थौ सगुणावनलकृती पुन. क्वापि' पर आक्षेप करते हुए जयदेव ने कहा है कि जो अलकार-शून्य शब्दार्थ मे काव्यत्व मानता है, वह कृती अग्नि को ऊष्णताहीन क्यो नही स्वीकार करता ? यह कह कर चन्द्रालोककार ने काव्य में अलकारो की अनिवार्यता की घोषणा की है। लेकिन अलकार का लक्षण करते हुए जयदेव मम्मटकृत परिभाषा के प्रभाव मे मुक्त नही हो सके है और परिणामस्वरूप हारादि के समान अलकारो का योग मनोहर माना है।[1] जयदेव ने आठ शब्दालकारो का निवेचन किया—छेकानुप्रास, वृत्यानुप्रास, लाटानुप्रास, स्फुटानुप्रास, अर्थानुप्रास, पुनरुक्तप्रतीकाश, यमक तथा चित्र। इसके अतिरिक्त लगभग सौ अर्थालकारो का निरूपण हुआ है। चन्द्रालोक' के ही अलकार प्रकरण को परिवर्धित करके अप्पयदीक्षित ने 'कुवलयानन्द' नामक अलंकारशास्त्रग्रंथ की रचना की।

विद्याधर के 'एकावली' नामक काव्यशास्त्र के ग्रथ मे आठ उन्मेष है। सातवें में शब्दालंकार और आठवे मे अर्थालकार निरूपित है। ग्रन्थ के विवेचन मे तीन भाग हैं—कारिका, वृत्ति और उदाहरण। ये तीनो अश ग्रन्थकार के स्वरचित है। लेखक ने ग्रंथ-निर्माण मे 'ध्वन्यालोक' 'काव्यप्रकाश' और 'अलकारसर्वस्व' का सहारा लिया है। इनमे से काव्यप्रकाश का सर्वाधिक प्रभाव है। वास्तव मे एकावली' 'काव्यप्रकाश' का सक्षिप्त सस्करण है। 'काव्यप्रकाश' से ही प्रभावित होकर विद्यानाथ ने भी 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके सभी उदाहरण ग्रन्थकार के आश्रयदाता प्रताप रुद्रदेव की प्रशसा मे है। इसमे ९ प्रकरण है। यद्यपि विद्यानाथ ने विषय-प्रतिपादन मे मम्मट को आदर्श माना है, किन्तु अलंकार प्रकरण मे रुय्यक का आश्रय लिया है। उल्लेख, परिणाम, विचित्र तथा विकल्प नामक अलकारो का विवेचन मम्मट ने नही किया है, किन्तु विद्यानाथ ने इन अलकारो का विवेचन रुय्यक के आधार पर किया है।

---

१ हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादय. । —मम्मट

हारादिवदलङ्कारः सन्निवेशो मनोहरः। —जयदेव

आचार्य विश्वनाथ का 'साहित्यदर्पण' अलंकार-शास्त्र का एक बहुत ही प्रसिद्ध और प्रचलित ग्रन्थ है। इस ग्रंथ की यह विशेषता है कि इसमे श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य दोनों का ही विपुल वर्णन किया है। इसके विवेचन का आधार 'काव्य-प्रकाश' और 'अलकार-सर्वस्व' हैं। इस ग्रन्थ मे दस परिच्छेद हैं। दसवें परिच्छेद मे अलकार-निरूपण हुआ है। परिच्छेद के प्रारम्भ मे अलकार की परिभाषा करते हुए लिखा है कि शोभा को अतिशयित करने वाले रस, भाव आदि के उपकारक, जो शब्द और अर्थ के अस्थिर धर्म है वे अंगदादि की भाति अलकार कहलाते है।[1] आचार्य विश्वनाथ ने कुल मिलाकर ८९ अलंकारो का निरूपण किया। जिनमे १२ शब्दालकार ७० अर्थालकार और ७ रसवदादि अलकार है। शब्दालकार-वर्णन के प्रारम्भ मे लिखा है कि शब्द और अर्थ इनमे से पहले शब्द ही बुद्धि में उपस्थित होता है, अत शब्दालकार ही पहले कहने चाहिये थे, परन्तु प्राचीनो ने एक शब्दार्थालंकार पुनरुक्तवदाभास को भी शब्दालंकारो मे गिना दिया है। अतः सर्वप्रथम उसी का वर्णन किया गया है और इसके पश्चात् अन्य शब्दालकारो का विवेचन किया गया है।[2] रस का बाधक होने से प्रहेलिका को अलंकार नही माना है। यह उक्ति की विचित्रता मात्र होती है। च्युताक्षरा, दत्ताक्षरा, च्युतदत्ताक्षरा आदि उसके भेद होते है।[3] अर्थालकारो मे सर्वप्रथम उपमालकार का वर्णन है और परिच्छेद के अन्त मे ससृष्टि-सकर का विवेचन है। "शब्दालंकारो मे विश्वनाथ ने श्रुत्यानुप्रास, अन्त्यानुप्रास और भाषासम ये तीन नवीन लिखे है, पर ये अलंकार महत्वसूचक नही है। इसी प्रकार अर्थालकारो मे निश्चय और अनुकूल ये दो नवीन लिखे है, किन्तु ये भी वस्तुतः नवीन नही, नवीनता का आभासमात्र है, क्योकि दडी ने जिसे तत्वाख्यानोपमा और जयदेव ने भ्रान्तापन्हुति कहा है, उसे इसने निश्चय के नाम से लिखा है और अनुकूल मे भी प्राचीनो के विषम के दूसरे भेद से अधिकाश मे विशेषता नही है।"[4] 'साहित्यदर्पण' का अलकार प्रकरण बहुत कुछ 'अलंकारसर्वस्व' के आधार पर लिखा गया है। रुय्यक द्वारा आविष्कृत विचित्र और विकल्प नामक दो अलकारो को विश्वनाथ ने ग्रहण कर लिया है। साथ ही अलकारो की सख्या और उनके विवेचन का क्रम भी प्रायः रुय्यक के अनुसार ही है। इस प्रकार यद्यपि

---

१ शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्माः शोभातिशायिनः।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥१०।१॥ 'साहित्यदर्पण'।

२ शब्दार्थयोः प्रथम शब्दस्य बुद्धिविषयत्वाच्छब्दालकारेषु वक्तव्येषु शब्दार्थाल[ंकार]स्यापि पुनरुक्तवदाभासस्य चिरतनै. शब्दालकार मध्ये लक्षितत्वा प्रथम तमेवाह ॥१०।१॥ की वृत्ति।

३ रसस्य परिपन्थित्वान्नालकारः प्रहेलिका।
उक्ति वैचित्र्यमात्र सा च्युतदत्ताक्षरादिका ॥१०।१३॥

४ सस्कृत-साहित्य का इतिहास—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

ाहित्यदर्पण' में कोई मौलिकता नही है, फिर भी साहित्य के सर्वांगों का सरल ी में ललित उदाहरणों से युक्त रोचक प्रतिपादन के कारण इस ग्रथ ने सस्कृत-हित्यशास्त्र मे सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त की है ।

धर्मचन्द्र के पुत्र राजा माणिक्यचन्द्र के आग्रह पर पण्डित केशव मिश्र ने ंकार शेषर' नामक ग्रन्थ की रचना की । इसके तीन भाग है—कारिका, वृत्ति (उदाहरण । इस ग्रन्थ मे ८ रत्न या अध्याय है और २२ मरीचि है, जिनमे व्यशास्त्र के विभिन्न विषयो का सक्षेप मे वर्णन किया गया है । यह कोई मौलिक थ नही है, अपितु सग्रह-ग्रथ है । इसमे काव्यादर्श, ध्वन्यालोक, काव्यमीमासा, स्वतीकंठाभरण, काव्यप्रकाश आदि ग्रन्थो से सामग्री ली गई है । इसके चतुर्थ । की चारों मरीचियो मे अलकार-निरूपण किया गया है । पहले आठ शब्दालकारो वर्णन है—चित्र, वक्रोक्ति, अनुप्रास, गूढ, श्लेष, प्रहेलिका, प्रश्नोत्तर तथा यमक । के पश्चात् १४ अर्थालकार है—उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, अपन्हुति, ाहित, स्वभाव, विरोध, सार, दीपक, सहोक्ति, अन्यदेशत्व, विशेषोक्ति और भावना ।

शोभाकर मित्र ने 'अलकाररत्नाकार' नामक एक अलकार-ग्रन्थ लिखा है । भवत: इन्ही के 'अलकार रत्नाकर' का उल्लेख पण्डितराज ने अपने 'रसगङ्गा-' मे किया है । 'अलकार-रत्नाकार' तो अप्राप्य हैं, किन्तु इसका सक्षिप्त परिचय राज मुरारिदान कृत 'जसवतजशोभूषण' से प्राप्त होता है । शोभाकर मित्र ने अलकार पूर्वाचार्यों से अधिक लिखे है—अचिन्त्य, अतिशय, अनादर, उदाहरण, कृति, अवरोह, अशक्य, आदर, आपत्ति, उद्भेद, उद्रेक, असम, क्रियातिपत्ति, गूढ़, , तुल्य, निश्चय, परभाग, प्रतिप्रसव प्रतिभा, प्रत्यादेश, प्रत्यूह, प्रसग, वर्द्धमानक, प्ति, व्यासग, सदेहाभास, सजातीयव्यतिरेक, विकल्पाभास, विध्याभास, विनोद, र्यय, विवेक, वैधर्म्य, व्यत्यास और समता । इन अलकारो मे से बहुत से तो ऐसे जिनका अन्य अलकारों मे अन्तर्भाव हो जाता है और कुछ मे कोई चमत्कार ही । है । अत: उन्हे अलकार ही नही कहा जा सकता । इसीलिए तो परवर्ती चार्यों ने केवल असम तथा उदाहरण अलकारो को ग्रहण किया और शेष को वीकार कर दिया ।

'अलकाररत्नाकर' की भाति यशस्क का 'अलकारोदाहरण' भी अप्राप्य है । का भी परिचय जसवतजशोभूषण' द्वारा मिलता है । यशस्क ने आठ नवीन अल-र माने हैं—अग, अनंग, अप्रयत्नीक, अभ्यास, अभीष्ट, तात्पर्य, तादृशाकार और षेध । इन आठ अलकारो मे से केवल प्रतिषेध को तो 'कुवलयानन्द' मे स्थान ना हैं । शेष सात अलकारो को किसी भी आचार्य ने स्वीकृति नही दी है ।

भानुदत्त के 'रसमजरी' और 'रसतरगिणी' नामक दो ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं, किन्तु दो ग्रन्थों के अतिरिक्त सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने अपने 'सस्कृत-साहित्य का

इतिहास' मे भानुदत्त के एक अन्य ग्रन्थ 'अलकारतिलक' का उल्लेख किया है, जिसमें "दो अलंकार अनध्यवसाय और भङ्गि नवीन हैं। इन दोनों अलकारों का इसके पूर्व-वर्ती ग्रन्थों मे निरूपण नही किया गया है। वस्तुत: 'अनध्यवसायतो' सदेह अलकार में गतार्थ है और भङ्गि के उदाहरण प्राय. समासोक्ति मे गतार्थ हैं।"

गोस्वामी कर्णपूर के 'अलकारकौस्तुभ' की दस किरणो मे काव्यशास्त्र के अनेक विषयों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इस पर ग्रन्थकार ने स्वय टीका लिखी है। अलकार-प्रकरण मे शब्दालकार और अर्थालकार दोनो का ही विवेचन हुआ है। उदाहरण प्राय भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति मे दिए गए है। यह ग्रन्थ कोई महत्वपूर्ण नही है, क्योकि इसके विवेचन का आधार आद्यन्त प्राय. 'काव्यप्रकाश' है।

अप्पयदीक्षित का 'कुवलयानन्द' बहुत ही प्रसिद्ध अलकार-ग्रन्थ है। लेखक ने इसकी रचना वेंकट नामक राजा के आदेशानुसार की थी।[1] इसकी रचना का आधार जयदेवकृत 'चन्द्रालोक' का अलकार प्रकरण पचम मयूख है। इस बात को ग्रन्थान्त मे स्पष्टरूपेण स्वीकार करते हुए अप्पयदीक्षित ने लिखा है कि शरदागम मे उत्पन्न होने वाले चन्द्रालोक की विजय हो, जिसके प्रसाद से यह रमणीय युवलयानन्द उद्भूत हुआ। शरदागमन से चन्द्र का आलोक स्पष्ट दिखलाई पडता है और तभी कुमुद विकसित होता है। इसमे श्लेषालकार द्वारा ग्रन्थकार 'चन्द्रालोक' को 'कुवलयानन्द' का आधार-ग्रन्थ स्वीकार करता है।[2] अप्पयदीक्षित ने चन्द्रालोक के 'लक्ष्यलक्षणश्लोक' यथावत् ले लिये है और कुछ स्वय भी रचे है।[3] कुवलयानन्द का हिन्दी-अलकार-साहित्य पर बहुत प्रभाव पडा है।

कुवलयानन्द मे चन्द्रालोककार द्वारा निरूपित अलकारो के अतिरिक्त अन्य २४ अलंकारो का वर्णन हुआ है। कुल मिला कर ११८ अलकारो का निरूपण कुवलयानन्द मे किया गया है, जिनमे १०२ अर्थालंकार, ७ रसवदादि और ६ प्रत्यक्षादि प्रमाणालकार है, शब्दालकारो का विवेचन नही किया गया है। यद्यपि यह कोई मौलिक ग्रन्थ नही है, फिर भी अलकार-ज्ञान प्राप्त करने के लिये बहुत ही उपादेय है। इनका एक दूसरा ग्रन्थ 'चित्रमीमासा' है। यह अलकार-विषयक एक स्वतन्त्र रचना है, किन्तु अपूर्ण है। इसमे केवल अतिशयोक्ति तक ही वर्णन प्राप्त होता है।

---

१ अमुं कुवलयानन्दमकरोदप्पयदीक्षित: ।
नियोगाद्वेङ्कटपतेर्निरूपाधिकृपानिधे. ॥ —कुवलयानन्द

२ चन्द्रालोको विजयता, शरदागमसम्भव ।
हृद्य. कुवलयानन्दो यत् प्रसादादभूदयम् ॥ ,,

३ येषां चन्द्रालोके दृश्यन्ते लक्ष्यलक्षणश्लोका: ।
प्रायस्त एव्वेषामितरेषा त्वभिनवाविरच्यन्ते ॥ ,,

ग्रन्थ की एक कारिका से ज्ञात होता है कि लेखक इसे पूर्ण नहीं कर सका है।[1] उपलब्ध अंश में अलंकारो का प्रौढ और विशिष्ट विवेचन किया गया है, जो ग्रन्थकार के पाण्डित्य का परिचायक है। इसकी विवेचन-विशिष्टता के कारण ही शायद पण्डितराज ने कुवलयानन्द का खण्डन न कर इसी का खण्डन किया है।

पण्डितराज जगन्नाथ का 'रसगंगाधर' एक बहुत ही महत्वपूर्ण मौलिक ग्रन्थ है। यद्यपि यह ग्रन्थ अपूर्ण है, किन्तु उपलब्ध अंश की ही शैली सिद्धान्त-प्रतिपादन की विचित्रता और परिपक्व विचारशक्ति तथा खण्डन करने की विलक्षण प्रतिभा इन्हे प्रौढ़ आचार्य मानने को बाध्य करती है। रसगङ्गाधर मे विवेचन के तीन अग हैं—लक्षण, वृत्ति तथा उदाहरण। लक्षण गद्य मे है, किन्तु इन्हें सूत्र नही कहा जा सकता। वृत्ति मे दूसरे के सिद्धातो का खण्डन और स्वसिद्धान्त की स्थापना है। पण्डितराज दूसरे के उदाहरण से सन्तुष्ट नही थे, अतः उदाहरण उनके स्वरचित है।[2] उन्होने अनेक स्थलो पर अपने प्रचण्ड-पाडित्य का अभिमान व्यक्त करते हुए समकालीन विद्वानो मे अपने को अद्वितीय विद्वान माना है।[3] यद्यपि ये उनकी गर्वोक्तियाँ हैं, किन्तु इन उक्तियो को उन्होने अपनी प्रकाण्ड विद्वता द्वारा सार्थक सिद्ध किया है। सस्कृत-साहित्य-परम्परा के पण्डितराज महत्वपूर्ण अन्तिम आचार्य है, जिन्हे आनन्दवर्धनाचार्य और मम्मटाचार्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

रसगगाधर के दो ही आनन प्राप्त है। प्रथम आनन मे काव्यलक्षण, काव्यहेतु, और काव्यभेद के बाद रस-गुण आदि का बहुत विशद विवेचन किया गया है। द्वितीय आनन मे ध्वनि, अभिधा, लक्षणा का व्याख्यान हुआ है और तत्पश्चात् उपमा से उत्तर तक ७० अर्थालकारो का निरूपण हुआ है। इन्होने काव्य का लक्षण करते हुए लिखा है कि रमणीय अर्थ के प्रतिपादन करने वाले शब्द को काव्य कहते हैं। अलौकिक आनन्दजनक ज्ञान का विषय होना रमणीयता है। अलौकिकत्व चमत्कारत्व का ही अपर पर्याय है। यह एक विशिष्ट प्रकार की आनन्ददायिनी

---

१ अप्यर्ध-चित्रमीमासा न मुदे कस्य मांसला।
अनूरुरिव घर्मांशोरर्धेन्दुरिव धूर्जटेः॥ —चित्रमीमासा

२ निर्माय नूतनमुदाहरणानुरूपं
काव्यं मयात्र निहितं न परस्य किंचित।
किं सेव्यते सुमनसामनसापि गन्ध
कस्तूरिका जननशक्ति भृता मृगेण॥ —रसगङ्गाधर

३ दिगन्ते श्रूयन्ते मदमलिनगण्डाः करटिनः
करिण्यः कारुण्यास्पदमसमशीलाः खलु मृगाः।
इदानीं लोकेऽस्मिन्ननुपमशिखानां पुनरयं
नखानां पाण्डित्यं प्रकटयतु कस्मिन्मृगपतिः॥ —भामिनीविलास

अनुभूति है। इसका कारण है एक विशिष्ट प्रकार की भावना जो अलौकिकत्व से युक्त शब्दार्थ के पुन.-पुन अनुचिन्तन से उत्पन्न होता है।[१] काव्य का यह लक्षण अधिक सुबोध, स्पष्ट और परिपूर्ण है। प्राचीन आचार्यों द्वारा स्वीकृत काव्य के तीन भेदो के स्थान पर पण्डितराज ने चार भेद माने है—उत्तमोत्तम, उत्तम, मध्यम और अधम।

रसगगाधर मे प्राय. 'अलकारसर्वस्व' और 'काव्य प्रकाश' मे निरूपित अलकारो का ही विवेचन किया गया है, किन्तु कुछ अलकार ऐसे भी हैं, जो इन दोनो ग्रन्थो मे नही हैं और 'चन्द्रालोक' मे हैं। असम और उदाहरण ये दोनों अलकार 'अलकार-रत्नाकर' से लिये गये हैं। तिरस्कार अलकार सम्भवत: पण्डितराज द्वारा नवाविष्कृत है। शब्द-शक्ति प्रसग मे पण्डितराज ने अलकारो पर नवीन दृष्टिकोण से विचार किया है। इस प्रकार अलकार का आधार शब्दशक्ति हो गई है और मुख्याधार लक्षणा।

पण्डितराज जगन्नाथ के पश्चात् भी अनेक आचार्य हुए, जिन्होने काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थो की रचना की, किन्तु इसका कोई विशेष महत्व नही रहा। इन आचार्यों मे आशाधर भट्ट, विश्वेश्वर पण्डित और नरसिंह कवि उल्लेखनीय हैं।

जिस प्रकार से 'चन्द्रालोक' के अलकार-प्रकरण का परिवर्धित रूप ही 'कुवलयानन्द' है उसी प्रकार तीन प्रकरण वाली आशाधर भट्ट की 'अलकार-दीपिका' भी 'कुवलयानन्द' की व्याख्या है। प्रथम प्रकरण मे 'कुवलयानन्द' की कारिकाओ की सुबोध शैली मे व्याख्या की गई हे। द्वितीय 'उद्दिष्टालंकार प्रकरण' मे रसवत्, प्रेय आदि अलकारो की कुवलयानन्द-शैली मे कारिकाओं की रचना और व्याख्या की गई है। इन अलकारो का 'कुवलयानन्द' मे केवल नामोल्लेख किया गया है, कारिकाएँ नही लिखी गई है। तृतीय 'परिशेषप्रकरण' मे पाँच भेदो सहित ससृष्टि-सकर का समावेश हुआ हे। इन अलकारो की कारिकाओ की भी रचना आशाधर ने ही की है। 'अलकारदीपिका' की व्याख्या बहुत ही सुबोध होने के कारण अलकार-ज्ञान के लिए यह बहुत ही उपादेय ग्रन्थ है।

अल्मोडा-निवासी विश्वेश्वर पण्डित ने 'अलकारकौस्तुभ', 'अलकारमुक्तावली', 'अलकारप्रदीप' 'कवीन्द्रकठाभरण' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे है। इनमे 'अलंकार-मुक्तावली' और 'अलकारप्रदीप' तो बहुत ही साधारण ग्रन्थ हैं। 'कवीन्द्र कठाभरण'

---

१ रमणीयार्थप्रतिपादक. शब्द: काव्यम् ॥
रमणीयता च लोकोत्तराल्हादजनकज्ञानगोचरता। लोकोत्तरत्वं चाल्हाद-गतश्चमत्कारत्वापरपयायोऽनुभवसाक्षिको जातिविशेष:। कारणं च तदवच्छिन्ने-भावनाविशेष: पुनरनुसधानात्मा ॥

—'रसगंगाधर'

चित्रकाव्य का एक रोचक और प्रमाणिक ग्रन्थ है। इसमें पूर्वाचार्यों के अलंकार विषयक विचारों की बडी ही तर्कपूर्ण शैली मे आलोचना की गई है। उपमा के भेदोंपभेदों का बहुत ही विशद व्याख्यान हुआ है।

नरसिंह कवि ने विद्यानाथ के 'प्रतापरुद्रयशोभूषण' के अनुकरण पर अपने आश्रयदाता नञराज की प्रशसा मे 'नञराजयशोभूषण' नामक ग्रन्थ की रचना की। इसके सात विलासो मे श्रव्यकाव्य और दृश्यकाव्य का विवेचन किया गया है। अन्तिम विलास मे अलकार-निरूपण है, जिसमे मौलिकता नही है।

निघण्टु एव निरुक्त से लेकर नञराजयशोभूषण तक सस्कृत-अलकारशास्त्र की यह ऐतिहासिक परम्परा विश्व-वाङ्मय मे सर्वाधिक प्राचीन और परिपूर्ण है। संस्कृत में काव्यशास्त्र का, विशेषरूपेण अलकारो का इतना सूक्ष्म विवेचन और विभाजन हुआ है कि ससार-साहित्य मे इस प्रकार का अनुशीलन अन्यत्र अनुपलब्ध है। इस विषय मे डाक्टर सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त का कथन सर्वथा सत्य, सगत और समीचीन है कि 'भरत से लेकर विश्वनाथ या जगन्नाथ पर्यन्त हमारे देश के अलकार-ग्रन्थों में साहित्यविषयक जैसी आलोचना दीख पडती है वैसी आलोचना दूसरी भाषा में आज तक हुई है, यह मुझे ज्ञात नही है।"[१]

सस्कृत-समीक्षाशास्त्र का प्राचीनतमरूप अलकार-विवेचन के रूप में ही प्राप्त होता है। सस्कृत का ऐसा कोई आचार्य नही है कि जिसने अलकारो पर कुछ न कुछ कार्य न किया हो। यही कारण है कि भरत के चार अलकारो के पश्चात् पण्डितराज तक अलकारो की सख्या १८३ तक पहुँच गई। अलकार-वृद्धि की दृष्टि से ईसा की आठवी शताब्दी से बारहवी शताब्दी तक के काल को स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इसी युगमे प्रधान अलंकारवादी हुए, जिनके विवेचन का मुख्य विषय अलंकार ही रहा। वैसे तो अलकारवादियो के अतिरिक्त भी इस युग मे आनन्दवर्धनाचार्य, अभिनवगुप्ताचार्य आदि हुए, जिन्होने साहित्य के मौलिक तत्वो की उद्भावना की। अत: अलकार-निरूपण का ही नही अपितु सम्पूर्ण समीक्षाशास्त्र का इसे स्वर्णयुग कहा जा सकता है। इसके अनन्तर ऐसे आचार्य नही हुए, जिन्होने कोई बहुत मौलिक उद्भावनाएँ की हों।

सस्कृत-साहित्यशास्त्र की इस परम्परा को तीन भागों मे विभक्त किया जा सकता है—(१) पूर्व-ध्वनिकाल (२) ध्वनिकाल (३) पश्चात्-ध्वनिकाल। पूर्व-ध्वनिकाल के प्रमुख आचार्य भामह, उद्भट, वामन, रुद्रट आदि हैं। इन लोगो ने अलंकारो के विशदविवेचन के साथ काव्यशास्त्र के अन्य विषयो पर भी विचार किया। इस युग को रचनाकाल कह सकते हैं। इसके पश्चात् ध्वनिकाल आता है।

---

१ काव्यविचार।

जिसमें पूर्वाचार्यों के विचारों का खण्डन तथा अपने विचारों का मंडन कर नवीन सिद्धान्तो की स्थापना की गई। अत. इसे निर्णयात्मक काल कह सकते हैं। इस युग के प्रमुख आचार्य आनन्दवर्धन, कुन्तल और महिमभट्ट हैं। पश्चात्-ध्वनिकाल के आचार्य मम्मट, रुय्यक, विश्वनाथ और जगन्नाथ ध्वनिकालीन आचार्यों से प्रभावित थे। इन लोगों ने अलकारवादियो द्वारा किये गये ध्वनि-विरोधों का उत्तर देकर ध्वनि को सुदृढ आधार पर सुप्रतिष्ठित किया। सस्कृत-साहित्यशास्त्र के अंतिम महत्वपूर्ण आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ के समय मे संस्कृत-साहित्यशास्त्र के अनुकरण पर हिन्दी-अलकार-साहित्य-रचना का श्रीगणेश हो गया था। उपलब्ध साहित्य के आधार पर इसका श्रेय आचार्य केशवदास को दिया जाता है। अगले अध्याय मे इसी परम्परा को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

——————

४

हिन्दी-अलंकार-साहित्य

हिन्दी-साहित्य के इतिहासकार शिवसिंह सरोज के आधार पर हिन्दी मे प्राचीनतम काव्यशास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ सवत् ७७० मे भोज के पूर्व पुरुष राजामान के सभासद पुंड या पुष्य नामक किसी बदीजन द्वारा दोहो मे सस्कृत-अलकारो से अनूदित एक अलंकार-ग्रन्थ मानते है।[1] सरोजकार के इस कथन का आधार कर्नलटाड द्वारा लिखित 'राजस्थान' नामक ग्रन्थ है। यद्यपि यह तथ्य कोई असम्भव नही कि उस युग मे कोई ऐसा अलकार विषयक ग्रन्थ लिखा गया हो, फिर भी किसी प्रकार के प्रामाणिक विवरण की अनुपलब्धि मे उक्त ग्रन्थ जनश्रुति तक ही सीमित रहता है। इसके आठ नौ शताब्दी उपरान्त भक्तिकाल मे अलकार-विवेचन के कतिपय बीज प्राप्त होते है। कहा जाता है कि तुलसीदास ने बरवैछदो मे 'नायिका-भेद' लिखने वाले, अपने मित्र अब्दुर्रहीम खानखाना के आग्रह पर अलंकारो के उदाहरण के लिए 'बरवै रामायण' की रचना की थी। इसमे अलकारो का कोई विशेष क्रम तो नही प्रतीत होता, किन्तु शब्दालकार और अर्थालकार दोनो ही प्रयुक्त हुए हैं। उपमा, रूपक, व्यतिरेक, निदर्शना, प्रतीप, देहरीदीपक, उन्मीलित, सूक्ष्म, उत्प्रेक्षा, व्याजस्तुति, अपन्हुति, विभावना तुल्ययोगिता, श्लेष, छेकानुप्रास, लाटानुप्रास आदि सभी प्रचलित मुख्य अलकारो का पुस्तक मे सन्निवेश हुआ है। इसमे से निदर्शना, व्यतिरेक आदि कुछ अलकारो का कई-कई छदो मे वर्णन किया गया है। इसके अतिरिक्त अलकार-सम्बन्धी पुस्तकों मे गोपा की 'अलकार-चन्द्रिका'[2] और नरहरि कवि के साथ अकबरी दरबार मे जाने वाले कवि करनेस के 'कर्णाभरण' 'श्रुतिभूषण' तथा 'भूपभूषण' का उल्लेख प्राप्त होता है[3]

---

१ मिश्रबन्धु विनोद प्रथम भाग तथा हिन्दी-साहित्य का इतिहास
—पण्डित रामचन्द्र शुक्ल

२ मिश्रबन्धु-विनोद प्रथम भाग।

३ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।

किन्तु ये ग्रन्थ अलभ्य हैं। इस प्रकार अलंकार-सम्बन्धी ग्रन्थों मे आचार्य केशवदास की 'कविप्रिया',[1] ही सर्वप्रथम कृति है, जिसमें लक्षणोदाहरण सहित अलंकारों का विशद विवेचन उपलब्ध होता है।

हिन्दी का कोई स्वतन्त्र काव्यशास्त्र नहीं है, वह तो संस्कृत-काव्य शास्त्र का ही उपजीवी है। आचार्य केशव की 'कविप्रिया' का विषयाधार भी संस्कृत-साहित्य ही है। केशवदास के आश्रयदाता राजा इन्द्रजीत के बहुत सी वेश्याएँ थी, जिनमें छः अति प्रसिद्ध थी। उनमे प्रवीणराय के प्रति केशव का विशेष आकर्षण था। इस रमा, सरस्वती और शिवा[2] के सदृश सम्पन्नगुणों वाली कवयित्री[3] वेश्या को कविता की रुचिर रचना की शिक्षा देने के लिये केशवदास ने सोलह शृंगारो[4] से सुसज्जित रमणी के समान सोलह 'प्रभावों' वाली कवियों की प्रिया[5] 'कविप्रिया' नामक पुस्तक की रचना की।[6] जिस व्यक्ति ने किसी पुस्तक की रचना सुकुमार बुद्धि-बालक-बालिकाओ[7] के विषय-बोधार्थ की हो, उसमे किसी बहुत बड़ी मौलिकता-शोध का प्रयास करना व्यर्थ है।

'कविप्रिया' का विषय-वर्णन सोलह प्रभावों मे विभक्त है। प्रथम दो प्रभावों में आश्रयदाता के राजवश तथा कविवश का वर्णन है। तीसरे प्रभाव मे काव्य-दोष वर्णन है। दोषों के विषय में केशव का कहना है कि किंचित दोष से भी कविता का स्वरूप भ्रष्ट हो जाता है। अतः कविता को सर्वथा दोषमुक्त होना अत्यावश्यक है।[8] इसी विचार से उन्होंने सर्वप्रथम दोषो का ही वर्णन किया है। केशव ने अठारह

---

१ रचनाकाल १६५८।

२ रतनाकर ललित सदा पहिरमानन्दलीन।
अमल कमल कमनीयकर, रमा कि रायप्रवीन ।।
रायप्रवीनकि सारदा, सुचिरुचि रजित अग।
बीना पुस्तक धारिनी, राजहंसयुत सग ।।
वृषभवाहिनी अग उर वासुकि लसतप्रवीन।
शिव सग सोहै सर्वदा सियाकि रायप्रवीन ।। —'कविप्रिया'।

३ तिनमे करत कवित्त इक, राय प्रवीन प्रवीन ।। ,,

४ कविप्रिया के जानिये ये सोरह शृ गार ।। ,,

५ कविप्रिया है कवि-प्रिया। ,,

६ सविता जू कविता दई, ताकहँ परम प्रकास।
ताके काज कविप्रिया कीन्ही केशवदास ।। ,,

७ समझै बाला बालकहु, वर्णन पथ अगाध। ,,

८ रजत रच न दोषयुत, कविता बनिता मित्र। ,
बूंदक हाला होत ज्यो, गगा तट अपवित्र ।।

दोष माने हैं ।[1] जिनमें कुछ में तो उनका मौलिक चिन्तन परिलक्षित होता है और शेष का आधार दण्डी का 'काव्यादर्श' है । कविता मे अलकारो की अनिवार्यता का निषेध करते हुये प० कृष्णशकर शुक्ल ने केशव के 'नग्नदोष' को व्यर्थ सिद्ध किया है ।[2] अधिकाश आलकारिक विद्वानो ने अलकार-नित्यता का विरोध किया है, किन्तु केशवदास ने कविता मे अलकारो की ही सर्वाधिक सत्ता-महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि जिस प्रकार अभिजातकुलोत्पन्न सुन्दरगुण-वर्ण से युक्त तथा सरसस्वभाव वाली नारी भी नग्नावस्था मे आकर्षक नही प्रतीत होती, उसी प्रकार सुन्दर भावों तथा छदो आदि से सम्पन्न होने पर भी अलकारहीन अर्थात् नग्नकविता शोभा नही देती है ।[3] जिस प्रकार रस, रीति-ध्वनिवादी आचार्य अपने-अपने तत्वाभाव मे सुन्दर कविता का अस्तित्व नही स्वीकार करते, उसी प्रकार अलकारो को काव्यात्मा मानने वाले अलंकारवादी आचार्य केशवदास भी कविता को बिना अलकारो के शोभाहीन तथा दोषयुक्त मानते है । पीयूषवर्षी जयदेव ने भी ऐसा ही कहा है ।[4]

---

१ अध बधिर अरु पगु तजि, नग्न मृतक मतिमुद्ध ।
अध-विरोधी पथ को बधिर सु सब्द-बरुद्ध ।।
छद-विरोधी पगुमनि, नग्न जु भूषनहीन ।
मृतक कहावै अर्थबिनु, केसव सुनहु प्रवीन ।। 'कविप्रिया' ।

२ अलकार-रहित कविता को केशव ने 'नग्नदोष' युक्त माना है । सस्कृत के आचार्यो की प्राय सम्मति है कि अलकार काव्य की शोभा-वृद्धि मे सहायक तो अवश्य होते है, परन्तु ये काव्य के अनिवार्य धर्म नही है । अलकारो की योजना के बिना भी काव्य हो सकता है । यही बात मम्मट ने 'अनलकृती-पुन.क्वापि' के द्वारा कही है । दडी ने भी अलकारो को काव्य का अनिवार्य अग नही माना है । उनकी अलकारो की साधारण परिभाषा से ही यही ध्वनि निकलती है । वे कहते हैं कि—'काव्यशोभाकरान्धर्मानलकारान् प्रच-क्षते' । ऐसी ही आचार्य वामन की सम्मति है । ऐसी अवस्था मे केशव का यह 'नग्नदोष' भी व्यर्थ हो जाता है ।

—केशव की काव्य-कला ।

३ जदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त ।
भूषण बिनु न बिराजई, कविता वनिता मित्त ।। 'कविप्रिया' ।

४ अङ्गीकरोति य· काव्यं शब्दार्थावनलकृतो ।
असो न मन्यते कस्मादगुष्णमनलकृती ।। 'चन्द्रालोक' ।

अतः इस दृष्टिकोण के केशव का 'नग्नदोष' नितान्त निरर्थक नहीं है, अपितु उसमें भी कुछ सार्थकता है और वह भी परम्परागत।

चौथे प्रभाव में कवि-प्रकारों का वर्णन किया है। पांचवें प्रभाव में भामह, दंडी, उद्भटादि कालीन अलंकार और अलंकार्य में अभिन्नता मानते हुए वर्णन-प्रणाली और वर्ण्य-विषय को अलंकारान्तर्गत लेकर केशव ने परम्परानुसार अलंकारों के दो भेद किये हैं—एक सामान्य तथा दूसरा विशेष[1] सामान्यालंकार के चार भेद हैं वर्ण, वर्ण्य, भूश्री और राज्यश्री।[2] इन्ही का क्रमश: अगले चार प्रभावों (पांचवे से लेकर आठवें तक) मे वर्णन किया है। विशेषालकार ही इनके वास्तविक अलकार है। इनका वर्णन नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक है। 'कविप्रिया' के अलकारो के लक्षण और उदाहरणो का आधार प्राय: दंडी का काव्यादर्श है। केशव ने सब मिलाकर सैंतीस अलकार माने हैं जिनके नाम और सख्या प्रभावानुसार निम्नलिखित है.—

नवाँ प्रभाव—स्वभावोक्ति, विभावना, हेतु, विरोध, विशेष तथा उत्प्रेक्षा।

दसवाँ प्रभाव—आक्षेप।

ग्यारहवाँ प्रभाव—क्रम, गणना, आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, लेश, निदर्शना, उर्जस्वि, रसवत्, अर्थान्तरन्यास, व्यतिरेक, अपन्हुति।

बारहवाँ प्रभाव—वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्यधिकरणोक्ति, विशेषोक्ति, सहोक्ति, व्याज-स्तुति, अमित, पर्यायोक्ति, युक्त।

तेरहवाँ प्रभाव—समाहित, सुसिद्ध, प्रसिद्ध, विपरीत, रूपक, दीपक, प्रहेलिका, परिवृत्ति।

चौदहवा प्रभाव—उपमा।

पन्द्रहवाँ प्रभाव—यमक।

सोलहवाँ प्रभाव—चित्र।

अब हम प्रत्येक प्रभावो के अलकारो पर विचार करेंगे।

नवे प्रभाव मे स्वभावोक्ति और विभावना अलकारो की परिभाषाएँ तथा भेद दण्डी के अनुसार है। दण्डी ने हेतु के दो भेद किए हैं— कारक तथा ज्ञापक। कारक के दो उपभेद है। इन्ही उपभेदो के आधार पर केशव के हेतु के दोनो भेद

---

१ कविन कहे कवितानि के अलकार हैं रूप।
एक कहे साधारणहिं, एक विशिष्ट स्वरूप॥ 'कविप्रिया।'

२ सामान्यालकार को चारि प्रकार प्रकास।
वर्ण, वर्ण्य, भूराजश्री, भूषण केशवदास॥ 'कविप्रिया।'

सभावहेतु और अभाव हेतु किए गये प्रतीत होते है। दण्डी ने विरोध मे ही विरोधाभास का अन्तर्भाव दिखलाया है और केशव ने दोनो को अलग-अलग अलंकार माना है, किन्तु केशव दोनो मे अन्तर स्पष्ट नही कर पाये है। विरोध का प्रथम उदाहरण तो विरोधाभास का सा और द्वितीय उदाहरण विभावना का सा हो गया है। विशेषालंकार की भी परिभाषा विभावनालकार के एक भेद की सी परिभाषा हो गई है। केशव का उत्पेक्षालकार दण्डी से भिन्न है, किन्तु उसे उन्होने विशेष महत्त्व नही दिया है।सम्पूर्ण दसवें प्रभाव मे आक्षेपालकार का वर्णन है, जिसका आधार 'काव्यादर्श' है। दण्डी ने इसके चौवीस भेद किये है, किन्तु केशव ने केवल बारह ही भेद बतलाये हैं,[1] जिनमे छ भेद का दण्डी के भेदो से नाम-साम्य है। आक्षेपालकार निषेध की वक्रता पर होता है, परन्तु केशव ने वास्तविक निषेध मे ही अलकार की प्रतिष्ठा मान ली है। ग्यारहवे प्रभाव मे केशव का क्रमालकार शृंखला या एकावली अलकार के समान हो गया है। गणनालंकार में कोई अलकारत्व नही दृष्टिगत होता। अत: उसे तो सामान्यालंकार मे परिगणित किया जाना चाहिये था। केशव ने आशिष, प्रेम, श्लेष, सूक्ष्म, निदर्शना, उर्जस्वि, रसवत् और व्यतिरेक अलंकारो मे दण्डी का अनुकरण किया है। लेश अलकार की परिभाषा स्पष्ट नही है। अर्थान्तिरन्यास के उपभेद तो दण्डी से मिलते हैं, परन्तु इनकी परिभाषाओ में भिन्नता है। दण्डी ने अपन्हुति के दो भेद किये है, लेकिन केशव ने एक ही को लिया है, जिसे छेकापन्हुति कहते हैं। बारहवें प्रभाव में उक्ति-वर्णन है। कथन का ढंग विशेष ही उक्ति है, जो सभी अलकारो का मूलाधार है; लेकिन केशव ने इसे एक पृथक् अलकार माना है। यह पांच प्रकार का होता है।[2] वक्रोक्ति, अन्योक्ति, व्याधिकरणोक्ति, सहोक्ति और व्याज-स्तुति नामक अलंकार दण्डी तथा अन्य प्राचीन आचार्यो से मिलते है। अमित अलंकार सम्भवत: नया अलंकार है। इसका लक्षण यह है कि जहां साधक की सिद्धि का साधन ही स्वयं भोग कर ले उसे अमित अलंकार कहते है। इसमे लगभग वही चमत्कार है, जो विषादन[3] अलंकार मे होता है। व्याधिकरणोक्ति असगति अलंकार के समान होता है और पर्यायोक्ति एक प्रकार का प्रहर्षण है। केशव के युक्तालंकार का साम्य उन्ही के स्वभावोक्ति से है।[4] तेरहवें प्रभाव मे सुसिद्ध, प्रसिद्ध और विप-

---

१ प्रेम, अधीरज, धीरजहु, संशय,मरण, प्रकास।
आशिख, धरम, उपाय कहि, शिक्षा केशवदास ।। 'कविप्रिया'

२ वक्र, अन्य, अधिकरण कहि और विशेष समान।
सहित सहोकति मैं कही, उक्ति सुपंच प्रमान ।। 'कविप्रिया'

३ इष्यमाण विरुद्धार्थ संप्राप्तिस्तु विषादनम्। 'कुवलयानन्द'

४ जाको जैसो रूप बल कहिए ताहीरूप।
ताको कविकुल उक्तिकहि बरनत विविध सरूप ।। 'कविप्रिया'
जाको जैसो रूप गुन कहिए ताही साज।
तासों जानि स्वभाव सब कहि बरनत कविराज ।।

रीत अलंकारों का कोई आधार नही ज्ञात होता। इनमें शायद केशव का स्वतन्त्र चिन्तन है। शेष अलंकार समाहित, रूपक, दीपक, प्रहेलिका और परिवृत्ति 'काव्यादर्श' के आधार पर हैं। दण्डी और केशव का समाहित साहित्यदर्पणकार से भिन्न है। इनके समाहित को काव्यप्रकाशकार और साहित्यदर्पणकार समाधि अलंकार मानते हैं। चौदहवें प्रभाव मे केवल उपमालकार वर्णन है। केशव ने बाइस और दण्डी ने बत्तिस उपमाएँ मानी है। केशव की बाइस उपमाओं मे से पन्द्रह तो दण्डी के नामों और लक्षणो से मिलती हैं। पांच मे नामान्तर मात्र है और शेष दो सकीर्णोपमा तथा विपरीतोपमा दण्डी से भिन्न हैं, किन्तु उपमा के लिए अपेक्षित साम्याभाव में इन्हे उपमा कहना ही व्यर्थ है। पन्द्रहवें प्रभाव मे यमक का वर्णन किया गया है। दण्डी ने इसका बहुत विस्तारपूर्वक विवेचन किया है और केशव ने भी इस विस्तार को लाने का प्रयत्न किया है, किन्तु दण्डीकृत समस्त भेदों को नही ला सके हैं। सोलहवें प्रभाव मे चित्रालकार का वर्णन है। यह अलंकार एक गहरा समुद्र है, जिसमे बड़े-बडे मेधावी व्यक्ति भी बूडने लगते है।[1] अत: केशव ने इनमे से कुछ का ही वर्णन करके अपना काम चला लिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी के आद्यालकारिक आचार्य केशवदास ने अपनी 'कविप्रिया' मे नवें प्रभाव से लेकर सोलहवें प्रभाव तक अलकारों का विशद वर्णन किया है। यद्यपि उनके अलकार–प्रकरण का आधार दण्डी का काव्यादर्श' है, फिर भी उन्होने कतिपय नवीन अलकारो की उद्भावना की है जो उनकी स्वतन्त्र सूझ-बूझ का परिचायक है। यदि केशवदास सुकुमार बुद्धि-बालक-बालिकाओ तथा प्रवीणराय को अलकार-ज्ञान कराने का उद्देश्य लेकर यह पुस्तक न लिखते तो शायद वह किसी सुदृढ आधार पर अलकारो का वैज्ञानिक विवेचन हिन्दी-साहित्य को दे जाते; क्योंकि इस प्रकार के सम्यक् विषय-निर्वाह की उनमे प्रतिभा और पाडित्य था, किन्तु उसका समुचित उपयोग न हो सका।

'कविप्रिया' की रचना के पचास वर्ष उपरात हिन्दी रीति-ग्रन्थो की अखण्ड परम्परा चिंतामणि त्रिपाठी से आरम्भ होती है। इसीलिए इन्ही से रीतिकाल का प्रारम्भ माना जाता है।[2] इन्होने अपने कविकुलकल्पतरु'[3] नामक अलकार-ग्रन्थ में अलंकारों के अतिरिक्त गुण, रस, शब्दशक्ति आदि विषयों पर अपने विचार व्यक्त किये हैं। सर्वप्रथम गद्य-पद्य का अन्तर बतलाते हुए काव्य के स्वरूप का वर्णन किया

---

१ केशवचित्र–समुद्र मे, बूड़त परम विचित्र।
ताके बुन्दक के कणौ, बरनत हौ सुनि मित्र॥ 'कविप्रिया'

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास —प० रामचन्द्र शुक्ल।

३ रचनाकाल संवत् १६०७।

है ।[१] इनकी काव्य-परिभाषा में मम्मट की परिभाषा का प्रभाव परिलक्षित होता है। ग्रन्थ के दूसरे और तीसरे अध्याय में अलकारों का वर्णन है । काव्य में अलंकारों की स्थिति के विषय मे लिखा है :—

अलंकार ज्यों पुरुष को हारादिक मन आनि ।
प्रासोपन आदिक कवित अलंकार ज्यों जानि ।।

चितामणि ने दो प्रकार के अलंकार माने हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार ।[२] दूसरे अध्याय में शब्दालकारों का और तीसरे अध्याय में अर्थालंकारों का वर्णन है । दोनों प्रकार के लक्षण और उदाहरण स्पष्ट है । इसमें उदाहरण तो बहुत ही सुन्दर बन पड़े हैं ।

अधिकांश परिभाषाओं और उदाहरणों में 'काव्यप्रकाश' को आधार बनाया गया है । कही-कहीं 'साहित्यदर्पण' का भी सहारा लिया गया है ।[३]

महाराज जसवन्तसिंह का 'भाषाभूषण'[४] सर्वाधिक पठित ग्रन्थ है । यह ग्रन्थ काव्य-रीति के अभ्यासियो के लिये वैसा ही प्रिय हुआ, जैसा कि संस्कृत विद्यार्थियों के लिये जयदेवकृत 'चन्द्रालोक' । 'भाषाभूषण' मे रस, नायिका-भेद, अलंकार आदि का पाँच प्रकाशों मे वर्णन किया गया है । वर्णन मे अलकारों की प्रधानता है । इस ग्रन्थ की लोकप्रियता इसी से प्रतीत होती है कि इस पर बाद में अनेक टीकाएँ लिखी गई ।[५] लेखक ने सस्कृत न जानने वाले व्यक्तियों के लिए विभिन्न संस्कृत ग्रंथों के आधार पर शब्द और अर्थ के एक सौ आठ अलंकारो का वर्णन

---

१ छन्द निबद्ध सुपद्य कहि गद्य होत बिन छद ।
भाषा छंद निबद्ध सुनि सुकवि होत सानन्द ।।
सगुनालकारन सहित दोषरहित जो होइ ।
शब्द अर्थ ताको कवित कहत विबुध सब कोइ ।। 'कविकुलकल्पतरु'

२ शब्द अर्थ गति भेद सों अलंकार द्वै भांति । 'कविकुलकल्पतरु'

३ हिन्दी-काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भागीरथ मिश्र ।

४ रचनाकाल अठारहवी शताब्दी का प्रारम्भ ।

५ 'भाषाभूषण' पर तीन टीकाएँ रची गई —'अलकार' रत्नाकर 'नामक टीका जिसे बंशीधर ने संवत् १७६२ मे बनायी, दूसरी टीका प्रतापसिंह की और तीसरी गुलाब कवि की 'भूषण-चन्द्रिका' ।
—हिन्दी-साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल ।
इन टीकाओं के अतिरिक्त और भी टीकाएँ लिखी गई हैं, उनमे कुछ अप्राप्य हैं और कुछ अप्रसिद्ध हैं ।

इस पुस्तक में किया है।[1] शब्दालंकारों का संक्षिप्त और अर्थालंकारों का विशद वर्णन किया गया है। इसकी वर्णन-शैली पर 'चन्द्रालोक' का प्रभाव है। जिस प्रकार जयदेव ने 'चन्द्रालोक' मे प्राय: एक ही श्लोक के भीतर परिभाषा और उदाहरण का समावेश किया है, उसी प्रकार 'भाषाभूषण' मे भी जसवन्तसिंह ने प्राय. एक ही दोहे के भीतर लक्षण और उदाहरण रक्खे हैं, लेकिन अलंकार-विवेचन मे 'चन्द्रालोक' की अपेक्षा अप्पयदीक्षित के 'कुवलयानन्द' को अधिक मान्यता मिली है। शब्दालंकार-वर्णन में 'काव्यप्रकाश' और साहित्यदर्पण' का प्रभाव है। इस प्रकार संस्कृत के विविध ग्रन्थों पर यह ग्रन्थ आधारित है। यद्यपि लक्षण बहुत ही सूत्रवत् संक्षेप में हैं; किन्तु सर्वत्र सर्वथा शुद्ध और स्पष्ट उदाहरण अत्युपयुक्त है, जो लेखक की तत्व-ग्राहिणी बुद्धि के द्योतक हैं। इसी संक्षिप्तता और सरसता के कारण यह ग्रन्थ सर्वप्रिय हो सका। 'भाषाभूषण' के पश्चात् अलंकार और नायिका-भेद सम्बन्धी क्षेमराज का 'फतेह-प्रकाश' ग्रन्थ है। इसमे विषय में शास्त्रीय विवेचन का अभाव है। अत: इसका कोई विशेष महत्व नहीं है।

इसके उपरांत इस प्रकार के लेखक मिलते हैं, जो कविता और आचार्यत्व दोनों करते हैं। स्वतन्त्र रूप से काव्यशास्त्र का विवेचन करने वाला कोई आचार्य नहीं दृष्टिगत होता। "संस्कृत-साहित्य में कवि और आचार्य दो भिन्न-भिन्न श्रेणियो के व्यक्ति रहे। हिंदी-काव्य-क्षेत्र मे यह भेद लुप्त सा हो गया। इस एकीकरण का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। आचार्यत्व के लिए जिस सूक्ष्म विवेचन और पर्यालोचन-शक्ति की अपेक्षा होती है, उसका विकास नहीं हुआ। कवि लोग दोहो मे अपर्याप्त लक्षण देकर अपने कविकर्म मे प्रवृत्त हो जाते थे। काव्यांगों का विस्तृत विवेचन, तर्क द्वारा खण्डन-मण्डन, नये-नये सिद्धांतो का प्रतिपादन आदि कुछ भी न हुआ।"[2] परिणामस्वरूप कोई भी व्यक्ति ऐसा न हो सका, जिसे संस्कृत-साहित्याचार्यों की परम्परा में प्रतिष्ठित किया जा सके। हाँ, एक विशेषता इस युग के लक्षण-ग्रन्थो मे अवश्य मिलती है, वह यह कि लक्षण चाहे कितने ही शिथिल हों, किन्तु उदाहरण अवश्यमेव सरस, सुन्दर और आकर्षक हैं। इसका कारण यह है कि ये लोग कवि अधिक थे और आचार्य कम। इस प्रकार के आचार्यों मे मतिराम, भूषणादि है।

---

१ ताही नर के हेतु यह कीन्हों ग्रन्थ नवीन।
जे पंडित भाषा-निपुन, कविता विषै प्रवीन॥
अलंकार शब्दार्थ के कहे एक सौ आठ।
किये प्रकट भाषा-विषै देखि संस्कृतपाठ॥
—'भाषाभूषण'।

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।

मतिराम का 'ललितललाम'[१] अलंकार-ग्रन्थ है। इसमे लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्त तथा सवैयो मे दिये गये है। लक्षण तो सभी स्पष्ट नहीं है, किन्तु उदाहरण अवश्य बहुत सुन्दर है। उदाहरणो की सुन्दरता के कारण मतिराम के 'रसराज' और 'ललितललाम' दोनो ही ग्रन्थो का पर्याप्त प्रचार हुआ। "वास्तव मे अपने विषय के ये अनुपम ग्रन्थ है। उदाहरणों की रमणीयता से अनायास रसों और अलकारो का अभ्यास होता चलता है। 'रसराज' का तो कहना ही क्या है। 'ललितललाम' मे भी अलकारो के उदाहरण बहुत सरल और स्पष्ट है। इसी सरसता और स्पष्टता के कारण ये दोनो ग्रन्थ अति सर्वप्रिय रहे है। रीतिकाल के प्रतिनिधि कवियो मे पद्माकर को छोडकर और किसी कवि मे मतिराम की सी चलती भाषा और सरस व्यजना नही मिलती।"[२] सम्पूर्ण ग्रन्थ मे सौ अलकारो का वर्णन किया गया है। शब्दालकारो के अतिरिक्त चार रसवत् आदि, तीन भावोदय आदि और आठ प्रमाणालकारो का वर्णन नही किया गया है। इसका कारण कोई सैद्धांतिक मतभेद नही प्रतीत होता। सयोगवश छूट गये है। अलकारों के भेद-प्रभेद 'कुवलयानन्द' के आधार पर है। अलकारो के लक्षणो मे 'कुवलयानन्द' और 'चन्द्रालोक' के अतिरिक्त यत्र तत्र 'काव्यप्रकाश' तथा साहित्यदर्पण' की भी शब्दावली प्रयुक्त हुई है। 'ललितललाम' के अतिरिक्त मतिराम का 'अलंकार पचाशिका'[३] नामक एक और अलकार-ग्रन्थ है जिसकी रचना लेखक ने कुमायूँ के राजा उदोतचन्द्र के पुत्र ज्ञानचन्द्र के लिये की थी।[४] इसके लक्षण दोहों मे और उदाहरण कवित्तो मे है। यह इनका कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ नही है। दोनों ग्रन्थों में उदाहरण कवि के मौलिक हैं।

मतिराम के समकालीन आगरा-निवासी कुलपति मिश्र ने मम्मट के 'काव्य-प्रकाश' के आधार पर 'रसरहस्य'[५] नामक ग्रंथ की रचना की है। ये साहित्यशास्त्र के अच्छे ज्ञाता थे। अत इनका लक्षण-निरूपण अन्यो की अपेक्षा अधिक प्रौढ़ है।' 'रस रहस्य' मे विविध विषयो का विवेचन किया गया है और अन्त मे

---

१ रचनाकाल सवत् १७१६।

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।

३ रचनाकाल संवत् १७४७।

४ ज्ञानचन्द के गुन घने गने भने गुनवत।
वारिधि के मुक्तान को कौने पायो अन्त।
तदपि यथामति सों कर्‌यो शब्द अर्थ अभिराम।
अलकारपंचाशिका रची रुचिर मतिराम॥
ससकिरित के अर्थ लै भाषा शुद्ध विचारि।
उदाहरण क्रम से किये लीजो सुकवि सुधार॥ —'अल० पचा०'।

५ रचनाकाल सवत् १७३७।

सातवें तथा आठवें वृत्तान्त में अलकारो का वर्णन है। ये रस-सम्प्रदाय के अनुयायी थे। अत: काव्य मे रस का ही वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए अलकार के स्वरूप का वर्णन किया है।[१] शब्दालंकार और अर्थालकार दोनों की संख्या और विवेचन 'काव्यप्रकाश' के अनुसार हैं। प्रधान और बडे अलकारों के विवेचन में 'साहित्य-दर्पण' से भी सहायता ली गई है। 'रसरहस्य' में आलकारिक परिभाषाओं की स्पष्टता के साथ-साथ कवित्त और सवैयों मे दिये गये उदाहरण भी उपयुक्त और मौलिक हैं।

'रसरहस्य' के अनन्तर चिंतामणि और मतिराम के भाई वीररस के सुप्रसिद्ध कवि भूषण द्वारा लिखित 'शिवराजभूषण'[२] नामक अलंकार-ग्रन्थ प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त इनके दो और ग्रंथों—'भूषणउल्लास' और 'दूषण उल्लास'—का भी उल्लेख मिलता है; किन्तु ये अप्राप्य है। सम्भवत: ये भी अलकार-ग्रन्थ हैं। 'ललित-ललाम' की भाँति भूषण ने 'शिवराजभूषण' मे लगभग उसी क्रम मे सौ अर्थालंकारो का वर्णन किया है। इन्होने पाँच प्रसिद्ध शब्दालकारों का भी वर्णन किया है। इनके लक्षण दोहों में और उदाहरण शिवा जी की प्रशंसा मे वीररस-परिपूर्ण कवित्त और सवैयों मे दिये गये हैं। लक्षण अस्पष्ट हैं। उदाहरणों को ही सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है, किन्तु परिणाम, लुप्तोपमा, भ्रम, निदर्शना, सम, परिकर, विभावना, काव्यलिंग, अर्थान्तरन्यास एवं निरुक्ति मे उदाहरण भी अनुपयुक्त हो गये हैं। लक्षणो की शिथिलता संकर, विरोध, लाटानुप्रास, छेकानुप्रास आदि मे प्राप्त होती है। 'ललितललाम' के लक्षणो मे 'शिवराज भूषण' की अपेक्षा अधिक स्पष्टता है।[३] "भूषण ने दो नये अलंकारों के निकालने का भी प्रयत्न किया है; पर उसमें सफलता नही मिली है। उन्होने एक 'सामान्य विशेष' नामक अलकार माना है, जिसमे विशेष का कथन करके सामान्यलक्षित कराया जाता है। यह अलकार प्राचीन आलकारिको के अप्रस्तुत प्रशसालकार की विशेष निबन्धना से भिन्न नही है। इसके उदाहरण भी वैसे स्पष्ट नही हैं, जैसे होने चाहिये। एक दूसरा अलकार है, 'भाविक-छवि'। इसका लक्षण है दूरस्थित वस्तु को संमुख देखना। भाविक अलकार मे समय की दूरी है और भाविक छवि मे स्थान की दूरी। वस्तुत: यह भाविक छवि भाविक का ही एक अग है, उससे भिन्न नही।" वास्तव मे 'भाविकछवि' अलकार का नाम-करण भी भूषण का नही है। नाम और लक्षण में भूषण ने जयदेव का अनुकरण किया है।[४] 'शिवराज भूषण' मतिराम के 'ललितललाम' के आधार पर लिखा गया

---

१ रसहि बढ़ावै होय जहँ, कबहुक अग निवास।
अनुप्रास उपमादि हैं, अलंकार सुप्रकाश॥ —'रसरहस्य'

२ रचनाकाल संवत् १७३०।

३ भूषण—ग्रन्थावली का अन्तर्दर्शन—सम्पादक पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

४ देशात्मविप्रकृष्टस्य दर्शनं भाविकच्छविः॥ —'चन्द्रालोक'।

प्रतीत होता है; क्योंकि दोनों ग्रंथों के लक्षणो मे बहुत साम्य है ।[1] यहाँ तक कि दोनों के कतिपय अलकारों की परिभाषाओ मे केवल कवि के नाम का अन्तर है और शेष शब्दावली एक ही है ।[2] इस प्रकार अलकार-निरूपण की दृष्टि से 'शिवराजभूषण' कोई उत्तम ग्रंथ नहीं है । इसके रचनाकाल के आसपास गोपालराय का 'भूषणविलास' और बलवीर के 'उपमालकार' नामक अलकार-ग्रथो की रचना हुई, लेकिन इनमें विषय का विवेचन बहुत साधारण हुआ । अतः साहित्यिक दृष्टि से इनका कोई विशेष महत्त्व नही रहा ।

---

१ 'ललितललाम' और 'शिवराजभूषण' दोनों ही अलकार-ग्रथ है । दोनों ही में अलंकारो के लक्षण और उदाहरण दिये हुये है । दोनो कवियो के लक्षणों का ध्यानपूर्वक मिलान करने से हमे उभय कवियो के लक्षणों मे अद्भुत सादृश्य दिखलाई पडता है । यह सादृश्य इतना अधिक बढा हुआ है कि लक्षण दोहा के अन्तिम तुक भी मिल जाते है । किसी मे तो कवि का नाम भर का भेद रह जाता है ।

—मतिराम-ग्रंथावली की भूमिका – सपादक प० कृष्णविहारी मिश्र ।

२ अ— जहाँ एक उपमेय को होत बहुत उपमान ।
तहाँ कहत मालोपमा कवि मतिराम सुजान ।। –'ललितललाम' ।
जहाँ एक उपमेय के होत बहुत उपमान ।
ताहि कहत मालोपमा भूषण सुकवि सुजान ।। –'शिवराजभूषण' ।

ब— जहाँ और की सक तै साच छपावत बात ।
छेकापन्हुति कहत है तहाँ बुद्धि अवदात ।। –'ललितललाम' ।
जहाँ और को सककरि साँच छपावत बात ।
छेकापन्हुति कहत है भूषन कवि अवदात ।। –'शिवराजभूषण' ।

स— जहाँ आपनो रग तजि, लेत और को रग ।
तद्गुन तह बरनन करत जे कवि बुद्धि उतग ।। –'ललितललाम' ।
जहाँ आपने रग तजि, गहै और को रग ।
ताको तद्गुन कहत है भूषन बुद्धि उतग ।। –'शिवराजभूषण' ।

द— जो यो होय तु होय यो, जह सभावन होय ।
सभावन तासों कहत विमल ज्ञानमति धोय ।। –'ललितललाम' ।
जु यो होय तो होय इमि जह सभावन होय ।
ताहि कहत संभावना कवि भूषन सब कोय ।। –'शिवराजभूषण' ।

य— सदृश वाक्य जुग अर्थ को जहाँ एक आरोप ।
बरनत तहाँ निदर्शना कविजनमति अतिचोप ।। –'ललितललाम ।
सदृश वाक्य जुग अर्थ को करिये एक अरोप ।
भूषन ताहि निदर्शना, कहत बुद्धि दै ओप ।। –'शिवराजभूषण' ।

भूषण के 'शिवराजभूषण' के पश्चात् रससिद्धातानुयायी महाकवि देव ने काव्यशास्त्र के 'भावविलास'[१] और 'काव्यरसायन'[२] नामक दो ग्रन्थों मे अन्यविषयो के अतिरिक्त अलकारो का भी वर्णन किया है। 'भावविलास' के पाचविलासो मे रस, नायक-नायिकाभेद तथा अलकारो का वर्णन है।[३] यह लेखक की अपरिपक्वावस्था की रचना है।[४] इसके अलकार-विवेचन में शब्दालकारो को छोड दिया गया है और जिन अलकारो को मुख्य समझा है, उन्ही ३९ अलंकारो का कवि ने वर्णन किया है तथा शेष को इनका भेद मात्र कहा है[५]। वास्तव मे तथ्य ऐसा नही है; क्योकि देव ने महत्त्वहीन रसवत्, ऊर्जस्वल, प्रेयस और आशिष जैसे अलकारों का तो सन्निवेश किया है, परन्तु कारणमाला, परिसख्या, दृष्टान्त आदि मुख्य अलकारों को छोड दिया है, जो लेखक के अध्ययन-अपूर्णता का द्योतक है। इतना ही नही लक्षण तथा उदाहरण भी अशुद्ध एव अनुपयुक्त है। यह ग्रन्थ महाकवि के व्यक्तित्व के अनुरूप नही है। इसी के चौदहवर्ष बाद देव ने अपनी प्रौढावस्था मे 'काव्य रसायन' नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमे शब्दशक्ति, रीति, गुण, रस और अलकारो का विवेचन है। 'भावविलास' मे देव ने शब्दालंकारों को छोड़ दिया था, किन्तु इस ग्रन्थ मे यमक अनेक भेदों सहित, चित्र तथा अन्तर्लापिका का भी वर्णन किया है। अर्थालकारों के दो वर्ग हैं—मुख्यालकार तथा गौणालकार, जिनकी संख्या क्रमश: चालीस और तीस है तथा उभय मिश्रण से अलकारों के अनन्त भेद हो सकते हैं।[६] देव का 'ससयालकार' अन्य आचार्यों द्वारा निरूपित सदेहालकार से भिन्न है। देव के अनुसार संसयालकार वहाँ होता है, जहाँ उपमामात्र देने मे ससय हो। सिद्धान्त-निरूपण की दृष्टि से देव का यह ग्रन्थ भी अव्यवस्थित और अस्पष्ट है। भावविलास से अवश्य यह अधिक प्रौढ है।

---

१ रचनाकाल सवत् १७४६।

२ रचनाकाल सवत् १६६०।

३ सब नायिकादि नायक-सहित, अलकार वर्णन रच्यो। —'भावविलास'।

४ सुभ सत्रह सै छयालीस, चढत सोरहीं वर्ष।
कढी देवमुख देवता, भावविलास सहर्ष॥ —'भावविलास'।

५ अलकार मुख्य उनतालीस हैं देव कहे,
येई पुराननि मुनिमतनि मैं पाइए।
आधुनिक कविन के सगत अनेक और,
इन्ही के भेद और विविध बताइए॥ —'भावविलास'।

६ अलकार ये मुख्य है इनके भेद अनत।
आन ग्रन्थ के पथ लखि जानिलेहु मतिमंत॥ भावविलास।

आगरावासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण सूरतिमिश्र का 'भाषाभूषण' की शैली में लिखा हुआ[1] अलकारमाला नामक ग्रन्थ हैं। इसमे भाषा-भूषण की सी लक्षणो और उदाहरणों मे सफाई नहीं है। इनका एक दूसरा ग्रन्थ 'काव्यसिद्धान्त' है, जिसमें काव्यशास्त्र के विविध विषयो का विवेचन किया गया है। इसके अलकारो के वर्णन मे लक्षण को भी अधिक स्पष्ट और पूर्ण बनाने का प्रयत्न है, केवल उदाहरण भरने का ही नही। इससे सूरति का उद्देश्य काव्यशास्त्र का विवेचन कवि के रूप मे नही वरन् आचार्य के रूप मे करने का जान पड़ता है।[2]

प्रयाग निवासी ओझा ब्राह्मण कवि श्रीधर मुरलीधर[3] के आश्रयदाता नवाब मुसल्लेहखान थे।[4] इन्ही के आश्रय मे कवि श्रीधर ने भाषाभूषण[5] नामक अलकार-ग्रन्थ की रचना की। "इसका आधार संस्कृत के 'चन्द्रालोक' तथा 'कुवलयानन्द' ग्रंथ हैं। दोहे के पूर्वार्द्ध मे अलकार का लक्षण है। वर्णन साधारण है। उदाहरणो मे भी कोई विशेषता नही है।"[6]

ओरछानरेश महाराज पृथ्वीसिंह के आश्रय मे रहने वाले कवि गोप का रचना-काल मिश्रबन्धुओं के अनुसार सवत् १७७३ है तथा इनका ग्रन्थ 'रामालंकार' है; किन्तु डा० भगीरथ मिश्र ने दतिया—राजपुस्तकालय मे इनका बनाया ग्रन्थ 'रामचन्द्र भूषण' और टीकमगढ के सवाई महेन्द्र पुस्तकालय (ओरछा) मे 'रामचन्द्र-भूषण' और 'रामचन्द्राभरण' नामक दो ग्रन्थ देखे है। 'रामचन्द्रभूषण' प्राचीन शैली पर दोहों मे लिखा हुआ अलंकार-ग्रन्थ है। इसमें अर्थालंकार और शब्दालंकार दोनों का वर्णन है। छंद के पूर्वार्द्ध मे लक्षण और उत्तरार्द्ध मे उदाहरण दिये गये हैं। रामचन्द्राभरण, रामचन्द्रभूषण के आधार पर लिखा गया है। दोनों मे कोई विशेप अन्तर नहीं है।

मिश्रबन्धुओं ने अपने 'मिश्रबन्धु-विनोद' मे याकूब खाँ द्वारा लिखित रसभूषण[7] का उल्लेख किया है। ग्रन्थकार की दृष्टि मे बिना अलकारो के नायिका शोभा

---

१ रचनाकाल सवत् १७६६।

२ हिन्दी-काव्यशास्त्र का इतिहास—डा० भगीरथ मिश्र।

३ श्रीधर ओझा विप्रवर, मुरलीधर जसनाम।
तीरथराज प्रयाग मे, सुबस बस्यो रविधाम ॥ भाषाभूषण

४ नवल नवाब मुशल्लेहखान बहादुर सिन्धु सता सुदली है।
जाकी सभा कविराजै कलाधर, मंगलमयसुख साजी थली है ॥ वही ॥

५ रचनाकाल सवत् १७६७।

६ हिन्दी-अलंकार-साहित्य।
—डा० ओमप्रकाश।

७ रचनाकाल संवत् १७७५।

नहीं देती। अतः लेखक ने अपने ग्रंथ में अलंकार और नायिका-भेद का साथ-साथ वर्णन किया है।[1] लक्षणों को स्पष्ट करने के लिए यत्र-तत्र गद्य का भी प्रयोग हुआ है। लक्षण-विवेचन मे तो कोई विद्वता नही प्रकट होती, किन्तु वर्णन-शैली अवश्य नवीन है और साथ ही उदाहरणो से कवि की अच्छी कवित्व-शक्ति का भी परिचय प्राप्त होता है।

तैलंग ब्राह्मण कुमार मणि भट्ट ने 'काव्यप्रकाश' के आधार पर 'रसिकरसाल'[2] नामक काव्यशास्त्र-ग्रन्थ का प्रणयन किया। इसमें रस, नायिका-भेद, अलंकार आदि विषयो का अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है। आप संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। अतः विषय-विवेचन सर्वत्र शुद्ध और स्पष्ट है। विवेचन को और अधिक स्पष्ट करने के लिए गद्य मे व्याख्या की गई है। अलंकार-प्रकरण का आधार आद्यन्त 'काव्य-प्रकाश' है। इस प्रकार 'रसिकरसाल' काव्यशास्त्र का एक उत्तम ग्रन्थ है।

कालपी-निवासी[3] आचार्य श्रीपति का तेरह दलो मे 'काव्यसरोज'[4] नामक काव्यशास्त्र का एक महत्वपूर्ण ग्रथ है। काव्य मे अलकार-प्रयोग के विषय में आपका कहना है—

जदपि दोष बिनु गुनसहित सब तन परम अनूप।
तदपि न भूषन बिनु लसै बनिता कविता रूप॥

इसके पश्चात् दसवें, ग्यारहवें और बारहवे दलों मे अलकारों का वर्णन है। शब्दालंकारो मे तत्पर और अतत्परविधान-चित्र नामक दो नवीन अलंकारों की उद्-भावना की है, किन्तु इनका लक्षण स्पष्ट नही है। अलकार-वर्गीकरण मे लेखक का आचार्यत्व परिलक्षित होता है, किन्तु अलकारो का वर्णन बिल्कुल स्पष्ट नही हुआ है।

आगरा-निवासी रसिक सुमति ने 'अलंकार-चन्द्रोदय'[5] नामक एक अलंकार-ग्रन्थ कुवलयानन्द के आधार पर एक सौ सत्तासी दोहों मे बनाया, जिसके एक सौ अस्सी दोहो मे अर्थालकार और शेष सात मे शब्दालकार-वर्णन है। अन्य लोगों से

---

१ अलकार संयुक्त कह्यो नायिका-भेद पुनि।
बरनो क्रम निजु उक्ति लक्षन और उदाहरनि॥ रसभूषण।

२ रचनाकाल संवत् १७७६।

३ रचनाकाल संवत् १७७७।

४ सुकवि कालपी नगर को, द्विज मनि श्रीपति राइ।
जस समस्वाद जहान को, वरनत सुष समुदाइ॥
—काव्यसरोज।

५ रचनाकाल संवत् १७८६।

भिन्न अलंकार की परिभाषा करते हुए रसिकसुमति कहते हैं कि काव्य मे वैचित्र्य का नाम अलकार है, यह शब्द और अर्थ दो प्रकार का होता है तथा प्रत्येक प्रकार में इसके विविध भेद है।[१] इस ग्रन्थ मे अलकार-विवेचन सुन्दर हुआ है। इसी ग्रन्थ के रचनाकाल के आस-पास भूपति ने 'कठाभरण' तथा दलपति और वशीधर ने 'अलकाररत्नाकर' नामक ग्रन्थों की रचना की। कठाभरण साधारण महत्व का ग्रन्थ है। दलपतिराय और वशीधर अहमदाबाद के रहने वाले थे। इन लोगों ने "उदयपुर के महाराणा जगतसिंह के नाम पर 'अलकाररत्नाकर'[२]नामक ग्रन्थ बनाया। इसका आधार महाराज जसवतसिंह का 'भाषाभूषण' है। इसका 'भाषाभूषण' के साथ प्रायः वही सम्बन्ध है जो कुवलयानन्द का 'चन्द्रालोक' के साथ। इस ग्रन्थ में विशेषता यह है कि इसमे अलंकारो का स्वरूप समझाने का प्रयत्न किया गया है। इस कार्य के लिए गद्य व्यवहृत हुआ है। रीतिकाल के भीतर व्याख्या के लिए कभी-कभी गद्य का उपयोग कुछ ग्रन्थकारों के सम्यक् निरूपण की उत्कठा सूचित करता है। इस उत्कंठा के साथ ही गद्य की उन्नति की आकांक्षा का सूत्रपात समझना चाहिए जो सैकड़ों वर्ष बाद पूरी हुई। 'अलकार रत्नाकर' मे उदाहरणो पर अलंकार घटाकर बताये गये है। और उदाहरण दूसरे अच्छे कवियो के भी बहुत से है। इससे यह अध्ययन के लिये बहुत उपयोगी है। दडी आदि कई सस्कृत आचार्यों के उदाहरण भी लिखे गये हैं। हिन्दी-कवियो की लम्बी नामावली ऐतिहासिक खोज मे बहुत उपयोगी है।"[३]

आचार्य सोमनाथ भरतपुर महाराज वदनसिंह के कनिष्ठपुत्र प्रतापसिंह के आश्रय मे रहते थे। इन्होने 'रसपीयूषनिधि'[४] नामक एक सुप्रसिद्ध विशाल ग्रन्थ की रचना की। ग्रन्थ की अन्तिम तरग मे शब्दालकार, अर्थालकार और चित्रालकार का विशद विवेचन है। गुण और अलकार के भेद बतलाते हुए सोमनाथ ने कहा है—

दोऊ रस दायक प्रकट गुन औ भूषन जाति।
भेद दुहुन मे होय ज्यों कहिए सोहित ठानि॥

स्पष्ट करने के लिए गद्य मे भी इसकी व्याख्या की है कि "याको उत्तर-गुण सदा एक रस है और अलकार कहूँ रस को पोषत है, कहूँ उदास, कहूँ दूषक होय है। यह भेद।" इसके पश्चात् अलकार-स्वरूप का वर्णन किया है—

अलकार जो होत सो उक्ति भेद सो होत॥

---

१ सबद अरथ की चित्रिता विविध भाँति की होइ।
अलकार तासों कहत रसिक विवुध कवि कोइ॥
अलंकार चन्द्रोदय।

२ रचनाकाल संवत् १७९२।

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—प० रामचन्द्र शुक्ल।

४ रचनाकाल सवत् १७९४

अलंकार-विवेचन में अर्थालंकार-प्रकरण के लिये 'कुवलयानन्द' को आधार बनाया गया है तथा शेष के लिये 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्य-दर्पण' को। आचार्य सोमनाथ शैली के निर्वाह मे सफल रहे हैं। इनकी शैली शुद्ध, सुबोध, व्यवस्थित एवं आकर्षक है। विषय-सामग्री का प्रतिपादन भी उपयुक्त है। यह काव्यशास्त्र का उच्चकोटि का ग्रन्थ है।

काशीनरेश महाराज बरिवंडसिंह की सभा को सुशोभित करने वाले बंदीजन रघुनाथ एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। इनका 'रसिकमोहन'[1] नामक एक अलंकार-ग्रन्थ है। "इसमे अलंकारों के उदाहरण मे जो पद्य आए हैं उनके प्राय: सब चरण प्रस्तुत अलंकार के सुन्दर और स्पष्ट उदाहरण होते है। इस प्रकार इनके कवित्त या सवैये का सारा कलेवर अलंकार को उदाहृत करने मे प्रयुक्त हो जाता है। भूषण आदि बहुत से कवियों ने अलंकारों के उदाहरण मे जो पद्य रखे हैं, उनका अंतिम या और कोई चरण ही वास्तव में उदाहरण होता है।"[2] लक्षण दोहो मे तथा उदाहरण कवित्त और सवैयों में दिये गये हैं।

'भाषाभूषण' की शैली पर लिखा हुआ गोविन्दकृत 'कर्णाभरण'[3] अलंकार का ग्रंथ है। इसमे भेदसहित एक सौ अस्सी अलकारो का वर्णन है। प्राय. प्रत्येक दोहे मे अलकार का लक्षण और उदाहरण दिया गया है। अलंकार-निरूपण बड़ी सुबोध शैली मे है। अत 'भाषाभूषण' के समान इसमे टीका की आवश्यकता नही। ग्रन्थ में कोई मौलिकता तो नही है, किन्तु अलंकारों को समझने के लिए बहुत अच्छा ग्रन्थ है। दूलह कवि का 'कविकुलकंठाभरण'[4] बहुत ही सुन्दर और सुप्रसिद्ध अलंकारों का ग्रन्थ है। इसमें 'चन्द्रालोक' और 'कुवलयानन्द' के आधार पर एक सौ पंद्रह अलकारों[5] का वर्णन किया गया है। इसकी परिभाषाएँ बहुत ही स्पष्ट एव

---

१ रचनाकाल संवत् १७६४।
२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल।
३ रचनाकाल सवत् १७६४।
४ रचनाकाल सवत् १८००।
५ अरथालंकृत शत प्राचीन कहे तो कहे,
आधुनिक सत्तरि-बहत्तरि प्रमाने हैं।
कहैं कवि दूलह सुपचदस औरो सुनो,
औरो और ग्रन्थन सो जो वै ठीक ठाने हैं।
चारि रसवत्, प्रेय, ऊर्जस्व, समाहित है,
तीन भाव उदै, संधि, सबलता साने हैं।
परत्यच्छ प्रमुख प्रमान आठौ अलंकार,
कुवलयानन्द मे बखान जग जाने है।। —कविकुलकठाभरण।

संक्षिप्त तथा उदाहरण उपयुक्त और सुन्दर है जो दूलह कवि के कवित्व एवं आचार्यत्व के परिचायक है। इस ग्रंथ का पर्याप्त प्रचार हुआ और यथार्थ मे कवि-कुल-कंठाभरण हो गया।

हिन्दी-रीतिकालीन आचार्यों मे भिखारीदास अग्रगण्य है। इनका 'काव्य-निर्णय'[१] हिन्दी-काव्यशास्त्र का सुप्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमे पच्चीस उल्लास और बारह सौ दस पद्य हैं। काव्यशास्त्र के लगभग सभी विषयो का इसमे विवेचन है। अलंकार-प्रसग ग्रंथ मे तीन बार आया है। पहली बार तीसरे उल्लास मे, दूसरी बार आठवें से अठारहवें उल्लास तक और तीसरी बार बीसवे से इक्कीसवे उल्लास तक। इनके अलकार-निरूपण का आधार प्राय: 'कुवलयानन्द' है, लेकिन अलकारों को एक नवीन वर्गीकरण मे प्रस्तुत करने का श्रेय इन्ही को है। यह इनकी मौलिक देन है। हिन्दी रीतिकालीन आचार्यों मे केवल भिखारीदास ने ही इस प्रकार का प्रयत्न किया है। इनके अलकार-अनुशीलन की एक और विशेषता है चित्रालकार-निरूपण। इस प्रकार दास का हिन्दी-आचार्यों की परम्परा मे एक महत्वपूर्णस्थान है।

'काव्यनिर्णय' के रचनाकाल के आस-पास ही शम्भुनाथ मिश्र (प्रथम) का 'अलकारदीपक[२]' अधिकाश दोहो मे लिखा हुआ अलकार-ग्रंथ है। ये असोथर (जि० फतेहपुर) के राजा भगवतराय खीची के यहाँ रहते थे। 'अलकारदीपक' के उदाहरण अलकारो के अधिक न होकर अपने आश्रयदाता की ही प्रशसा मे हैं। तुलसीभक्त रसरूप का 'तुलसीभूषण'[३] भी अलंकार-ग्रंथ है। इसमे एक सौ ग्यारह अलकारों का वर्णन है।[४] अलकारो के लक्षणो के लिये 'काव्य-प्रकाश' और 'कुवलयानन्द' को आधार बनाया है।[५] उदाहरण तुलसी-साहित्य, विशेषरूपेण 'रामायण' से ही लिये गये है। इसी से पुस्तक का नाम 'तुलसीभूषण' रखा है।

पन्ना नरेश हिन्दूसिह के यहाँ रहने वाले कविरूपसाहि ने चौदह विलासो मे 'रूपविलास'[६] नामक काव्यशास्त्र-ग्रन्थ की रचना की। इसके बारहवें और तेरहवें विलास मे क्रमश: अर्थालकार और शब्दालकार का 'भाषाभूषण' की प्रणाली पर वर्णन है। 'भाषाभूषण' की ही शैली पर बैरीसाल ने भी 'भाषाभरण'[७] अलकारों पर

---

१ रचनाकाल सवत् १८०३।

२ रचनाकाल सवत् १८०६।

३ रचनाकाल सवत् १८११।

४ एकादस अरु एकशत मुख्य अलंकृत रूप ।। तुलसीभूषण ।।

५ सम्मत काव्यप्रकाश को और कुवलयानन्द ।। तुलसीभूषण ।।

६ रचनाकाल संवत् १८११।

७ रचनाकाल संवत् १८२५।

ग्रन्थ लिखा। इसका अलकार-विवेचन बहुत ही स्पष्ट, सुन्दर, सक्षिप्त एवं रोचक है। इसके उदाहरण बहुत ही रमणीय हैं। अलकार-वर्णन का आधार' कुवलयानन्द' है।[१] इन्होंने रसवत्, ऊर्जस्वि, भावसधि, भावसबलता आदि को अलकारो के अन्तर्गत परिगणित कर लिया है। काशी-निवासी गुजराती ब्राह्मण हरिनाथ का 'अलकारदर्पण'[२] अलंकारों का एक छोटा-सा ग्रन्थ है। इसके एक-एक छद के भीतर कई-कई उदाहरण भरे हुए हैं। वैसे साधारणतया लोगो ने एक अलकार की परिभाषा के पश्चात् उसका उदाहरण दिया है; किन्तु इन्होने ऐसा न करके पहले बहुत मे अलकारों के लक्षण लिख डाले हैं, तत्पश्चात् एक साथ उनके उदाहरण दिये है। रतन कवि का भी 'अलकारदर्पण'[३] नामक अलकार-ग्रन्थ है। इसके एक ही छद मे परिभाषा और उदाहरण दोनो ही दिये गये है। इसका अलकार-निरूपण विशद है तथा उदाहरण भी बहुत मनोहर और सरल है। किसी समय मे चरखारी के महाराज खुमानसिंह के दरबारी कवि दत्त ने 'लालित्यलता'[४] नामक एक अलकार की पुस्तक लिखी थी, जिससे वह बहुत अच्छे कवि प्रतीत होते है।

ऋषिनाथ की 'अलकार-मणि-मजरी'[५] दोहो मे लिखी हुई है। बीच-बीच मे धनाक्षरी, छप्पय आदि है। इसमे शब्दालकारो और अर्थालकारों दोनो का वर्णन है। एक अलकार के एक से अधिक उदाहरण दिये गये हैं।

जनराजकृत 'कविता रसविनोद'[६] काव्यशास्त्र के विविध विषयो पर प्रकाश डालने वाला ग्रथ है। इसमें अर्थालकारो को अधम काव्य के अन्तर्गत रक्खा गया है।[७] इसके अलंकार-निरूपण का बहुत कुछ आधार 'काव्यप्रकाश' है। महाराज रामसिंह ने 'कुवलयानन्द' के आधार पर 'अलकार-दर्पण'[८] लिखा। इसकी आलकारिक परिभाषायें बहुत ही संयत और सरल हैं। इन पुस्तको के अतिरिक्त सेवादास का

---

१ तेहि नारायण ईश को, करिमन माह स्मर्ण।
रीति कुवलयानन्द की, कीन्ही भाषाभर्ण॥ 'भाषाभरण'।

२ रचनाकाल सम्वत् १८२६।

३ रचनाकाल सम्वत् १८२७।

४ रचनाकाल सम्वत् १८३०।

५ रचनाकाल सवत् १८३१।

६ रचनाकाल संवत् १८३३।

७ अथ अधम काव्य वर्णन तासों अर्थालंकार कहत। कविता रसविनोद।

८ रचनाकाल संवत् १८३५।

'काव्याभरण', मानकवि का 'नरेन्द्रभूषण',[2] बेनीबदीजन का 'टिकैयतरायप्रकाश',[3] गुरदीन पाण्डे का 'वागमनोहर'[4] आदि ग्रथो की रचनायें हुई । इनमे से कुछ मे तो अलकारो के अतिरिक्त काव्यशास्त्र के अन्य विषयों का भी विवेचन किया गया है और कुछ में केवल अलकार वर्णन है । ये सभी ग्रंथ साधारण महत्व के है ।

जगतसिह के 'साहित्यसुधानिधि'[5] मे काव्यशास्त्र के अनेक विषयो का निरूपण किया गया . ग्रथ की छठवी और सातवी तरग मे शब्दालकारो और अर्थालकारों का वर्णन है । लक्षण तथा उदाहरण दोनो शिथिल है और दोनों का आधार 'चन्द्रालोक' है । काशीनरेश महाराज उदित नारायण सिह के छोटे भाई बाबू दीपनारायण सिह के आश्रित कवि ब्रह्मदत्त ने उनकी आज्ञा से सात प्रकाशो मे विभक्त 'दीपप्रकाश'[6] की रचना की । इसके तीसरे प्रकाश मे भावादि तथा शब्दालकार है और चतुर्थ मे अर्थलिकार है । सम्पूर्ण पुस्तक की रचना दोहो मे हुई है । एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों को ही रखने का प्रयत्न किया गया है । अलकार वर्णन 'चद्रालोक' के आधार पर साधारण ढग का है ।

वैरीसालकृत 'भाषाभरण' के आधार पर[7] कविवर पद्माकर का 'पद्माभरण'[8] अलकारों का ग्रथ है । 'भाषाभरण' के अनुकरण पर[9] पद्माकर ने अलकारो को तीन भागो मे विभक्त किया है—शब्दालकार, अर्थालंकार और उभयालकार, किन्तु इन तीनो प्रकार के अलकारों का वर्णन ग्रथ में नही है । 'पद्माभरण' मे

---

१ रचनाकाल सवत् १८४५ ।

२ रचनाकाल सवत् १८४५ ।

३ रचनाकाल संवत् १८४६ ।

४ रचनाकाल सवत् १८५८ ।

५ रचनाकाल सवत् १८६० ।

६ रचनाकाल सवत् १८६५ ।

७ पद्माकरपञ्चामृत का आमुख —सम्पादक प० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ।

८ रचनाकाल सवत् १८६७ ।

९ अ—कहु पद ते कहु अर्थ ते, कहू दुहुन ते जोइ ।
अभिप्राय जैसो जहाँ अलंकार त्यों होइ ॥
अलंकार यक ठौर मे जो, अनेक दरसाहिं ।
अभिप्राय कवि को जहाँ सो प्रधान तिन माहिं ॥
ज्यो ब्रज मे ब्रजबधुन की निकसति सर्जा समाज ।
मन की रुचि जापरभई, ताहि लखत ब्रजराज ॥ —भाषाभरण ।

दो प्रकरण हैं–अर्थालकार प्रकरण और पचदशअलकार प्रकरण । अर्थालाकार प्रकरण मे 'कुवलयानन्द' के आधार पर सौ अलकारो का विवेचन है। पचदश अलकार प्रकरण मे मतभेद वाले चार रसवत् आदि तीन भावोदय आदि तथा आठ प्रमाणालकारो का निरूपण है। ग्रथ के अन्तिम बारह दोहे संसृष्टि-सकर के लिये प्रयुक्त हुये है। 'पद्माभरण' के लक्षण और उदाहरणो मे कोई विशेषता नही है। यह एक सामान्य कोटि का ग्रन्थ है।

दतियानिवासी शिवप्रसाद का लिखा हुआ 'रसभूषण'[1] है। इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमे रस-विवेचन के साथ ही साथ अलकारो का भी वर्णन हुआ है। ठीक इसी प्रकार का वर्णन याकूबखा के 'रसभूषण' मे प्राप्त होता है। उन्होने भी नायिका-भेद के साथ अलकारो का वर्णन किया है। शिवप्रसादकृत 'रसभूषण' के अलकार-अनुशीलन का क्रम 'भाषाभूषण' के अनुसार है। अलकारो की परिभाषाओं मे कोई विशेषता नही है, किन्तु उदाहरण अवश्य रमणीय हुए है।

काशिराज महाराज चेतसिंह के पुत्र बलवानसिंह ने भाषा मे चित्र के अगाध समुद्र में थाह लेने के लिये सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, फारसी-साहित्य का अध्ययन कर 'चित्र-चन्द्रिका'[2] नामक विद्वतापूर्ण ग्रन्थ की रचना की। इसमे चित्र के तीन भेद किये गये है। शब्दचित्र, और उभयचित्र। शब्दचित्र तथा अर्थचित्र के क्रमश. सात और छ: भेदों का वर्णन है और अन्त मे सकर अर्थात् उभयालकार चित्र का वर्णन किया है। भाषा-टीका तथा चित्रों के कारण ग्रन्थ बहुत उपयोगी हो गया है। चित्र काव्य की दुरूहता को स्पष्टता एव सरलतापूर्वक समझने के लिए, चित्र-चन्द्रिका बहुत महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरधरदास ने दोहा छद मे 'भारतीभूषण'[3] नामक अलकार-पुस्तक की रचना की। इसमे अर्थालंकार सात का वर्णन करके दो शब्दालंकारों-अनुप्रास (छेक, वृत्ति, श्रुति, अन्त्य, लाट) और यमक (अखड, खड) का निरूपण किया गया। शब्दालकार के विस्तृत विवेचन से लेखक का

ब—सब्दहु ते कहु अर्थ ते, कहु दुहु ते उर आनि।
अभिप्राय जिहि भाँति जह, अलकार सो मानि॥
अलकार इक थलहि मे, समुझि परै जु अनेक।
अभिप्राय कवि को जहाँ, बहै मुख्य गति एक॥
जा विधि एकै महल मे, बहु मन्दिर इक मान।
जो नृप के मन मे रुचै, मनियत वहै प्रधान॥ —पद्माभरण।

१ रचनाकाल संवत् १८६६।

२ रचनाकाल संवत् १८८६।

३ रचनाकाल संवत् १८९०।

मौलिक चिन्तन ज्ञात होता है। सामान्यत: पुस्तक का आधार 'कुवलयानन्द' है। अलंकार की परिभाषाओं मे तो कोई विशेषता नही है, किन्तु उदाहरण अवश्य सरस है, जिनसे उनकी अच्छी कवित्वशक्ति का परिचय मिलना है।

रणधीरसिंह का 'काव्यरत्नाकर'[१] काव्यशास्त्र के अनेक अगों पर प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ है। इसकी रचना का आधार 'चन्द्रालोक' और 'काव्यप्रकाश' है। परिभाषाएं और उदाहरण स्पष्ट एव सुन्दर है। चित्रालकार का विशेष विवेचन है। ग्रन्थ में विषय-विवेचन सामान्य श्रेणी का है। पं० कृष्णबिहारी मिश्र के पिता पं० नन्दकिशोर मिश्र उपनाम लेखराज ने दोहो तथा कवित्तो मे 'गगाभरण'[२] नामक अलकारों पर एक पुस्तक लिखी। इसमे अलकारो को तीन भागो मे बाटा गया है– अर्थालकार, शब्दालकार और चित्रकाव्य। अर्थलकारो का वर्णन 'भाषाभूषण' के अनुसार है। शब्दालकार मे सभी अनुप्रासो का वर्णन है। चित्रकाव्य के छ: भेद किये गये हैं। पुस्तक के विवेचन मे कोई विशेषता नही है।

कविवर लछिराम ने गिद्धौर नरेश महाराज रावणेश्वर प्रसाद सिंह को प्रसन्न करने के लिए 'रावणेश्वर कल्पतरु'[३] की रचना की थी। इसके बारह कुसुमों मे काव्यशास्त्र के विविध विषयों का वर्णन है। दसवे कुसुम मे अर्थालकारो का तथा ग्यारहवें कुसुम मे शब्दालकार और भट्टाचार्य के मतानुसार चित्रालकारो का वर्णन है। वैसे लक्षण और उदाहरण स्पष्ट है, किन्तु कही-कही लक्षण और उदाहरण अशुद्ध एवं[४] अनुपयुक्त है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त लछिराम का 'रामचन्द्र भूषण' नामक एक अलकार-ग्रन्थ है। इसके लक्षण दोहो मे और उदाहरण कवित्त सवैयो आदि मे हैं। इसमे ९८ अर्थालकार और एक शब्दालकार अनुप्रास का वर्णन है। अर्थालकारों का विवेचन प्राय. 'भाषाभूषण' के आधार पर है। उदाहरण सभी रामभक्ति विषयक हैं। लक्षणो मे कोई विशेषता नही है और उदाहरणों मे कोई चमत्कार नही है।

बूंदी नरेश महाराज रघुवीरसिंह की आज्ञानुसार कविराज गुलाबसिंह ने 'वनिताभूषण'[५] नामक ग्रन्थ की रचना की। इसमे अलकारो का और नायिका-भेद का वर्णन साथ-साथ किया गया है। यह कोई अपूर्व विवेचन नही है। इसके पूर्व याकूब खाँ ने अपने 'रसभूषण' मे अलकार और रस का साथ-साथ निरूपण किया है। 'वनिताभूषण' के अलंकार-विवेचन का बहुत कुछ आधार 'कुवलयानन्द' है।

---

१ रचनाकाल संवत् १८९७।

२ रचनाकाल संवत् १९३५।

३ रचनाकाल संवत् १९४७।

४ रचनाकाल संवत् १९४७।

५ रचनाकाल संवत् १९४९।

मरुधराधीश महाराज जसवंतसिंह के प्रसन्नतार्थ राज्यकवि कविराज मुरारिदान ने 'जसवंतजशोभूषण'[1] नामक ग्रन्थ की रचना की। कविराज ने सुब्रह्मराय शास्त्री की सहायता से इसका सस्कृत अनुवाद भी 'यशवंतयशोभूषण' के नाम से किया। 'जसवतजशोभूषण' में काव्यस्वरूप, शब्दशक्ति, गुणरीति, अलकार आदि का विवेचन है, किन्तु ग्रन्थ मे अलकारो की ही प्रधानता है। कविराज ने ग्रन्थ की प्रस्तावना में लिखा है कि 'राजराजेश्वर की आज्ञानुसार मैंने नवीन ग्रन्थ-निर्माण का आरम्भ करके विचार किया कि संस्कृत और भाषा मे अलकारो के ग्रन्थ अनेक हैं, पिष्टपेषण तो व्यर्थ है। कोई नवीन युक्ति निकालनी चाहिए कि जिससे विद्वानों को इस ग्रन्थ के अवलोकन की रुचि होवे और विद्यार्थियो को इस ग्रन्थ के पढने से विलक्षण लाभ होवे'। कविराज के कथन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रंथ-रचना मे उनका उद्देश्य विलक्षणता का प्रदर्शन करना है। उनके ग्रन्थ की विलक्षणता क्या है? यह उन्ही के शब्दों मे देखिये कि अलकारो के नामो मे ही लक्षण है। इस रहस्य को आज तक किसी साहित्याचार्य ने नही समझा अर्थात् इस रहस्य पर प्रथम प्रकाश डालने वाले हम ही हैं। कविराज के अनुसार 'प्राचीनों को यह बात ज्ञात ही न थी कि अलंकारों के नामार्थ मे ही लक्षण है, और उन्होंने व्युत्पत्ति नही लिखी। 'अन्यथा' यदि प्राचीनों को उक्त बात का ज्ञान होता तो वे लक्षणो का निर्माण ही क्यों करते।' इस प्रकार मुरारिदान जी ने सस्कृत-हिन्दी के समस्त आचार्यो को अनभिज्ञ घोषित कर दिया है, किन्तु कविराज स्वयं ही अलकारो के नाम की व्युत्पत्ति से अपनी व्याख्या द्वारा लक्षण निकालने मे समर्थ नही हुए है। प्राय लक्षण अस्पष्ट ही रहे है। लेखक को इस प्रकार के विलक्षणता-प्रदर्शन की प्रेरणा जयदेवकृत 'चन्द्रालोक' की 'स्यात्स्मृतिभ्रान्तिसदेहैस्तदाडालकृतित्रयम्' कारिका से प्राप्त हुई। यह कथन केवल इन्ही तीन अलकारों के लिये उपयुक्त है, सभी अलंकारो के लिये नही। इन्हीं तीनों के लिए इस प्रकार का उल्लेख हिन्दी-आचार्यों ने भी किया है।[2] यदि सभी अलंकारो के लक्षणनाम से स्पष्ट हो जाते, तो जयदेव केवल स्मृति, भ्रान्ति और सदेह के विषय मे ही ऐसा न कहते, अन्य अलंकारों की भी व्याख्या उन्हीं के नामों द्वारा करते, पृथक् लक्षण न प्रस्तुत करते।

'जसवतजशोभूषण' मे एक शब्दालकार और अस्सी अर्थालकारो का निरूपण है। अर्थालंकारो के क्रम मे विलक्षणता है। उनमे 'उपमा अति प्रसिद्ध है, इसलिए उपमा को प्रथम कह कर फिर वर्णमालाक्रम से दूसरे अलंकार वर्णित है। उपमा-

---

१ रचनाकाल संवत् १९५०।

२ अ—सुमिरन, सुमृति, सुभ्रान्ति, भ्रम बिन निश्चय सदेह।
निश्चय बिन सदेह, ये जानि नाम.ते लेह॥ 'देव'।
(ब) सुमिरन भ्रम संदेह को, लच्छन प्रकटै नाम॥ 'दास'।
(स) लच्छन नाम प्रकास है, सुमिरन, भ्रम, संदेह॥ 'दास'।

लंकार के नाम की व्युत्पत्ति से व्याख्या द्वारा लक्षण निकालते हुए लिखा है कि यहाँ 'उप' उपसर्ग का अर्थ है समीप, कहा है चिन्तामणिकाशकार ने उपसामीप्ये। 'माङ्धातु से 'मा' शब्द बना है। माङ्धातु मान अर्थ में कहा है धातु पाठ मे 'माङ्-माने'। मान, मिति और विज्ञान मे पर्याय शब्द हैं। 'उप समीप्यात मा मानं उपमा'। अर्थ समीपता करके किया हुआ मान अर्थात् विशेषज्ञान। एक वस्तु के समीप करने से तीन प्रकार का निर्णय होता है, न्यूनता का अधिकता का और समता का। सो वर्णनीय की न्यूनता, तो मनोरजनहीनता विहीन होने से इस शास्त्र में अग्राह्य है, अधिकता व्यतिरेक अलंकार का विषय है। समनिर्णय उपमा अलंकार की रूढ़ि है। इस प्रकार उपमा शब्द योगरूढ है। उपमा नाम अक्षरार्थ का विचार नहीं करते हुए समस्त प्राचीन उपमा का स्वरूप साधर्म्य मानते है सो भूल हैं।' इस सिद्धान्त के अन्तर्गत सभी सादृश्यमूलक अलकार आ जाते है, क्योकि उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक मे भी तो समनिर्णय होता है। उपमा की इसी प्रकार की व्याख्या आचार्य वामन ने की है। मम्मटाचार्य ने 'काव्यप्रकाश' के अलकार-प्रकरण मे बहुत से अलकारों के नामार्थ की व्युत्पत्ति करके लक्षण मे समन्वय समझाया है।

अनुप्रास अलकार को समझाते हुए कविराज ने लिखा है "अनु = वीप्सा, अनेक बार। प्र = प्रकृष्ट, उत्तम। आस = न्यास, धरना। बारम्बार उत्तम धरना। अर्थ के बारम्बार धरने मे पुनरुक्तिदूषण होता है, उसमे विपरीतभाव अर्थात् भूषण का बोध कराने के लिए इस नाम मे 'प्र' उपसर्ग लगाया है। यहाँ काव्य के अलकारो का प्रकरण है और काव्य मे शब्द-अर्थ ये दो ही वस्तु होती है, सो अर्थ का बारम्बार धरना तो दूषण है उत्तम नही। इससे और शब्दालकार प्रकरण से, यहाँ शब्द बारम्बार धरना अर्थसिद्ध है।" कविराज की इस व्याख्या मे प्रथम तो अर्थ की आवृत्ति मे दूषण ही विचित्र लगता है, क्योकि सम्भवत. किसी आचार्य ने इस प्रकार का उल्लेख नही किया है और द्वितीय पुनरुक्तप्रकाश तथा वीप्सा अलकारो मे भी आवृत्ति होती है। इसी अतिव्याप्ति-दोष परिहारार्थ तो आचार्यों ने अलंकारो की स्पष्ट परिभाषाएँ लिखी है।

मुरारिदान जी ने वक्रोक्ति अलकार के नामार्थ लक्षण की इस प्रकार व्याख्या की है—"वक्र शब्द का अर्थ है कुटिल, इसका पर्याय है बाँका, टेढा इत्यादि। वक्रोक्ति नाम की व्युत्पत्ति है वक्रीकृता उक्ति। बाकी की हुई उक्ति वह वक्रोक्ति। उक्ति का बाँका करना तो पर की उक्ति का ही होता है। परोक्ति का बाँका करना तो यह है कि वक्ता के विवक्षित अर्थ मे अन्य अर्थ करना। वक्रोक्ति मे कही श्लेष होता है, परन्तु यह गौण होता है, वक्रोक्ति की प्रधानता होती है। 'निरुक्ति' अलंकार मे भी अन्यार्थ होता है; परन्तु वहाँ तो अपनी इच्छा के अनुसार प्रकृतार्थ लगाय लेना मात्र है, यहाँ तो पर की उक्ति को वक्र करना है इसलिए महान् विलक्षणता है।" इतनी व्याख्या करने के बाद कविराज ने लिखा है—

"वक्र करन पर उक्ति को नृप वक्रोक्ति निहार।
स्वर-विकार श्लेषादि सो होत जु बहुत प्रकार।।"

कविराज मुरारिदान जी ने "वक्रोक्ति के नाम का अर्थ करते हुए जो यह लिखा कि 'उक्ति का बाका करना पर की उक्ति का ही होता है।' यह अर्थ वक्रोक्ति के नाम में कहाँ से निकल सकता है। उक्ति का बाँका करना केवल परोक्ति मे ही हो सकता है इसमे प्रमाण ही क्या ? क्योंकि वक्ता अपनी उक्ति को भी वक्र कह सकता है जैसे—'अधसुत कौरवन सार शत बधुन को' इत्यादि पद्य मे भीमसेन ने स्वय काकु द्वारा वक्रोक्ति की है। वह भी वक्रोक्ति है। किन्तु पूर्वाचार्यो ने लक्षण द्वारा 'वक्तोक्ति' अलकार को एक विशेष अर्थ मे (अर्थात् वक्ता का किसी अन्य द्वारा अन्यार्थ कल्पना किये जाने मे) सीमाबद्ध कर दिया है, अतएव पूर्वोक्ति 'अध-सुत कौरव' इत्यादि मे जो स्वउक्ति मे वक्र-उक्ति होती है, वह वक्रोक्ति अलकार का विषय नही; किन्तु गुणीभूतव्यंग्य का विषय है। पर जब वक्रोक्ति के नामार्थ से स्वउक्ति और परोक्ति दोनो का ही बोध हो सकता है तब कविराज जी के 'नामार्थ ही लक्षण' के सिद्धात अनुसार तो 'अधसुत कौरव' पद्य मे उनको अवश्य ही वक्रोक्ति अलकार मानना पडेगा। किन्तु ऐसा मानने मे उनके 'नामार्थ ही लक्षण' के सिद्धात मे अतिव्याप्तिदोषवलात् आ जाता है, क्योंकि 'काकुध्वनि' के ऐसे उदाहरणो मे भी वक्रोक्ति होती है। उनका यह कहना कि हमारे नामार्थ लक्षण के सिद्धात मे अतिव्याप्ति दोष नही है, केवल मन-मोदक का आस्वादन मात्र है। उक्त विवेचना से स्पष्ट सिद्ध होता है कि 'अतिव्याप्ति' आदि दोषो के परिहार के लिये 'लक्षण' का निर्माण अनिवार्यत अपेक्षित है। एतावता यह भी सिद्ध होता है कि 'पर की उक्ति' यह वाक्य कहे बिना लक्षण की सागता नही हो सकती, इसीलिए कविराज जी को 'पर की उक्ति' जो नामार्थ मे बोध नही होती है, अगत्या ऊपर से नामार्थ से अधिक कहना पडा है। 'नामार्थ मे लक्षण' के सिद्धात का समर्थन तो उसी अवस्था मे समझा जा सकता था जब कि केवल नाम के अर्थ मे ही अलकार का यथार्थ-स्वरूप वे दिखा सकते। खेद है कि वे अपने कल्पित सिद्धात को निराधार युक्तियों से अशत भी सिद्ध करने मे कृतकार्य नही हुए और उनकी—

भोजसमय निकसी नही भरतादिक की भूल।
सो निकसी जसवतसमय भवे भाग्यअनुकूल।।

---

१ अध-सुतकौरवन सारे शत-बन्धुन को, ह्वै के क्रुद्ध-मत्त हैं न युद्ध मे पछारो ना। करिकै कबध ताहि रध्र सो जु पीवे काज, दु शासन उरहू सो रक्त को निहारो ना। मारौ न सुयोधन हू बिदारौना उरु और, मेरी वा प्रतिज्ञा की अवज्ञा विचारौ ना। करो क्यो न सध पांच ग्रामन प्रबधरूप, भूप वो तिहारो है न चारो हो निवारो ना।

वेणीसहारनाटक—अनुवाद।

यह गर्वोक्ति एक विचारशून्य दुःसाहस मात्र रह गई[1]।" बहुत से ऐसे अलंकार हैं, जिनके नामों से उनका बहुत कुछ लक्षण व्यक्त होता है, किन्तु अलंकार के विशिष्ट अर्थ में उनका वास्तविक रूप क्या है, यह नहीं प्रकट होता। अलंकार के इसी वास्तविक स्वरूप को समझाने के लिए आचार्यों ने अलंकारों को परिभाषा-बद्ध किया है।

अस्सी अर्थालंकारों में से कविराज ने कतिपय नवीन अलंकारों की उद्भावना करने का प्रयत्न किया है—अतुल्ययोगिता, अनवसर, अपूर्वरूप, अप्रतीक, आभास, नियम, प्रतिभा, मिष, संकोच आदि। इनमें से कुछ तो आचार्यों द्वारा निरूपित अलंकारों के विलोम हैं और कुछ में कोई काव्य-सौंदर्य ही नहीं दृष्टिगत होता। इसी प्रकार उन्होंने उपमा के दस भेद माने हैं। उनमें कुछ नवीन भेद दिखलाई पड़ते हैं, किन्तु ध्यानपूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि कुछ भेद तो अन्य अलंकारों का ही रूप धारण कर बैठे हैं। यथा विपरीतोपमा प्रतीप है। निरोपमा अनन्वय है और किसी-किसी में कोई अलंकारत्व ही नहीं है। इसके अतिरिक्त कविराज ने छठवीं आवृत्ति अन्तर्भावित्रुति में अठारह अलंकारों का अन्य अलंकारों में अन्तर्भाव दिखलाया है। इसमें भी उन्होंने अपनी विलक्षण बुद्धि का प्रयोग किया है। कविराज चित्रकाव्य में शब्दालंकारता नहीं स्वीकार करते। चित्र काव्य का आधुनिक युग में कोई महत्व नहीं है। आजकल इस प्रकार का बुद्धि-व्यायाम व्यर्थ समझा जाता है। अलंकारों के अतिरिक्त मुरारिदान जी ने रसवदादि, भावोदयादि, प्रमाण तथा संसृष्टि-संकर अलंकारों का पृथक् विवेचन किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविराज मुरारिदान जी के अलंकारों के विलक्षण विवेचन से काव्यशास्त्र को कोई लाभ नहीं हुआ। हाँ, उन्हें अवश्य लाभ हुआ कि राज्य की ओर इस कृति के पुरस्कार-स्वरूप-पुष्कलधन और मान मिला।

दासापुर बलदेवनगर निवासी (जि० सीतापुर) पण्डित गंगाधर उपनाम द्विजगंग ने महाराज महेशबख्श की आज्ञानुसार 'माहेश्वरभूषण'[2] नामक ग्रंथ की रचना की। इसमें पाँच उल्लास हैं। तीसरे उल्लास में अलंकारों का वर्णन किया गया है और पाँचवें में चित्रकाव्य का। अलंकार-विवेचन में 'चन्द्रालोक' और 'कुवलयानन्द' का प्रभाव परिलक्षित होता है। यत्र-तत्र मम्मट और कैयट के नामों का भी उल्लेख हुआ है। यह रचना गद्ययुगीन होते हुए भी विषय-विवेचन की दृष्टि से मध्यकालीन है, क्योंकि तत्कालीन शैली का इसमें अनुकरण किया गया है। लक्षण दोहों में और उदाहरण कवित्त, सवैयों आदि में हैं। लक्षण अस्पष्ट हैं और उदाहरणों में भी मध्यकालीन सरसता का अभाव है।

---

१ काव्यकल्पद्रुम—सेठ कन्हैयालाल पोद्दार।

१ रचनाकाल संवत् १९५२।

सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने 'जसवतजशोभूषण' की रचना के तीन वर्ष पश्चात् 'अलकारप्रकाश'[1] लिखा। बाद मे 'अलकारप्रकाश' को ही परिवर्द्धित और सशोधित कर ध्वनि-विमर्श सहित 'काव्यकल्पद्रुम'[2] नामक ग्रथ प्रकाशित कराया। इसी पुस्तक के अलकार-प्रकरण का परिवर्धित रूप 'अलकारमजरी'[3] है। इसमे काव्य का स्थान, अलकार क्या हैं, अलकारो के नाम तथा लक्षण, संस्कृत साहित्य के प्राचीन अलकार-ग्रथ, अलकारो का क्रमविकास और हिन्दी-साहित्य मे अलकार-ग्रथ विषयो का बिवेचन किया है। ग्रथ मे आद्यन्त विवेचन सस्कृत-साहित्यशास्त्र के आधार पर है। बीच-बीच मे अनेक आचार्यो के विचारो की आलोचना भी की गई है। कविराज मुरारिदान के मत का भी खण्डन किया है। अपने मत को अत्यधिक महत्व देने के कारण पोद्दार जी की आलोचना मे आलोच्य के प्रति अपेक्षित सहानुभूति नही आ पाई है।

सर्वप्रथम छ: शब्दालकारो का वर्णन किया गया है—वक्रोक्ति, अनुप्रास,यमक, श्लेष, पुनरुक्तवदाभास और चित्रालकार। तत्पश्चात् सौ अर्थालकारो का वर्णन है। इन दोनो के अनन्तर ससृष्टि-सकर का नि पण है। इसके पश्चात् अलकार-दोषों की विवेचना है। दोष तो सभी अलकारो मे हो सकते है, किन्तु लेखक ने कुछ ही अलकारों के दोषो पर बिचार किया है। ग्रथ मे अलकार-वर्णन और बहुत कुछ क्रम भी 'काव्यप्रकाश' के आधार पर है। हिन्दी के अलकार-ग्रथो मे अलकारमजरी का एक विशिष्ट स्थान है। इसमे प्रत्येक अलकार का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भेद दिखलाया गया है। यहाँ तक कि किसी-किसी अलकार के भेद-प्रभेदो को देख कर बुद्धि चकराने लगती है। उदाहरणार्थ श्लेष के अन्तिम उपभेद है—प्रकृत-मात्र-आश्रित-श्लिष्ट-विशेष्य-समग-श्लेष या अप्रक्रयमात्र-आश्रित-श्लिष्ट-विशेष्य-अभग-श्लेष'। अलकारो की परिभाषाये गद्य मे है और वे सभी स्पष्ट तथा शुद्ध है। उदाहरण अवश्य सभी सुन्दर नही है। पोद्दार जी के उदाहरण तीन प्रकार के है।

(१) स्वरचित,

(२) अनूदित और

(३) अन्यरचित।

इस प्रकार हम देखते है 'अलकारमजरी' का विषय-प्रतिपादन बहुत ही शास्त्रीय और पाण्डित्यपूर्ण है। निस्सदेह, यह हिन्दी के प्रथम श्रेणी के ग्रंथो मे है।

---

१ रचनाकाल सवत् १९५३।

२ रचनाकाल सवत् १९८०।

३ रचनाकाल संवत् २००२।

जगन्नाथ प्रसाद 'भानु' का 'काव्यप्रभाकर'[१] काव्यशास्त्र का एक वृहद्ग्रंथ है। इसके बारह मयूखो मे काव्यशास्त्र के लगभग सभी विषयो का प्रतिपादन प्रस्तुत किया गया है। ग्रथ के नवम् मयूख मे अलकार-वर्णन है। भानु जी ने अलकार के तीन भेद माने है—

(१) शब्दालकार,
(२) अर्थालंकार और
(३) उभयालकार।

शब्दालकार आठ है—पुनरुक्तवदाभास, यमक, वक्रोक्ति, भाषासमक, श्लेष प्रहेलिका तथा चित्र। इन अलकारो के विवेचन मे 'काव्यप्रकाश' और 'साहित्यदर्पण' से सहायता ली गई है। 'कुवलयानन्द' के अनुकरण पर सौ अर्थालकारो का वर्णन है। अर्थालकार-निरूपण मे 'कुवलयानन्द' के अतिरिक्त 'चन्द्रालोक' और 'साहित्यदर्पण को' भी आधार बनाया गया है। उभयालकारो मे ससृष्टि और सकर का वर्णन है। अन्त मे चार शब्दालकार-दोष और नौ अर्थालकार-दोषो को समझाया गया है। उभयालकारो के अन्तर्गत 'न्यायदर्पण' है। इसमे छत्तीस न्यायो का वर्णन है जिनका प्राय: काव्य मे प्रयोग किया जाता है। यथा अरण्यरोदन, क्षीरनीर, तिलतंदुल आदि।

अलंकार—वर्णन मे प्रथम अलंकार का नाम, फिर सस्कृतलक्षण, भावार्थ और अन्त मे एक नही अनेक उदाहरण दिये गये हैं। ग्रथकार का उद्देश्य किसी विलक्षणता या मौलिकता का प्रदर्शन करना नही रहा है। केवल अलकार ही नही अपितु समस्त काव्यशास्त्र को स्पष्ट एव रोचक शैली मे समझाना लक्ष्य रहा है।[२] इसीलिये लेखक ने सूचना, प्रश्नोत्तर और फुटनोट द्वारा प्रत्येक शका का समाधान कर विषय को बिलकुल स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है और लेखक को इसमे पर्याप्त सफलता मिली है। विषयनिरूपण "ऐसी सरल और स्पष्ट भाषा मे किया गया है कि पढते ही विषय हृदयगम हो जाता है, अन्त मे उदाहरण यथासाध्य रामायणादि सद्ग्रन्थो मे ललित और सुन्दर खोज-खोज कर लिखे गये है।" कही गद्य मे भी उदाहरण दिये गये है। उदाहरण—बहुलता काव्य-प्रभाकर की सर्वप्रमुख विशेषता है।

---

१ रचनाकाल सवत् १९६६।

2 My only justification for such a venture is that though many books on rhetoric exist in Hindi, yet their treatment of the subject is mostly loose and intricate and further that none of them deals comprehensively with all the various branches of the subject.

—काव्यप्रभाकर की अंग्रेजी प्रस्तावना।

काव्यप्रभाकर के अलंकार–प्रकरण के लक्षणों और उदाहरणो मे कोई मौलिकता नही है, किन्तु 'भानु' जी ने विनम्र विद्वता द्वारा जिस शैली मे आवश्यक सामग्री को जुटाया है, वह अवश्य ही मौलिक है। उससे उनकी सारग्राहिणी बुद्धि का परिचय प्राप्त होता है। 'भानु' जी का 'काव्यप्रभाकर' साहित्यकारो के लिए एक बहुत उपयोगी ग्रन्थ है और हिन्दी-काव्यशास्त्र की परम्परा मे उसका एक विशेष महत्व है।

अलंकारो के लिये लाला भगवानदीन 'दीन' की 'अलंकारमजूषा'[1] विद्यार्थियों की परमप्रिय पुस्तक है। इसका अलंकारवर्णन चार पटलो मे विभक्त है। प्रथम मे शब्दालंकार द्वितीय मे अर्थालंकार, तृतीय मे उपमालंकार और चौथे मे अलंकार-दोष-निरूपण है। 'दीन' जी रसवदादि अलंकारो को मानते नही है।

संस्कृत के प्रत्यक्ष प्रभाव से दूर 'दीन' जी ने अलंकारो के लक्षण दोहो मे और उदाहरण हिन्दी-कवियो के दिये है, स्वरचित नही। लक्षण सभी शुद्ध और स्पष्ट है। जहाँ अलंकारलक्षण दोहे मे नही स्पष्ट हो पाया है, वहाँ उसकी व्याख्या गद्य मे कर दी गई है। भानु' जी की भाँति गद्य मे भी उदाहरण दिये गये है। अलंकारो के भेद को स्पष्ट करते हुये हिन्दी के साथ–साथ यत्र–तत्र अंग्रेजी और फारसी के सदृश-अलंकारो को भी दिया है। शब्दालंकारो के अन्तर्गत अनुप्रास, चित्र, पुनरुक्तिप्रकाश, पुनरुक्तिवदाभास, प्रहेलिका, भाषासमक, यमक, वक्रोक्ति, वीप्सा और श्लेष नामक दस अलंकारों को लिया है। एक सौ आठ अर्थालंकारो का विवेचन है। उभयालंकारों मे ससृष्टि सकर का वर्णन है। स्मरण, उत्प्रेक्षा, क्रम, वक्रोक्ति, अत्युक्ति और तिरस्कार अलंकारो की परिभाषाओ मे 'दीन' जी की मौलिकता दिखाई पड़ती है। इस मौलिकता मे विलक्षणता नही औचित्य और उपयोगिता है। 'अलंकारमजूषा' के उदाहरण सभी रोचक है। कतिपय उदाहरण लक्षणो के अनुपयुक्त है, जैसे तद्रूपरूपक, अत्यतातिशयोक्ति आदि के।

अलंकार-दोष-निरूपण मे अनुप्रास के मुख्य तीन दोष और यमक का एक दोष दिखलाया गया है। अर्थालंकारो मे उपमा के नौ, समासोक्ति का एक, अन्योक्ति का एक और उत्प्रेक्षा के दो दोष दिखलाए गये है। 'अलंकारमजरी' से अधिक सरल और सुगम 'काव्यप्रभाकर' है, किन्तु इससे भी अधिक सुबोध 'अलंकारमजूषा' है। अपनी स्पष्टता और सरलता के ही कारण 'अलंकारमजूषा' आज भी अलंकारो के लिये हिन्दी-जगत् की सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक है।

अनुसधान के रूप मे डी० लिट्० उपाधि के लिए केवल अलंकारो पर ही अध्ययनपूर्ण प्रबन्ध प्रस्तुत करने का श्रेय डा० रामशकर शुक्ल 'रसाल' को है। यह

---

१ रचनाकाल सवत् १९७३।

प्रबन्ध फुलस्केप साइज के टाइप किए हुए लगभग डेढ सौ पृष्ठों मे अंग्रेजी मे लिखकर 'इवोलूशन आफ हिन्दी पोयेटिक्स' के नाम से प्रयाग विश्वविद्यालय मे प्रस्तुत किया गया था। बाद मे इसी के आधार पर हिन्दी म 'अलकारपीयूष'[1] लिखा गया। 'रसाल' जी के शोध-प्रबन्ध पर महामहोपाध्याय डा० गगानाथ झा और डा० धीरेन्द्र वर्मा ने बहुत ही प्रशंसापूर्ण अभिमत अभिव्यक्त किये थे।[2] 'अलकारपीयूष' दो भागो मे है। प्रथम भाग मे 'काव्यालकार का विषय-शास्त्र है या कला', काव्यालकारशास्त्र के वर्ण्यविषय, काव्यशास्त्र के ग्रन्थो का विभाग, काव्यालकारशास्त्र की परिभाषा, अलकार की परिभाषा, काव्य में उनका स्थान, गद्य मे उनका स्थान, अलकारशास्त्र का इतिहास, हिन्दी-अलंकारशास्त्र का इतिहास, अलकारो की सख्या एव विकास (हिन्दी-आचार्यो द्वारा), वर्गीकरण और मूलतत्व, हिन्दी के आचार्यों का मत आदि विषयों का विद्वतापूर्वक विवेचन किया गया है। इन विषयो के पश्चात् शब्दालकार, रसालकार, भावालंकार और कुछ अर्थालंकारो का निरूपण है। अलकारपीयूष के द्वितीय भाग मे अवशेष अर्थालंकारो का विवेचन है।

रसाल जी ने काव्यालंकार को शास्त्र और कला दोनो मानते हुये अलकार का मूलाधार 'वैलक्षण्य' स्वीकार किया है तथा रस-भावादि की प्रमुखता नाटको मे मानी है, काव्य मे नही। इसीलिये काव्यशास्त्र के ग्रन्थो मे अलंकार ही प्रधानतत्व है। इस प्रकार की विचारधारा से प्रतीत होता है कि रसाल जी भामह, दण्डी आदि पूर्वाचार्यों के अनुयायी हैं। रसाल जी का उक्त सिद्धान्त उपयुक्त नही है। इसीलिए उन्होने भी ग्रथ मे आगे चल कर सौन्दर्य के दो रूपो—अन्तरग और बहिरग का विवेचन करते हुए काव्य मे अलंकारो का गौणत्व स्थापित किया है और वास्तविकता भी यही है।

'अलकारपीयूष' मे सस्कृत-हिन्दी के अलकारशास्त्र का सक्षिप्त इतिहास दिया है, जिसमे हिन्दी का तो बहुत ही सक्षिप्त है और अपूर्ण भी। सस्कृत और हिन्दी के आचार्यों द्वारा अलकारो की सख्या मे किस प्रकार वृद्धि हुई इस पर भी प्रकाश डाला है। अलकारो के वर्गीकरण के प्रयत्न के अध्ययन और आलोचना के अतिरिक्त प्रत्येक अलकार के लक्षण और उसके तत्वो के सूक्ष्म विवेचन के साथ उसके विकास का इतिहास भी प्रस्तुत किया गया है। 'रसाल' जी ने अलंकारों के नवीन वर्गीकरण और कतिपय

---

१ रचनाकाल सवत् १९८५।

2 The thesis though short is learned and original
—Mahamahopadhyay Dr. Ganga Nath Jha.

It is a very valuable contribution to the subject of Kavyalankershastra—in which no critical and scientific work exists as yet. Dr. Dhirendra Varma.

नूतन अलंकार भी बतलाये है। अलंकारो का विवेचन गद्य मे किया है और उदाहरण स्वरूप बहुत कम पद्य दिये है। अत ग्रन्थ परिचयात्मक की अपेक्षा विश्लेषणात्मक अधिक है। 'रसाल' जी ने भी पोद्दार जी की भाति स्वरचित उदाहरण दिये हैं जो बहुत सुन्दर नही है।

'अलंकार पीयूष' की कुछ अपनी विशेषताएँ हैं, जो हिन्दी के अन्य अलंकार-ग्रन्थो मे नही है। अलंकार-अनुशीलन का सर्वांगीण इतिहास प्रस्तुत करने वाला यह ग्रथ हिन्दी-साहित्य मे अनुपम है। यद्यपि 'रसाल' जी के अलंकार विषयक सभी विचार मान्य नही है और आज के युग मे तो और भी अधिक मतभेद है, फिर भी जिस विद्वता से 'अलंकार पीयूष' की रचना हुई है, वह अवश्य स्तुत्य है। हिन्दी-जगत् मे अभी तक इस प्रकार का अध्ययनपूर्ण अलंकार-विषयक ग्रंथ नही लिखा गया है।

अर्जुनदास केडिया का 'भारतीभूषण'[1] अलंकारों पर सुन्दर, शुद्ध एवं रोचक ग्रथ है। अलंकारो के लक्षण गद्य मे शुद्ध और स्पष्ट है। उदाहरण आधे स्वरचित और आधे हिन्दी-कवियो के है। केडिया जी ने आठ शब्दालंकार माने है। अनुप्रास-वर्णन मे उत्तमचन्द भडारी के अलंकार-आशय के आधार पर वैणसगाई अलंकार का भी उल्लेख किया है। चित्रालंकार का विस्तारपूर्वक वर्णन है। अलंकार-विवेचन मे लेखक ने कहीं-कही स्वतन्त्र बुद्धि से भी कार्य लिया है। इस प्रकार केडिया जी का 'भारती-भूषण' एक सुन्दर रचना है।

विनावर के राजकवि बिहारी भट्ट का 'साहित्यसागर'[2] पन्द्रह तरगो मे विभक्त काव्यशास्त्र का एक विशाल ग्रथ है। दसवें, ग्यारहवें और बारहवें तरंग मे अलंकार-वर्णन है। भट्ट जी ने तीन प्रकार के अलंकार माने है—शब्द, अर्थ और उभय। अकारादि क्रम से दस शब्दालंकारो का वर्णन है। चित्रलंकार के अन्तर्गत अग्न्यस्त्रबध, व्याघ्रबध आदि कतिपय नवीन भेद प्रस्तुत किये है। अर्थालंकारों मे कोई क्रम नही प्रतीत होता। इसके पश्चात् ससृष्टि और सकर दो अलंकारों का निरूपण है। पद्यो मे लक्षण सामान्य है और उदाहरणो मे कोई चमत्कार नही है।

मिश्र-बन्धुओ का 'साहित्यपारिजात'[3] काव्यशास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रथ है। इसमे अलंकारो का विद्वतापूर्ण विवेचन किया गया है। सभी मिला कर एक सौ चौबीस अलंकारो का वर्णन है। प्रतीप, व्यतिरेक, रूपक, भ्रांतिमान, सन्देह, भ्रान्तापन्हुति और वक्रोक्ति अलंकारो के निरूपण मे नवीनता है। मिश्रालंकार के

---

१ रचनाकाल सवत् १९८७।
२ रचनाकाल सम्वत् १९९४।
३ रचनाकाल सम्वत् १९९७।

विषय मे 'रसाल' जी का कथन है कि जब एक ही प्रकार के दो अलंकार एक साथ मिल कर ऐसी एकरूपता धारण कर लेते है कि वे पृथक् नही किये जा सकते, यद्यपि दोनों की सत्ता प्रत्यक्ष तथा स्पष्ट दीखती है, तब मिश्रालंकार की उपस्थिति वहाँ मानी जाती है, किन्तु मिश्रबन्धुओ का कहना है कि मिश्रालंकार मे दोनो प्रकार के या एक ही भाँति के एकाधिक अलंकार मिले रहते है। इस प्रकार हम देखते हैं कि 'साहित्यपारिजात' के अलंकार-विवेचन म पर्याप्त मौलिकता है। विषय-प्रतिपादन की यह प्रौढता लेखको के आचार्यत्व के अनुरूप है।

स्वर्गीय पण्डित रामदहीन मिश्र का 'काव्यदर्पण'[१], काव्यशास्त्र का एक अध्ययनपूर्ण ग्रंथ है। इसके बारह प्रकाशो मे शब्दशक्ति, रस, ध्वनि, गुण, रीति, अलंकार आदि विषयो का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। ग्रंथ के ७४ पृष्ठो की भूमिका समस्त निरूपित विषय का सार-सचयन-सी है। मिश्र जी ने "प्राच्य तथा पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की विवेचना को सम्मिलित रूप से अपना कर दोनो दृष्टिकोणो को देखकर ही कविता का स्वाद लेने का प्रयास किया है अर्थात् प्राचीन विषय को नवीन शब्दावली मे नवीन दृष्टिकोण से समझाने का प्रयत्न किया है।" मिश्र जी का कहना है कि "पुस्तक को प्रस्तुत करने मे पाश्चात्य समीक्षा से भी लाभ उठाया है, फिर भी संस्कृत आचार्यों के आकर ग्रंथो को ही मूलाधार रक्खा है, क्योकि पाश्चात्य विचार या सिद्धांत चक्कर काट कर इन्ही सिद्धांतो पर आ जाते हैं। रमणीयार्थ प्रतिपादक. शब्द काव्यम्' के अनुरूप ही तो रस्किन की यह व्याख्या है—"कविता कल्पना द्वारा रुचिर मनोवेगो के लिये रमणीय क्षेत्र प्रस्तुत करती है।" निस्संदेह संस्कृत-साहित्य का विशाल और गम्भीर ज्ञान विश्व में बेजोड है तथा उसकी प्राचीनता भी निस्संदिग्ध है। इतना ही नही, पाश्चात्य साहित्य-जगत् मे जिन विषयों को अत्याधुनिक और विवादास्पद समझा जाता है, उन्ही का सतोषपूर्ण समाधान दिव्यदृष्टि मेधावी भारतीय आचार्यो ने शताब्दियों पूर्व प्रस्तुत कर दिया था, किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि पाश्चात्य साहित्यशास्त्र मे कुछ भी नवीन नही है और उनका सब कुछ हमारे यहाँ है—इस कथन से मैं बहुत अधिक दूर तक नही सहमत हूँ, क्योकि पाश्चात्य साहित्यशास्त्र की भी कुछ अपनी विशेषताएँ है और उनका हमारे यहाँ अभाव है।

'काव्यदर्पण' के ग्यारहवें और बारहवें प्रकाश मे अलंकार-विवेचन है। ग्यारहवें प्रकाश मे अलंकार के लक्षण, काव्यालंकारो की स्थिति, वाच्यार्थ और अलंकार, अलंकारो की सार्थकता, अलंकारो के रूप, अलंकार के कार्य, अलंकारों का आडम्बर, अलंकारो की अनन्तता और वर्गीकरण, अलंकार और मनोविज्ञान, शब्दार्थोभयालंकार शीर्षक विषयो का दस छायाओ मे निरूपण है। बारहवें प्रकाश मे शब्दालंकार, अर्थालंकार और कतिपय पाश्चात्य अलंकारो का वर्णन किया गया है।

---

१ रचनाकाल संवत् २००३

अलंकारो के लक्षण गद्य में तथा उदाहरण प्रसिद्ध नवीन कवियों के नवीन काव्यों से चुने गये हैं। यत्र-तत्र प्राचीनों की सरल कविताओं को भी उद्धृत किया गया है। कही-कही सस्कृत से अनूदित तथा राम-नाम से स्वरचित उदाहरण भी दिये गये हैं तथा प्रत्येक अलंकार का अंग्रेजी-पर्याय भी दिया गया है। 'काव्यदर्पण' में अन्य विषयो की तुलना मे अलंकार-विवेचन बहुत ही साधारण और संक्षिप्त है। इस बात को लेखक ने भी स्वीकार किया है कि "दर्पण की छायाओं मे रस के अनेक विषयो के लेने का लोभ संवरण न कर सका। इससे पुस्तक का कलेवर बढ गया और इसका परिणाम यह हुआ कि अलंकार के विषयो और उनके उदाहरणों को कम कर देना पडा" तथा "अलकारो का सूक्ष्म विवेचन, उनकी विशेषता, एक का दूसरे से अन्तर्भाव आदि अनेक विषय 'काव्यालोक' के लिये छोड दिये गये थे।"

बारहवें प्रकाश की पहली छाया मे अनुप्रास, यमक, पुनरुक्ति, पुनरुक्तवदाभास, वीप्सा, वक्रोक्ति और श्लेष नामक सात शब्दालकारो का वर्णन है। भाषासमक और चित्रकाव्य का वर्णन नही किया गया है। दूसरी छाया से सोलहवी छाया तक ७७ अर्थालंकारो और उभयालंकारों का वर्णन है। अलंकारो का वर्गीकरण किया गया है, किन्तु वर्गीकरण के आधार को नही समझाया गया है। 'प्रश्न' नामक एक नवीन अलंकार की शोध की गई है, जिसकी परिभाषा है कि "जहाँ किसी अज्ञात जिज्ञासा की शाति के लिये प्रश्न किया जाता है वहाँ यह अलकार होता है।" सत्रहवीं छाया मे तीन पाश्चात्य अलंकारो का विवेचन है—मानवीयकरण, ध्वन्यार्थव्यंजना, विशेषण विपर्यय या विशेषण व्यत्यय।

केशव से रामदहीन तक के हिन्दी-अलकार-साहित्य का विकास प्रस्तुत करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि हिन्दी के समस्त अलंकार-साहित्य का आधार सस्कृत-साहित्यशास्त्र ही है और वह भी अधिकाश जयदेव के 'चन्द्रालोक', अप्पयदीक्षित के 'कुवलयानन्द', मम्मट के 'काव्यप्रकाश' और विश्वनाथ के 'साहित्य-दर्पण' के आधार पर है। हिन्दी का काव्यशास्त्र बहुत कुछ ब्रजभाषा मे ही लिखा गया है। यहाँ तक कि अवध-निवासी भिखारीदास ने भी 'काव्यनिर्णय' जैसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ की रचना ब्रजभाषा में की। यद्यपि तुलसीदास जी ने रहीम के आग्रह पर अलकारो के उदाहरणस्वरूप अवधी भाषा मे 'बरवैरामायण' लिखी; किन्तु इसकी परम्परा नही चल सकी।

द्वितीय खण्ड

- आधुनिक हिन्दी-कविता मे उपमान-योजना
- आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रतीक-विधान
- आधुनिक अलकृत उक्तियों में प्राचीन आलकारिक परिभाषाओ का निर्वाह और अलकारो की नवीन दिशा
- आधुनिक अलकृत उक्तियाँ और शब्द-शक्ति
- आधुनिक अलकृत उक्तियो मे भाव और वस्तु-व्यंजना
- उपसहार

५

आधुनिक हिन्दी-कविता में उपमान-योजना

काव्य मे उपमान-योजना[1] का बहुत बडा महत्त्व है। इसका सम्बन्ध केवल उपमालकार से ही नही है, अपितु समस्त औपम्यमूलक अलकारो से है। 'नाट्यशास्त्र' मे काव्य के केवल चार ही अलकारों का उल्लेख उपलब्ध होता है,[2] जिनमे एक शब्दालंकार और तीन अर्थालकार है। अर्थालकारो मे से उपमा का क्षेत्र इतना व्यापक माना है कि शेष अधिकाश अलंकार इसी के अन्तर्गत आ जाते है। इस प्रकार भरतमुनि का उपमा मे तात्पर्य समस्त औपम्यमूलक अलकारों से है। विद्वानो की 'उपमा कालिदासस्य' की उक्ति मे भी उपमामूलक सभी अलकारो का सौन्दर्य समाविष्ट है। चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज रासो' मे अनेक स्थलो पर सादृश्य-योजना को उपमालकार के अभाव मे भी उपमा ही अभिधान दिया है।[3] सूर और तुलसी

---

१. उपमा और उपमान के लिए अन्य शब्द भी प्रयुक्त होते है—उपमेय को प्रस्तुत, प्रासगिक, प्राकरणिक, प्रकृत तथा प्रधान और उपमान को अप्रस्तुत, अप्रासगिक, अप्राकरणिक, अप्रकृत तथा अप्रधान भी कहा जाता है।

२ उपमादीपकं चैव रूपकं-यमक तथा ॥ नाट्यशास्त्र १६। ४३॥

३. उपमा चन्द जपै सुअच्छ ॥ पृष्ठ १०२२ ॥
दिखि सेन तिन उपमा सुकरी ॥ पृष्ट १०३७ ॥
सो कवि इह उप्पम कही ॥ पृष्ठ १२६६ ॥
—पृथ्वीराज रासो।

ने भी उपमा का प्रयोग व्यापक अर्थ मे किया है।[१] इस प्रकार अधिकांश अलंकारों का विधान सादृश्य के आधार पर किया जाता है। इसीलिये रुय्यक ने कहा है कि प्रकारभेद से उपमालंकार ही अनेक अलंकारों का मूल है।[२] अलकार शास्त्र में उपमामूलक अलंकारों का सर्वाधिक महत्त्व है। यदि इन्हे छोड़ दिया जाय तो अलंकारशास्त्र मे प्राय कुछ बचता ही नहीं। इसीलिए राजशेषर ने अलकारो को मुकुटमणि, काव्यश्री का सर्वस्व तथा कवियो की माता कह कर उपमा का स्तवन किया है।[३] अप्पय दीक्षित का कथन है कि काव्यरूपी रगशाला मे उपमारूपी नटी चित्रभूमिका के भेद से अनेक रंगरूपों मे आकर नाचती हुई काव्य-मर्मज्ञो का मनोरंजन करती है।[४] इतना ही नही बल्कि ब्रह्मज्ञान से जैसे विचित्र विश्व का ज्ञान होता है, वैसे ही उपमा के ज्ञान से भी उसका ज्ञान होता है।[५]

उपमेय मे उपमान की योजना का मनोविज्ञान यह है कि जब कवि अपने मनोगत भाव या आवेग को व्यक्त करना चाहता है, तो उसका आलम्बन खोजता है, कभी वह प्रकृति के चेतन रूपों और तत्वो मे उसे मिल जाता है और कभी पृथ्वी के जड़ पदार्थो मे। कोई विषय या भाव ऐसा नही है जो उपमान-योजना के द्वारा अधिक प्रभाव और सुन्दरता के साथ ग्रहण न कराया जा सके। दैनिक जीवन

---

१. दूध-दंत-दुति कहि न जात कछु अद्भुत उपमा पाई।
किलकत-हसत दुरति प्रकटति मनु घन मे बिज्जु छटाई॥
—दशमस्कन्ध, ७२६।

मानो सुक्र-भौम-सनि-गुरु मिलि ससि कै बीच रसाल री।
उपमा बरनि न जाइ सखी री सुन्दर-मदनगोपाल री॥
—दशमस्कन्ध, ७५८।

उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छिपाये॥
—गीतावली, २३

२. उपमैव च प्रकार वैचित्र्येण अनेकालकारवीजभूतेति प्रथम निर्दिष्टा।
—काव्यालकार।

३. अलकार शिरोरत्नं सर्वस्व काव्यसम्पदाम्।
उपमा कवि अशस्य मातैवेति मतिर्मम॥ अलकारशेखर।

४. उपमैषाशैलूषी सम्प्राप्ता चित्रभूमिकाभेदात्।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती त द्विदा चेतः॥ चित्रमीमांसा।

५ तदिदं चित्रं विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात्। ज्ञातभवति॥
—चित्रमीमासा।

मे हम दो वस्तुओं का सादृश्य बतला कर अपने हृदय के भावों को सम्यक् प्रकारेण व्यक्त करने का प्रयत्न करते है, काव्य मे इसका महत्त्व साधारण-ज्ञान-बोध-प्रक्रिया तक ही सीमित नही है, काव्य मे उपमान-योजना ज्ञान-बोध के साथ चारुत्व की भी सृष्टि करती है। यदि उपमान-योजना मे सुन्दरता, सरसता, चमत्कार और विषय-बोध कराने की क्षमता नही है, तो काव्य मे उसका कोई महत्त्व नही होगा। इसीलिए तो आचार्य वामन ने सादृश्य को कविप्रतिभात्मक और विच्छित्तिविशेषात्मक कहा है। पण्डितराज जगन्नाथ ने भी कहा है कि वाक्यार्थ को सुशोभित करने वाले सुन्दर सादृश्य का नाम उपमा अलकार है। सुन्दरता का अर्थ चमत्कारक होना और चमत्कार का अर्थ है वह विशेष प्रकार का आनन्द जो सहृदयों का हृदयाह्लादक होता है।[1] सहृदय हृदय ही सुन्दरता का यथार्थ ज्ञाता है।

उपमान-योजना सादृश्य और साधर्म्य पर आश्रित रहती है। भावों द्वारा कल्पना को जितनी ही अधिक प्रेरणा प्राप्त होती है, उपमान-योजना उतनी ही अधिक सुन्दर और सार्थक होती है। तर्कपूर्ण विचारो से काव्य मे उपमान-योजना नही होती, क्योंकि कवि किसी एक ही प्रकार के सादृश्य से सन्तुष्ट हो जाता है, लेकिन तार्किक इस अपूर्णता से असन्तुष्ट रहेगा।[2] यही बात साधर्म्य के लिए भी सत्य है। यदि सादृश्य या साधर्म्य के सकेतमात्र से भाव-प्रसार हो जाता है तो काव्य मे उनके पूर्णारोप की अपेक्षा नही होती।

अब हम आलोच्य काल की उपमान-योजना पर विचार करेंगे। बीसवी शताब्दी-हिन्दी-कविता के प्रवृत्तिपरक तीन विभाग हो सकते हैं—

(१) द्विवेदी-युग —सन् १९०१ से १९२० ई० तक
(२) छायावाद-युग —सन् १९२१ से १९३५ ई० तक।
(३) प्रगति-प्रयोगवाद-युग —सन् १९३६ से ....।

---

१ सादृश्य सुन्दर वाक्यार्थोपस्कारकमुपमालंकृति:।
चारुत्व च चमत्काराधायकत्वं चमत्कारश्चानन्दविशेष: सहृदयहृदयसाक्षिक:।
—रसगंगाधर।

2 While the Voluntary thought only deals with likeness of practical value in reasoning, the poetic thought is free to recognise likeness of any kind whatsoever. For it likeness need not be extended; a likeness in any single point to afford a link for the mind is sufficient. Volunlary thought must see the resembleness and point out in what it consists-i.e.explain it poetic thought is satisfied with a mere recongnition of the resemblance, and may not be able at all to define it. This cannot be seen but felt

—The Poetic Mind.
by, Presscott.

यह वर्ग-विभाजन अत्यन्त स्थूल तथा सामान्य है और केवल प्रवृत्तियो की विभिन्नता की ओर सकेत करता है, क्योकि समर्थ कवियो को वर्ग की परिधि मे बांध रखना असम्भव है।

सन् १९०३ से १९२० तक 'सरस्वती' के सम्पादक के रूप मे पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी की बडी सेवा की है। द्विवेदी जी के सम्पादनकाल मे 'सरस्वती' एक संस्था बन गई थी। उसने खडी बोली को काव्य-भाषा बनाने का बहुत बडा कार्य किया। द्विवेदी-युग का सर्वाधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन यही है। द्विवेदी-युग के काव्य मे नैतिक बुद्धिवाद का प्राधान्य था। प्रेम तथा शृ गार लुप्त हो चला था और इतिवृत्तात्मकता पराकाष्ठा को पहुँच चुकी थी। जन्म से ही कविता के बन्धन सीमा तक पहुँच चुके थे और इस युग तक तो काव्य-सृष्टि के बाह्याकार पर इतनी प्रचुर मात्रा मे लिखा जा चुका था कि सन् १९२० के आस-पास कवि का हृदय बन्धनो से मुक्त होकर स्वच्छन्द अभिव्यक्ति तथा आत्म-दर्शन के लिये विद्रोह कर उठा। "वास्तव मे जब मनुष्य स्थूल-संघर्ष से दब जाता है, तब उसकी प्रवृत्तिया क्राति की ओर अग्रसर होती है। इसी को साहित्यिक भाषा मे स्थूल के प्रति सूक्ष्मका विद्रोह कहा जाता है। इतिवृत्तात्मकता का सम्बन्ध स्थूल शरीर से है, बाह्य सौदर्य से है, आन्तरिक तथा सूक्ष्म से नही।" यह इतिवृत्तात्मकता या स्थूलोपासना द्विवेदी-युग मे एक निर्दिष्ट सीमा तक पहुँच चुकी थी। ऐसी परिस्थितियो मे इसकी प्रतिक्रिया होना अनिवार्य था, क्योकि प्रतिक्रिया जीवन का तत्व है। अत· स्थूल के प्रति सूक्ष्म ने विद्रोह किया, परिणामस्वरूप छायावाद का जन्म हुआ। इस युग मे भारतेन्दु या द्विवेदी के समान ऐसा कोई व्यक्तित्व नही था जो सब पर छा जाता और अन्य लोग उससे प्रेरणा प्राप्त करते। इसी से इस युग का नामकरण किसी व्यक्ति के नाम पर न होकर एक प्रमुख प्रवृत्ति के नाम पर हुआ है।

अग्रेजी के रोमान्टिसिज्म की भाति प्राय: छायावाद का उद्भव हुआ है। इस धारा के अधिकाश कवियो ने शैली, कीट्स, वर्डस्वर्थ, आदि रोमाटिक आग्ल-कवियो से प्रेरणा प्राप्त की। उन्नीसवी शताब्दी का अन्त होते-होते हिन्दी-साहित्य-कार बगला-काव्य से परिचित हो रहे थे। उसका भी प्रभाव इस युग पर पड़ा।

छायावाद एक कला-आन्दोलन है। इसमे भावना और कल्पना की रगीनी-रम्याद्भुत का प्राधान्य है। इस युग का कवि सत्य, शिव, सुन्दरम् मे से केवल सुन्दरम् का उपासक है। छायावादी कवि के सूक्ष्म-मुखी होने के कारण उसकी सौदर्य-प्रियता भी अमूर्त और अशरीरी है। यह अमूर्तता, सूक्ष्मता छायावादी काव्य की विशेषता है, जिसका प्रभाव उसकी उपमान योजना पर भी पडा है। अन्य युगो के कवियो की भाँति छायावादी कविया ने भी उपमान-योजना का आश्रय लिया है। इस युग की उपमान-योजना की विशेषताये है—मूर्त की अमूर्तोपमा और अमूर्त की मूर्तोपमा। जब उपमान के द्वारा बिम्ब-ग्रहण कराया जाता है, तब सादृश्य पर

अधिक ध्यान दिया जाता है और जब भाव को तीव्र कराना अभिप्रेत होता है, तब केवल साधर्म्य से काम चलाया जाता है, किन्तु दोनो मे प्रभाव-साम्य छिपा रहता है। मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त-प्रस्तुत-योजना का उद्देश्य स्थूल मे निहित सूक्ष्म अर्थ को तीव्र कराना रहता है। उदाहरणार्थ—

छूते थे मनु और कटकित होती थी वह बेली,
स्वस्थ व्यथा की लहरो-सी जो अग लता थी फैली।

—कामायनी।

उसकी देह लता-सदृश फैली थी जैसे स्वस्थ व्यथा की लहरे हों। कहने का तात्पर्य यह है कि उसकी देह-लता मे गहरी व्यथायें उठ रही थी। श्रद्धा के लिये व्यथा की लहर का उपमान अमूर्त है। इस प्रकार के अमूर्त भावात्मक उपमान अमूर्त भावो को भी रूप प्रदान करते है। अमूर्त उपमान-योजना द्वारा नारी-सौदर्य का वर्णन बहुत ही मनमोहक हुआ है—

चन्द्र की विश्राम राका बालिका-सी कात।
विजयिनी-सी दीखती तुम माधुरी-सी शांत॥

—कामायनी।

हे नारी! तुम विश्रामदायिनी-चन्द्र की कान्त चन्द्रिका हो या बालिका-सी सुन्दर हो। विजयिनी होती हुई भी माधरी-सी मधुरता-सी, शान्त हो। नारी प्रस्तुत का सौदर्य अमूर्त उपमान माधुरी से विशुद्धरूप मे व्यञ्जित हुआ है।

निराला जी की 'विधवा' नामक कविता मे प्रत्येक उपमान बडी ही सार्थकता से प्रयुक्त हुआ है। कराल-काल ने ताण्डव करते समय उस बेचारी विधवा के जीवन-धन के जीवन-दीप को बुझा दिया। उस ताण्डव की एक कठोर रेखा रह गई है। उसी विधवा का यह मार्मिक चित्रण है—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शात, भाव मे लीन,
वह क्रूर काल-ताडव की स्मृति रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन—
दलित भारत की वही विधवा है।

—परिमल

इसमे प्रस्तुत विधवा मूर्त है और अप्रस्तुत कुछ मूर्त तथा अमूर्त दोनों हैं। मन्दिर की पूजा-सी, काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी अमूर्त अप्रस्तुत है। दीप-शिखा-सी शात, टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन यद्यपि मूर्त अप्रस्तुत हैं, किन्तु दीनता के भाव की प्रधानता के कारण इन्हें भी अमूर्त अप्रस्तुत कह सकते हैं। इसी

प्रकार पन्त जी ने भी साकार जल की बूद के साम्य के लिये गान, चाह, सुधि आदि अनेक अमूर्त अप्रस्तुत योजनाये की है—

जब अचानक अनिल की छवि मे पला,
एक जल-कण, जलद-शिशु-सा, पलक पर,
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा ।

—ग्रन्थि ।

इस प्रकार के व्यापार का तो छायावादी काव्य मे प्राचुर्य है । पन्त जी ने कतिपय उपमाओं मे मूर्त उपमेयों के लिये अमर्त उपमानो की योजना कर अचेतन को भी चेतन स्वरूप प्रदान किया है—

(क) गिरिवर ने उर से उठ-उठ कर
उच्चाकाक्षाओ से तरुवर
है झाँक रहे नीरव नभ पर,
अनिमेष, अटल, कुछ चिता पर ।

—पल्लव ।

(ख) कभी लोभ-सी लम्बी होकर,
कभी तृप्ति-सी हो फिर पीन ।

—पल्लव ।

(ग) धीरे—धीरे सशय—से उठ,
बढ़ अपयश-से शीघ्र अछोर,
नभ के उर मे उमड मोह-से,
फैल लालसा - से निशि भोर ।

—पल्लव ।

प्रथम उदाहरण मे तरु मूर्त है, आकाक्षायें अमूर्त, द्वितीय मे छाया मूर्त है । लोभ और तृप्ति अमूर्त तथा तृतीय उदाहरण मे बादल मूर्त है, सशय, अपयश, मोह एवं लालसा अमूर्त । सामान्य रूप से उपमाओ का कार्य इतने ही मे समाप्त हो जाता है, किन्तु पन्त जी ने अपनी उपमाओ की पूरी मूर्ति निर्मित की है । 'पहाड पर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष खडे है' यह एक सामान्य कथनमात्र होता है, पर प्रथम पक्ति मे ही उन्होने 'उर' शब्द का प्रयोग बडे कौशल से किया है । गिरि के उर से तरुवर वैसे ही उठकर आकाश की ओर जा रहे है, जैसे व्यक्ति के उर से उच्चाकाक्षायें । ऐसी स्थिति मे पहुँच कर पेड़ो को नीरव नभ का ताकना और व्यक्ति का दूर सूने मे दृष्टि गड़ाये खडा होना बहुत ही परिचित व्यापार प्रतीत होता है । शेष दोनो

उपमाये भी बडी सार्थक है। इसी प्रकार की उपमाये महादेवी जी के भी काव्य में प्रयुक्त हुई है। उदाहरणार्थ, वह घटा छा जाने को मधुभार-सा कहती है—

शून्य नभ मे जब उमड मधुभार-सी,
नैश तम मे सघन छा जाती घटा,
बिखर जाती जुगनुओ की पक्ति भी,
जब सुनहले आँसुओ की हार-सी,
तब चमक जो लोचनो को मूँदता,
तडित की मुस्कान मे वह कौन है। —यामा

यहाँ 'घटा' का घिरना 'मूर्त' है, पर 'मधुर-सा' अमूर्त है। मस्ती भी छा जाती है। यह मस्ती ही मधुभार है। अमूर्त उपमानो द्वारा 'दिनकर' ने भी बालिका का वर्णन बहुत सुन्दर किया है—

लदी हुई कलियो से मादक टहनी एक नरम-सी।
यौवन की विनती-सी भोली गुम-सुम खडी शरम-सी॥
—रसवती : दिनकर।

इसमे प्रथम पक्ति का प्रस्तुत तो मूर्त है, किन्तु द्वितीय पक्ति के अप्रस्तुत विनती और शरम अमूर्त है।

काव्य मे मूर्त की अमूर्त अप्रस्तुतयोजना इतनी कठिन नही समझी जाती, जितनी अमूर्त की मूर्त अप्रस्तुत योजना। आधुनिक हिन्दी-कविता मे अमूर्त के मूर्त प्रयोग बहुत कम हुए है। सस्कृत-साहित्य मे तो इस प्रकार के उदाहरणो का बाहुल्य है। उदाहरणार्थ, 'अभिज्ञान शकुन्तलम्' के प्रारम्भ मे जब राजा दुष्यन्त शकुन्तला के साथ प्रणय-सम्बन्ध स्थापित कर अनिच्छापूर्वक अपनी राजधानी जा रहे है, उसी समय के वर्णन मे कवि-कुल गुरु कालिदास ने जो अप्रस्तुतयोजना की है, वह अतिभव्य है—"जैसे रथ के आगे बढने से उसमे लगी हुई रेशमीध्वजा पीछे की ओर जाती है, उसी प्रकार दुष्यन्त का शरीर तो आगे की ओर बढ रहा है, किन्तु चचल चित्त पीछे की ओर जा रहा है।"[1] इसमे उपमेय चित्त अमूर्त है और उपमान चीनाशुक मूर्त। दोनो मे पीछे की ओर जाने का सादृश्य और साधर्म्य कितना सुन्दर और सानुपातिक है। यह उपमान दुष्यन्त के प्रणयासक्त मानस की अवस्था को पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष कर देता है। इसी प्रकार विषाद एक भाव है, जो अमूर्त है। प्रसाद जी ने इसी अमूर्त की मूर्त अप्रस्तुत योजना 'विषाद' शीर्षक कविता मे की है—

---

१ गच्छति पुर शरीर धावति पश्चादसस्थित चेत।
चीनाशुकमिव केतो: प्रतिवातं नीयमानस्य॥
—अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

कौन प्रकृति करुण का काव्य–सा
वृक्ष–पत्र की मधुछाया मे,
लिखा हुआ–सा अचल पडा है
अमृत–सदृश नश्वर काया मे ?

अखिल विश्व के कोलाहल से—
दूर सुदूर निभृत निर्जन मे
गोधूली के मलिनाञ्चल मे,
कौन जगली बैठा मन में ?

शिथिल पडी प्रत्यञ्चा किसकी ?
धनुष भग्न सब छिन्न जाल है;
बशी नीरव पडी धूलि मे
तरकस का भी बुरा हाल है।

× × ×

निर्झर कौन बहुत बल खाकर
बिलखाता ठुकराता फिरता,
खोज रहा है स्थान धरा मे
अपने ही चरणों मे गिरता ?

किसी हृदय का यह विषाद है
छोडो मत यह सुख का कण है;
उत्तेजित कर मत दौडाओ
करुणा का यह थका चरण है।

——झरना।

इसी प्रकार विरह-दशा का भी वर्णन किया है :–

जल उठा स्नेह दीपक-सा नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम-रेखा से चित्रित कर रहा अंधेरा॥

——आँसू।

यहाँ विरह-दशा को दीपक की धूम-रेखा का चित्र कहना बहुत ही व्यञ्जना पूर्ण है। दीपक की लौ की प्रकाशित दशा और बुझी दशा की धूम्रमयता का अन्तर सयोग की सुखदता और वियोग की दुखदता के अन्तर की भाँति है। दीपक जल चुका, केवल धूम अवशेष है। सयोग के सुखद प्रकाश से प्रेमी वियोग के अंधकार में पड़ गया है। यहाँ साम्य प्रभावाश्रित है। हृदय मक्खन-सा स्निग्ध था, जिसमे दीपक-सा स्नेह जल उठा। यहाँ स्नेह अमूर्त प्रस्तुत के लिए मूर्त अप्रस्तुत दीपक व्यवहृत हुआ

है । इसी प्रकार प्रसाद जी ने और भी सूक्ष्म प्रस्तुतों के लिए स्थूल अप्रस्तुतों का विधान किया है जो उनकी कल्पना-प्रवणता का द्योतक है—

(अ) मकरद मेघ माला-सी वह स्मृति मदमाती आती ।
(ब) क्यो व्यथित व्योमगंगा-सी, छिटका कर दोनो छोरे ।
चेतना-तरङ्गिनि मेरी लेती है मृदुल हिलोरें ॥

—आंसू ।

पंत जी ने भी अमूर्त प्रस्तुत उच्छ्वास के लिये मूर्त अप्रस्तुत लाल-बादल और गम्भीर मेघ दोनो की योजना की है–

सिसकते, अस्थिर मानस से
बाल-बादल-सा उठ कर आज
सरल, अस्फुट उच्छ्वास ।
अपने छाया के पखो मे
(नीरव घोष भरे शखो मे)
मेरे आंसू गूथ, फैल गम्भीर मेघ-सा,
आच्छादित कर ले सारा आकाश

—पल्लव

इसमे उच्छ्वास को मेघ के समान व्याप्त होने की कामना की गई है ।

आधुनिक हिन्दी-कविता मे मूर्त प्रस्तुत की मूर्त अप्रस्तुत योजनायें भी मार्मिक हुई है । यथा–

सुना यह मनु ने मधु गुंजार,
मधुकरी का सा जब सानन्द ।
किए मुख नीचा कमल सामान,
प्रथम कवि का ज्यों सुन्दर छद ॥

—कामायनी ।

मनु ने ग्रीवा को झुकाए हुए श्रद्धा के कमल के समान सुन्दर मुख की भ्रमरी की गुंजार जैसी मिठास भरी यह वाणी प्रसन्न मन से सुनी । वह मधु गुंजार प्रथम कवि बाल्मीकि के छन्द जैसा सुन्दर था । इसमे गुंजार, कमल और छंद मूर्त हैं । जब मुख कमल हुआ तब वाणी को मधुकरी का गुंजार कहना सार्थक ही है । छद भी श्लोक रूप मे था । गुंजार का श्रवण प्रत्यक्ष होता है । इसी प्रकार सिंधु-लहरियों को फन फैलाये व्यालो से उपमा देने मे बड़ी सार्थकता है—

उधर गरजती सिंधु-लहरियाँ कुटिल काल के जालो-सी।
चली आ रही फेन उगलती फन फैलाये व्यालो-सी॥

—कामायनी

मद मरुत के मद प्रवाह से छोटे-छोटे उज्ज्वल मेघ पहाड पर इधर-उधर बिखर जाने के भाव की पत जी ने रूपक द्वारा बडी ही सुन्दर व्यजना की है—

शिखर पर विचर मरुत रखवाल,
वेणु मे भरता था जब स्वर।
मेमनों से मेघो के बाल,
फुदकते थे प्रमुदित गिरि पर॥

—पल्लव।

यहा मेमने और मेघ दोनों ही मूर्त हैं। इसी प्रकार मूर्त पहाडो की उपमा मूर्त हाथियो से देते हुए कहा है—

द्विरद-दंतो से उठ सुन्दर, सुखद कर-सीकर से बढ़ कर,
मूर्ति से शोभित शिखर बिखर फैल फिर कटि के से परिकर,
बदल यों विविध वेष जलधर बनाते थे गिरि को गजवर॥

—पल्लव।

निराला जी ने 'पचवटी-प्रसंग' मे गोदावरी-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए मूर्त प्रस्तुत की मूर्त अप्रस्तुत योजना की है—

बीच-बीच पुष्प गुथे किन्तु तो भी बधहीन
लहराते केशजाल जलद श्याम से क्या कभी
समता कर सकता है ?
नील नभ तडित्तारिकों का चित्र ले
क्षिप्रगति चलती अभिसारिका यह गोदावरी।

—अनामिका।

इन पक्तियो मे शूर्पणखा ने अपने पुष्पो से गुथे केशो की तुलना तारो भरी रात मे गोदावरी की लहरो से की है।

अमूर्त प्रस्तुत की अमूर्त-योजना कवि की प्रतिभा–सूचक है। ऐसी अप्रस्तुत-योजनाओ की भी आधुनिक हिन्दी-कविता मे न्यूनता नही है—

निकल रही थी मर्म वेदना करुणा विकल कहानी–सी।
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हसती–सी पहिचानी–सी॥

—कामायनी।

मनु अपनी गहरी मर्मव्यथा की कथा कह रहे थे, जो करुणा से परिपूर्ण कहानी थी। प्रकृति की उपेक्षा से शोक और गहरा हो गया है। यहाँ उपमेय और उपमान दोनो ही अमूर्त है।

दूर से जब कोई वस्तु कठोर वस्तु पर जोर से गिरती है, तब उसका घोष भी भीषण होता है। स्वप्न-सुख जब प्रस्तर हृदय पर गर्व-सा आ पडा, तो क्यो नही भीषण निर्घोष करेगा! तभी तो उसे वज्र, भूकम्प और उत्पात सदृश कहा गया है—

गर्व-सा गिर उच्च निर्झर स्रोत से
स्वप्न-सुख मेरा शिलामय हृदय मे
घोष भीषण कर रहा है वज्र-सा—
वात-सा, भूकम्प-सा, उत्पात-सा ॥

—ग्रंथि।

इसमें स्वप्न-सुख उपमेय अमूर्त है और उसके सभी उपमान अमूर्त है।

पीडा की कसक दुखदायिनी होती है, फिर भी वह इसलिए सुन्दर प्रतीत होती है कि वह सुख का कारण होती है। इसी से तो विरह हँस उठता है और प्राणों मे एक पुलक का सचार हो जाता है—

आवे बन मधुर मिलन क्षण पीडा की मधुर कसक-सा।
हँस विरह उठे ओठों मे प्राणो मे एक पुलक-सा ॥

—यामा . महादेवी।

यहाँ मिलन-क्षण और विरह दोनों उपमेय अमूर्त तथा मधुर कसक और एक पुलक उपमान अमूर्त हैं।

छायावादी कवियो की अन्तर्दृष्टि ने यदि एक ओर लघु-लघु अमूर्त उपमाओं का विधान किया है, तो दूसरी ओर विराट उपमाओ की भी योजना की है। साम्य-विधान जितने ही विराट आधार पर प्रतिष्ठित होता है, हृदय मे उतनी ही विराट भावना का उद्भव होता है। इस बात को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा है— "साम्य का आरोप भी निस्सदेह एक बडा विशाल सिद्धान्त लेकर काव्य मे चला है। वह जगत के अनन्तरूपो या व्यापारो के बीच फैले हुए उन मोटे-महीन सम्बन्ध-सूत्रो की झलक सी दिखला कर नीरसता के सूनेपन का भाव दूर करता है, अखिल सत्ता के एकत्व की आनन्दमयी भावना जगा कर हमारे हृदय का बधन खोलता है। जब हम रमणी के मुख के साथ कमल, स्मिति के साथ अधखिली कलिका सामने पाते है, तब हमे ऐसा अनुभव होता है कि एक ही सौन्दर्य-धारा से मनुष्य भी और

पेड़-पौधे भी रूप-रंग प्राप्त करते हैं।"[१] किन्तु यह कार्य समर्थ और विराट कल्पना वाले ही कवि कर सकते हैं। छायावादी कवियो को इस कार्य मे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई है। उदाहरणार्थ निराला जी तो अपने विराट चित्रों के लिये प्रसिद्ध ही हैं। भगवान राम युद्ध स्थल से लौट रहे हैं। उनकी जटाये बिखर कर भुजाओ, वक्ष और पीठ पर फैल गई हैं तथा नेत्र चमक रहे हैं। निराला जी राम के इस रूप की उपमा उस पहाड़ से देते है जो रात्रि के अन्धकार से आच्छादित हो चला है और जिसके ऊपर दो तारिकायें चमक रही हैं—

दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओ पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यो दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती दूर तारायें ज्यो हों कही पार।

इस वर्णन से राम के रूप की विराटता का हृदय मे अभ्युदय होता है। इसी प्रकार पंत जी ने अम्बुधि के रूप मे सैकड़ो फन उठाये हुए विशाल भुजगम का चित्रांकन किया है—

आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन।
मुग्ध भुजंगम-सा, इंगित पर करता नर्तन॥
—आधुनिक कवि।

महादेवी जी ने अवनि और अम्बर को विशाल सीपी बना कर उसमे अपार जलधि के तरल मोती की प्रतिष्ठा करते हुए छायावादी काव्य की विराट कल्पना का भद्र प्रमाण प्रस्तुत किया है—

अवनि अम्बर की रुपहली सीप मे
सरल मोती-सा जलधि जब कापता।
तैरते घन मृदुल हिम के पुञ्ज-से
ज्योत्सना के रजत पारावार मे।
—यामा।

छायावादी कवियो ने अधिकांश अप्रस्तुत प्रकृति के उपकरणो से प्राप्त किये हैं। जड से चेतन का साम्य दिखला कर चेतन मे चेतनता को और अधिक तीव्र कर दिया है। उदाहरणार्थ—

उषा की पहली लेखा कान्त,
माधुरी से भीगी भर मोद।

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास।

मदभरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक-द्युति की गोद ।।

\+ + + +

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग ।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ वन बीच गुलाबी रंग ।।

\+ + + +

गिर रहे थे घुंघराले बाल,
अंस अवलम्बित मुख के पास ।
नील घन-शावक से सुकुमार,
सुधा भरने को विधु के पास ।।

—कामायनी ।

प्रकृति से लिये गये अप्रस्तुतों के कारण श्रद्धा का यह वर्णन बहुत ही सजीव और स्वाभाविक हो उठा है । "प्रकृति को चेतनस्वरूप प्रदान करना तो छायावादी कवियों की अपनी विशेषता है ।" 'जुही की कली' आदि कवितायें इसी प्रकार की हैं । ऐसी कविताओं में अप्रस्तुत का ही महत्त्व रहता है, किन्तु अप्रस्तुत का चित्रण इतना सजीव होता है कि प्रस्तुत भी प्रस्फुटित हो उठता है । छायावादी काव्य-धारा के अन्तर्गत किये गये साम्य-विधान में मानवीय तत्त्वों का आरोप बहुत ही सौन्दर्य-वर्धक हुआ है । प्रकृति के निम्न चित्र में मानवीय सादृश्यतत्त्व ही प्रधान आकर्षण का केन्द्र है—

स्नेह-निर्झर बह गया है ।
रेत ज्यों तन रह गया है ।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी,
कह रही है—
अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं जिसका अर्थ—
नहीं आते, पंक्ति में वह हैं लिखी
जीवन दह गया है ।
—अणिमा . निराला ।

निम्नांकित पंक्तियों में नव-यौवन के आगमन की अभिलाषा कुंज, मदिरा, प्याली आदि के माध्यम से व्यक्त हुई है—

मंजरित विश्व में यौवन के
जगकर जग का पिक, मतवाली

निज अमर प्रणय-स्वर-मदिरा से
भर दे फिर नवयुग की प्याली।

—युगांत : पंत।

'संध्या के पद' और 'पुलक पंख' जैसे पद महादेवी की कविता मे सूक्ष्म अनुभूति-पद्धति को रूप प्रदान करते हैं—

नित सुनहली सांझ के पद से लिपट आता अंधेरा;
पुलकपंखी विरह पर उड़ आ रहा है मिलन मेरा,

कौन जाने है बसा उस पार
तम या रागमय दिन ॥

—यामा।

छायावाद की यह मानवीकरण-पद्धति अलंकार की रूपक पद्धति से भिन्न है। रूपक मे प्रस्तुत का महत्व बना रहता है और अप्रस्तुत आरोपित होता है, किन्तु मानवीकरण में अप्रस्तुत ही सर्वस्व रहता है और प्रस्तुत व्यंग्य होता है।

हिन्दी के अधिकांश विद्वानो ने साम्य केवल दो ही प्रकार का माना है— १. रूप-साम्य और २. गुण-धर्म-साम्य और द्वितीय के अन्तर्गत ही प्रभाव साम्य को ले लिया है। सौन्दर्यवर्धक साम्य-विधान के लिये तीनो ही अपेक्षित हैं। छायावादी कवियों ने प्रभाव-साम्य को ही सर्वाधिक महत्व प्रदान किया है और अप्रस्तुत योजना की वास्तविकता भी यही है कि यदि कवि द्वारा की गई अप्रस्तुत योजना मे प्रस्तुत के समान ही आकर्षण और प्रभविष्णुता नही है, तो वह निरर्थक समझी जायगी। प्रभाव साम्य के लिये तो छायावादी कवियों ने कहीं-कही रूप और गुण की भी उपेक्षा की है। प्रभाव-साम्य के ही दृष्टिकोण से समस्त अर्थवत्ता अलियों के मधुपान-चित्रण से व्यंजित करते हुये निराला जी ने कहा है—

आंखें अलियों-सी,
किस मधु की गलियों में फंसी
बंद कर पांखें ?
पी रही मधु मौन ?
अथवा सोई कमल-कोरको मे ?
बंद हो रहा गुंजार।
जागो फिर एक बार।

—परिमल

निम्नाकित पक्तियो मे केवल प्रभाव-साम्य ही है—

तडित है उपहार तेरा
बादलो-सा प्यार मेरा ।
—दीपशिखा महादेवी ।

प्रभाव-साम्य-योजना मे गुण-क्रिया के साम्य की भी व्यजना रहती है, रूप-रग के माध्यम से प्रभाव की समानता भी नियोजित रहती है । छायावादी काव्य मे नीलम, रजत, स्वर्ण, प्रवाल, मरकत, हीरक आदि रगो वाले जो पदार्थ प्रयुक्त हुये हैं, उनमे प्रभाव, साम्य के साथ-साथ वर्ण-साम्य भी रहता है । पत जी ने निम्नलिखित उदाहरणो मे वर्ण-साम्य को ही लक्ष्य रखा है—

अरुण अधरो का पल्लव-प्रात
मोतियो-सा हिलता हिय-हास
—गुंजन : पत ।

यहा तो झरते निर्झर
स्वर्ण-किरणो के निर्झर
स्वर्ण-सुषमा के निर्झर ।
—स्वर्ण धूलि : पत ।

तूल-सी मार्जार-बाला सामने
निरत थी निज बाल-क्रीडा मे ।
—ग्रन्थि : पत ।

महादेवी की कविता मे भी वर्ण-साम्य और प्रभाव-साम्य के लिये रगीन पदार्थ उपमान-रूप मे व्यवहृत हुए है—

बिखर जाती जुगुनुओ की पाति भी ।
जब सुनहले आमुओ के हार-सी ।
—यामा ।

इन कनक-रश्मियो मे अथाह
लेता हिलोर तम-सिन्धु जाग
बनती प्रबाल का मृदुल फूल जो क्षितिज-रेख थी कुहर-म्लान ।
—यामा ।

विरोधमूलक अप्रस्तुत योजना भी छायावादी अभिव्यक्ति की एक प्रमुख पद्धति है । इसकी दो प्रणालियां है । प्रथम मे तो दो विरोधी धर्मों वाले पदार्थों

का प्रभाव साम्य स्थापित किया जाता है और द्वितीय मे विरोधपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया जाता है। प्रथम प्रणाली का उदाहरण:—

ताज है जलती शिखा चिनगारिया शृंगारमाला,
ज्वाल अक्षय कोष है अंगार मेरी रगशाला;
नाश में जीवित किसी की साध सुन्दर हू।

—यामा।

ताज और शिखा, चिनगारिया और शृ गारमाला तथा अगार और रंगशाला मे धर्मगत विरोध है। प्रेमिका अपने प्रियतम की प्रेम-साधना मे प्राप्त शिखा, चिनगारी और अगार को भी ताज शृंगारमालिका एवं रगशाला का पद देकर उनसे सतोष प्राप्त करती है तथा अपनी शोभा समझती है, अन्यथा जानकर भी उसके स्वेच्छा-वरण मे अन्य कौन सी वृत्ति निहित कही जा सकती है। त्याग, वलिदान, कष्ट, सहिष्णुता की अभिव्यक्ति बड़े ही तीव्ररूप मे हुई है।

द्वितीय प्रणाली मे विरोधपूर्ण शब्द या विशेषण प्रयुक्त होते है। ये विरोधपूर्ण शब्द उपमान का कार्य करते हैं और बहुत ही व्यजनापूर्ण होते हैं। इस प्रकार की अप्रस्तुत-योजना मे बडी ही बारीकिया होती है। बाहर से इस प्रकार की योजना में तो विरोध दिखाई पडता है, किन्तु अन्तरग मे प्रविष्ट होते ही विरोध न होकर बहुत मार्मिक भाव का व्यजक हो जाता है। उदाहरणार्थ—

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी अरी आधि मधुमय अभिशाप।
हृदय-गगन मे धूमकेतु सी पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप॥

—कामायनी।

यहाँ दो विरोधमूलक विशेषण है—मधुमय (अभिशाप) और सुन्दर (पाप)। चिन्ता से मन व्याकुल रहता है, इससे इसको अभिशाप कहा जाना उचित ही है, पर चिन्तित मनुष्य इससे छुटकारा पाने का इच्छुक ही नही दिखाई पडता। यदि मनुष्य निश्चिन्त हो जाये तो लोक-जीवन में सुख-साधन का कोई प्रयत्न ही न करे। यह चिन्ता ही है जो मानव-जीवन मे मधुरता लाती है, इसीसे मधुमय है। चिन्ता आत्मानन्द की विधायिका है, अत: पाप-रूप होने पर भी अपने रूपो मे सुन्दर प्रतीत होती है। यह ऐसी न होती तो उसकी ओर मनुष्य का आकर्षण कैसे होता ? दूसरी बात यह है कि अनिष्ट कार्य होने पर भी कोई उससे मुक्त नही है। वह अनिवार्य है; इसी से सुन्दर है। इस विरोध-प्रदर्शन का भाव यही है। अनिच्छित वस्तु को भी लाभदायक समझकर जैसे मनुष्य ग्रहण कर लेता है, वैसे ही दु:खदायिनी चिन्ता को

भी वह मधुमय और सुन्दर समझकर ग्रहण कर लेता है। इसी प्रकार ज्वाला भी शीतल होती है—

शीतल ज्वाला जलती है
ईंधन होता दृग-जल का
यह व्यर्थ श्वास चल-चल कर
करता है काम अनिल का।

—आसू।

'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के विपरीत पत जी कहते है कि—

गिरा हो जाती सनयन,
नयन करते नीरव भाषण।
श्रवण तक आ जाता है मन,
स्वय मन करता बात श्रवण॥

भाषण भी हो और वह नीरव रहे इसमे कोई आश्चर्य नही, क्योंकि आखें देख कर मन के भाव जान लिए जाते है। नीरव व्यक्ति जैसे अपनी मुख-मुद्रा से मन के भाव व्यक्त कर देता है, वैसे ही प्रेमी के नयन अपने मन के भावो को इतने सुन्दर ढंग से प्रकट कर देते हैं कि जितना वे भाषण देकर भी नही अभिव्यक्त किये जा सकते। महादेवी जी भी यही कहती हैं—

आँखों की नीरव भिक्षा मे आँसू के मिटते दागो मे
ओठो की हँसती पीडा मे आहो के बिखरे त्यागो मे,
कन-कन मे बिखरा है निर्मम मेरे मानस का सूनापन।

—यामा।

आँखो की भिक्षा नीरव है, पर वह शब्द-सी निकल पडती है और उसमे सूनापन समाया हुआ है। मूक भिक्षा के समान ही यह नीरव भिक्षा है।

निराला जी की 'तुम और मैं' शीर्षक कविता मे बाहर से तो विरोध ही परिलक्षित होता है, किन्तु अन्तरग मे एकता का ही अधिवास है। भाव-भाष, विटप-छाया, प्राण-काया और ब्रह्ममाया मे सम्बन्ध-भिन्नता नही है, अपितु अभिन्नता है—

तुम मृदु मानस के भाव और मै मनोरजिनी भाषा,
तुम नन्दनवन घन विटप और मैं सुख-शीतल तलशाखा
तुम प्राण और मैं काया, तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म,
मैं मन मोहिनी माया।

—परिमल।

इन पक्तियो मे दो वस्तुओं के पारस्परिक सम्बन्ध को परम्परित रूपक मे कहने का प्रयास किया गया है, जिसमे एक रूपक के आरोपित हो जाने पर परम्परा-सम्बन्ध-निर्वाह के लिये दूसरा अप्रस्तुत आरोपित होता है। इसी प्रकार डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपने को 'विश्व नर्तकी की विराट चेतना के नूपुरो का हास' कहा है, जो उन चरणों मे लिपटा हुआ अलकृत होता है। वे चरण यदि मौन गति कहते हैं, तो यह झकार का हास्य उसको रागयुक्त बनाता है--

मैं तुम्हारे नूपुरो का हास,
चरण मे लिपटा हुआ करता रहूँ चिर वास।
मैं तुम्हारी मौन गति मे भर रहा हूँ राग,
बोलता हूँ यह जताने हूँ तुम्हारे पास।
चरण-कम्पन का तुम्हारे हृदय मे मधुभाव,
कर रहा हूँ मै तुम्हारे कण्ठ का अभ्यास।

—चन्द्रकिरण।

बच्चन ने अपने जीवन के 'खारे जल' एव 'हलाहल' को किसी के मधुर स्वर मे मधुमय बना कर विरोधी प्रतीको से वैषम्य को तीव्र किया है। इसमे प्रस्तुत–अप्रस्तुत का विरोध नही है, अपितु विरोधी परिस्थितियो की ओर लक्ष्य है--

मेरे जीवन का खारा जल
मेरे जीवन का हालाहल
कोई अपने स्वर मे मधु लय भर बरसाता, मै सो जाता।

—एकान्त सगीत।

छायावादी काव्य-धारा मे हिन्दी-कविता रीतिकालीन विषय-सकोच और द्विवेदीयुगीन अतिनीतिवादी परम्परा का विद्रोह कर के आगे बढ गई। नये-नये उपमानो की इस युग मे उद्भावना की गई, किन्तु कवि प्राचीन उपमानो के प्रभाव से सर्वथा मुक्त नही हो सके। "सस्कृत-साहित्य के सम्पर्क से अलकारो की अनेक शैलियाँ हमारे साहित्य मे सैकडो वर्षो से प्रचलित हैं। सस्कृत के कवियो का प्रकृति-निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म था। प्रकृति के रमणीय उपादानो की सहायता से जो अप्रस्तुत विधान किया जाता था, वह बहुत ही मार्मिक और हृदयाकर्षक होता था।" पीछे आने वाले कवियो ने अपनी-अपनी प्रतिभा तथा उद्भावना से कुछ नवीन उपमानों का अन्वेषण तथा प्राचीन उपमानो की योजना मे विशेष चमत्कार को लक्ष्य मे रख कर परिवर्तन किये। पर नवीन उद्भावनायें प्राचीनकाल मे प्रयुक्त होने वाले उपमानो की रमणीयता मे कमी न कर सकी। हमारी सौन्दर्य-वृत्ति जिन दृश्यों पर अनादिकाल से मुग्ध होती आई है, उनका आकर्षण कभी कम हो ही नही सकता। किसी पुष्कर विशेष का कोई एक कमल अपने दिन पूरे करके मुरझा

जायगा; पर कवियों के मानस मे कमलों ने अपने जिस रमणीय स्वरूप की प्रतिष्ठा कर ली है वह सदा डहडहा रहेगा। वर्षा-ऋतु मे नीले-नीले, काले-काले उन्नमित मेघो को देख कर हमारा हृदय सदा ही आनन्द-विभोर होकर नाच उठेगा। शरच्चन्द्र की रमणीयता अजर है, अमर है। अतः, यह तो कभी भी आशा नही की जा सकती कि हमारे नवीन कवि- चाहे वे अंग्रेजी के उच्च कवियो का अध्ययन करें चाहे फारसी के–प्राचीन रमणीय उपमानो की सहायता के बिना अपनी अप्रस्तुत-विधान की पूर्ति करते चलेंगे। हाँ, यह बात दूसरी है—और वाञ्छनीय भी है कि नवीन कवियो के द्वारा परम्परा से प्राप्त प्राचीन उपमानों की योजना मे भी कुछ अभिनव चमत्कार की स्थापना तथा उद्भावना हो।"[1] कमल, खजन, मीन, शुक, दाडिम, अलि, कदली, केहरि, कोयल, मराल आदि अति प्राचीनकाल से उपमानरूप मे प्रयुक्त होते चले आ रहे है, किन्तु सहृदय छायावादी कवि के लिये उनकी रमणीयता कम नही हुई। उदाहरणार्थ—

बाँधा है विधु को किसने, इन काली जन्जीरो से,
मणि वाले फणियों का मुख क्यो भरा हुआ हीरों से।
—आँसू · प्रसाद।

विद्रुम सीपी सम्पुट मे मोती के दाने कैसे ?
हैं हंस न, शुक यह फिर क्यों चुगने को मुद्रा ऐसे ?
—आसू

मदभरे ये नलिन नयन मलीन हैं,
अल्प जल मे यह विकल लघु मीन है ?
या प्रतीक्षा मे किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुए ये दीन हैं।
—परिमल : निराला।

प्रथम, भय से मीन के लघु बाल जो
थे छिपे रहते गहन-जल मे, तरल
उर्मियो के साथ क्रीड़ा की, उन्हे,
लालसा अब है विकल करने लगी,
कमल पर जो चारु दो खंजन, प्रथम
पंख फड़काना नही थे जानते,
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
वे विकल करने लगे हैं भ्रमर को।
—ग्रंथि : पंत।

---

१. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास, —पं० कृष्णशंकर शुक्ल।

दर्शन बिखराते ज्योत्स्ना-पुंज,
खोल आलोडित अधर-प्रवाल,
हृदय-सर मे तिरते हैं प्राण !
चपल चितवन के बाल-मराल

—कसक · हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

यत्र-तत्र फारसी की उपमाये भी छायावादी कविता मे प्राप्त होती हैं—

इन्द्र नील मणि महा चषक था
सोम रहित उलटा लटका ।

—कामायनी

आकाश की उपमा चषक से देना फारसी-साहित्य मे बहुत प्रचलित है। भारतीय साहित्य मे ऐसी उपमाओं का प्रचार नही है। एक और उदाहरण इसी प्रकार का देखिए—

चेतना रगीन ज्वाला परिधि मे सानन्द ।
मानती-सी दिव्य सुख कुछ गा रही है छन्द ।।
अग्निकीट समान जलती है अरी उत्साह ।
और जीवित है, न छाले हैं; न उसमे दाह ।।

—कामायनी ।

अन्तिम दो पक्तियो मे फारसी का प्रभाव स्पष्ट है। चेतना का अग्निकीट से उपमा देना और रगीन ज्वाला मे उसका जलना फारसी का प्रभाव है। हिन्दी का हालावादी काव्य तो फारसी-साहित्य के अनुकरण मे ही लिखा गया।

कही-कही अंग्रेजी के मुहावरों से प्रभावित होकर बहुत ही व्यंजनापूर्ण अप्रस्तुत-योजना की गई है। निम्न पद मे रेखांकित करने की भावना का बहुत ही काव्योचित प्रयोग किया गया है। काली अलक के लिए रेखा की उत्प्रेक्षा मे प्रस्तुत-अप्रस्तुत का बहुत ही सुन्दर साम्य बन पडा है।

बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती,
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में।
अचल रेखाकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे।

—ग्रंथि : पंत ।

इसी प्रकार मोहर लगाने की प्रक्रिया का सम्बन्ध आधुनिकता से है। कवि ने इसका भी सुन्दर प्रयोग किया है—

देख रति ने मोतियों की लूट यह
मृदुल गालों पर सुमुखि के लाज से।
लाख-सी दी त्वरित लगवा, बन्द कर
अधर विद्रुम-द्वार अपने कोष के ॥
—ग्रंथि : पन्त

प्रसाद जी ने 'अजन-रेखा' की एक सर्वथा अभिनव उपमा दी है—

तिर रही अतृप्ति-जलधि मे,
नीलम की नाव निराली।
काला-पानी बेला सी,
है अञ्जन-रेखा काली ॥
—आसू

जिस दर्शक की आखें रमणी के नयनो मे रञ्जित अंजन की रेखा को देख लेती है, वे वही अटक रहती है—ठहर जाती है। वह कज्जल-रेखा काले पानी के समुद्र के किनारे के समान है। जहा उतर कर कोई जल्दी वापस नही लौटता। गुरुतर अपराध मे अपने देश मे पहले अ ग्रेजो के शासनकाल मे 'काले पानी का दड' दिया जाता था। अण्डमन टापू को भेजा जाना ही काले पानी का दण्ड था, जहां अपराधी पर्याप्त लम्बी अवधि बिताकर, यदि जीवित रहा तो घर लौट आता था। 'प्रिय' का 'रूप-दर्शन' भी एक भारी अपराध है, जिसका दण्ड काले पानी से क्या कम हो सकता है ? अत. जिसने उसकी कजरारी आखे देख ली, उसकी शीघ्र मुक्ति सम्भव नही है—वह उन्ही मे बध जाता है। रूप को 'अतृप्त-जलधि' उचित ही कहा गया है। जिस प्रकार समुद्र का पानी खारा होने के कारण उससे किसी की प्यास नही बुझती-तृप्ति नही होती, उसी प्रकार प्रिय के रूप को बार-बार आखों से पीकर भी उसकी प्यास नही बुझती। वे अतृप्त ही रह जाती है। वह जलधि जो प्यास को सर्वदा जगाए ही रहता है—'अतृप्ति-जलधि' ही कहा जाएगा। 'नीलम की नाव निराली'—प्रेमी दर्शक की आँखो के लिए प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार अगणित अनूठे सौन्दर्य-चित्र आधुनिक कवियो ने अभिनव अप्रस्तुत-योजनाओ द्वारा प्रस्तुत किए हैं—

धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन।
किसी अज्ञात विश्व की निकल
वेदना-दूती सी तुम कौन।
—झरना प्रसाद।

धरा पर झुकने की क्रिया को प्रार्थना सदृश कहने में उपमा की नवीनता ही नही है, अपितु भाव का मूर्त-रूप भी निहित है। एक स्थान पर तारो की अ गूरो से उपमा देने मे अभिनवता है, प्रयोगात्मकता है—

उडने दो मुझको तू उस तक, जिसने है अंगूर बखेरे
सिर पर नीलम की थाली मे, वन मे ना सखि,
वनमाली मे।
—हिमकिरीटिनी : माखनलाल चतुर्वेदी।

मालोपमा की परम्परा बहुत प्राचीन है और वह आधुनिक कवियों के लिए भी प्रिय है। ऐसी अप्रस्तुत-योजनायें कवि की भावुकता की परिचायक हैं। जिन कवियों ने अनुकरण-प्रियता को अपनाया है उनमें न तो भावुकता ही दृष्टिगत होती है और न अनुभूति ही। खड़ीबोली की कविता मे पंत जी की 'छाया' शीर्षक कविता ने मालोपमा के लिए बड़ा यश अर्जन किया है। इसकी कतिपय पंक्तियाँ निम्नांकित हैं:—

गूढ़ कल्पना-सी कवियों की
अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियो के गम्भीर-हृदय-सी
बच्चों के तुतले-भय-सी;

भू-पलकों पर स्वप्न-जाल-सी
स्थल-सी, पर, चंचल जल-सी,
मौन-अश्रुओं के अंचल-सी,
गहन-गर्त में सम-तल-सी?

तुम पथ-श्रांता द्रुपद-सुता-सी
कौन छिपी हो अलि! अज्ञात
तुहिन-अश्रुओं से निजगिनती
चौदह दुखद-वर्ष दिन-रात?

तरुवर की छायानुवाद-सी
उपमा-सी, भावुकता-सी
अविदित भावाकुल, भाषा-सी,
कटी-छँटी नव-कविता-सी;
—पल्लव।

श्री मैथिलशरण गुप्त ने भी उद्धव की उक्तियों को विस्तारपूर्वक मालोपमा का रूप दिया है—

अहा गोपियों की यह गोष्ठी वर्षा की ऊषा-सी
व्यस्त ससम्भ्रम उठ दौडे की स्खलित ललित भूषा-सी
श्रमकर जो क्रम खोज रही हो उस भ्रमशीला स्मृति-सी

एक अतर्किक स्वप्न देख कर चकित चौकती धृति-सी
हो-होकर भी हुई न पूरी ऐसी अभिलाषा-सी
कुछ भटकी आशा-सी अटकी भावुक की भाषा-सी
सत्य धर्म रक्षा हो जिससे ऐसी मर्म मृषा-सी
कलश-कूप मे पास हाथ मे ऐसी भ्रान्त तृषा-सी।

—द्वापर

ऊपर के दोनो उदाहरणो मे उपमान मूर्त और अमूर्त दोनो ही प्रकार के आए है। इन उपमानों मे भावुकता, नवीनता और कलात्मकता है। गुप्त जी के प्रस्तुत उदाहरण में उपमान-योजनायें बहुत कुछ छायावादी ढंग की हैं।

छायावादी काव्य कल्पना-प्रधान है। इस युग मे कल्पना और कविता एक दूसरे के पर्यायवाची हो गये। प्रसाद जी हिमालय को 'विश्व कल्पना' कहते है। निराला जी तो कविता मात्र को 'कल्पना के कानन की रानी' मानते है। पंत जी पल्लव को 'कल्पना के ये विह्वल बाल' बादल को 'त्रिभुवन की कल्पना महान' तथा छाया को 'कवियों की गूढ़-कल्पना-सी' मानते है। इस प्रकार छायावादी कवियो ने अपनी कल्पना-प्रियता के कारण बहुत ही भव्य, उदात्त और महान् उपमान-विधान किए है। छायावादी कवि सामान्य का विरोधी और वैयक्तिक वैशिष्ट्य का समर्थक था। सामान्य की अपेक्षा विशेष के प्रति विशेष प्रेम अन्य साहित्य के रोमान्टिक कवियो में भी देखा जाता है। आंग्ल-साहित्य के रोमान्टिक कवि ब्लैक स्पष्ट शब्दों मे घोषणा करता है कि सामान्यीकरण करना मूर्खता है। प्रतिभा की विशेषता केवल विशेषीकरण मे ही है। सामान्य ज्ञान वह ज्ञान है जो मूर्खों के पास होता है सामान्य प्रकृति क्या है? है कोई ऐसी वस्तु? सामान्य ज्ञान क्या है? है कोई ऐसी वस्तु? ठीक-ठीक कहे तो सम्पूर्ण ज्ञान ही विशेष है।[1]

रोमान्टिक कवियो का यह कथन स्वाभाविक है; क्योकि वे कल्पना-जीवी है। कल्पना की इसी अत्यधिक महत्ता के कारण छायावाद युग के औपम्य-विधान और मध्यकालीन कवियों के औपम्य-विधान मे बहुत अन्तर है। मध्यकालीन कवियो की उपमान-योजना सर्वदा सामान्य व्यक्ति के अनुभव की पहुँच में होती थी। उनकी

---

1 To generalize is to be an idiot. To particularize is the alone distinction of merit. General knowledge are those that idiots possess......

......what is General Nature? It there such a thing? what is General knowledge? Is there such a thing? Strictly speaking all knowledge is particular.

Romantic imagination C. M *Bowra*

उपमान योजना मे छायावादी कवियों की निजी तरग की अतिशयता नही होती थी। उनका उपमान जगत सीमित था। उनके अप्रस्तुत वर्ण्य-विषय की केवल व्याख्या करते थे, किसी नए वर्ण्य-विषय की सृष्टि नही; किन्तु छायावादी कवियों के उपमान व्याख्याता और सृष्टा दोनों हैं। मध्ययुगीन कवि पूर्व-परिचित वस्तुओं को कल्पना-शक्ति के द्वारा अधिक-से-अधिक थोडा-सा अलंकृत कर आकर्षक बना सकते थे; उन वस्तुओं मे वे किसी सर्वथा अदृष्ट दृश्य का दृश्य-प्रदर्शन करने मे असमर्थ थे। मध्य-युग और छायावादी कवि की अप्रस्तुत-योजना की कल्पना मे यही अन्तर है। मध्य-युगीन और छायावादी कल्पना मे अन्तर स्पष्ट करने के लिए बिहारी और निराला की यमुना-सम्बन्धी कविताओं की तुलना की जा सकती है। जमुना नदी को देखकर बिहारी कहते हैं—

सघन, कुञ्ज छाया—सुखद, शीतल सुरभि समीर।
मन ह्वै जात अजौ वहै, वा जमुना के तीर॥

जब कि निराला 'यमुना' को देखते ही घोर स्वप्न मे डूब जाते है और उनकी आखो के सामने राधा-कृष्ण और गोपियों की विविध क्रीडाओं के चित्रों की लडी लग जाती है। निराला दिखाई पडने वाली सामान्य यमुना के ऊपर अतीत की यमुना को एकदम नए और मोहक रूप मे पुनर्जीवित कर देते हैं, वस्तुत: निराला एक नयी यमुना की सृष्टि कर डालते है, जिसका आरम्भ इस प्रकार होता है—

स्वप्नों-सी उन किन आँखो की
पल्लव—छाया मे अम्लान
यौवन की माया-सा आया
मोहन का सम्मोहन ध्यान?

गन्ध-लुब्ध किन अलि बालो के
मुग्ध हृदय का मृदु गुन्जार
तेरे दृग-कुसुमो की सुषमा
जाँच रहा है बारम्बार?
—परिमल।

यमुना के किनारे बिहारी को केवल तीन चीजे दिखाई पडती है; सघन कुंज सुखद छाया तथा शीतल सुरभित समीर। और ये तीनो ही चीजे प्रत्यक्ष है। इस प्रस्तुत दृश्य से उनके हृदय मे जिस अप्रस्तुत दृश्य की याद आती है, उसके वे संकेत भर करके रह जाते हैं। मध्य-युगीन कवि को इतना अवकाश नही है कि यहाँ थोड़े विस्तार मे जाकर अप्रस्तुत दृश्य का वर्णन करे। वह प्रस्तुत से इतना बधा हुआ है कि कल्पना के अप्रस्तुत-लोक मे उड़ने की क्षमता ही नही है। उसका हृदय अत्यन्त मर्यादित है। इसके विपरीत निराला प्रस्तुत दृश्य की सर्वथा उपेक्षा करके अप्रस्तुत

का ही कल्पना-लोक रच देते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि अप्रस्तुत-योजना मे निराला राधा-कृष्ण की उन्ही लीलाओ की याद करते है, जिनका वर्णन भागवत, सूरसागर रासपचाध्यायी आदि मध्ययुगीन काव्यो मे हो चुका है, परन्तु यदि निराला के सस्मृत लीला-चित्रो की तुलना उन काव्यो के वर्णन से की जाये तो दो युगो का अन्तर स्पष्ट हो जायेगा। निराला के चित्र भागवत, सूरसागर, रास पचाध्यायी आदि के चित्रो से अधिक कल्पना-प्रवण और मोहक है।

इसी तरह यदि कालिदास के मेघदूत' और पत के 'बादल' की तुलना की जाये तो छायावादी स्वच्छन्द कल्पना की विशेषता स्पष्ट हो जायेगी। कालिदास ने वर्णन-क्रम मे बस कही-कही मेघ को उपमाओ और उत्प्रेक्षाओ से अलकृत किया है, अन्यथा सम्पूर्ण काव्य मे यथार्थ जगत का ही वर्णन है। पूर्व मेघ मे मेघ का पथ बतलाने के बहाने रास्ते मे पडने वाले प्रान्तो और नगरो का वर्णन किया गया है तथा उत्तर मेघ मे भी अधिकाशत अलकापुरी, अलकापुरी के नर-नारियो, यक्ष-प्रिया तथा प्रिया की विरह व्यथा का वर्णन है। इस तरह कालिदास के काव्य मे कल्पना कम, वास्तविकता अधिक है। इसके विपरीत पत जी के 'बादल' मे आदि से लेकर अन्त तक बादल के विविध रूपो की तुलना की गई है और फिर उन रूपो को मूर्त करने के लिए अद्भुत अप्रस्तुतो की योजना की गई है, जैसे बादल का यह कथन—

बुद्बुद् द्युति तारक-दल-तरलित
तम के यमुना-जल मे श्याम
हम विशाल जम्बाल जाल-से
बहते हैं अभूल, अविराम;

दमयंती-सी कुमुद-कला के
रजत करो मे फिर अभिराम
स्वर्ण हंस-से हम मृदु ध्वनि कर
कहते प्रिय सन्देश ललाम।
—पल्लव।

पन्त के बादल मे आद्योपान्त इसी प्रकार कल्पना की ऊंची उडान है और कल्पना के ये चित्र मन मे अद्भुत ढग का विस्मय और आह्लाद उत्पन्न करते हैं। कालिदास के मेघ की तरह ये किसी गहरी अनुभूति मे हमे निस्सन्देह नही डुबाते, किन्तु इन चित्रो की विलक्षणता से मन मे जो आह्लादपूर्ण कम्पन मालूम होता है, वह अपूर्व है। इससे एक अद्भुत और अपरिचित प्रदेश मे मानस-यात्रा करने की सुखद अनुभूति होती है।[1]

---

१ छायावाद—डा० नामवर सिंह

'काव्य मे रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक निबन्ध मे कल्पना के ऊपर लिखते हुए आचार्य शुक्ल ने भी स्वीकार किया है कि आज-कल तो भाव की बात दब सी गयी है, केवल इसी का नाम लिया जाता है, क्योकि 'कवि की नूतन सृष्टि केवल इसी की कृति समझी जाती है।'[१]

कहीं-कहीं छायावादी कवियो की उपमान योजना बहुत ही असमर्थ भावा-पकर्षक और फीकी हुई है। कभी-कभी आवश्यकता से अधिक भावुक होना भी वैसे ही अप्रिय लगता है, जैसे अभावुक होना।

'स्याही की बूद' पर निम्नलिखित फीके काल्पनिक वाग्जाल को देखिये—

गीत लिखती थी मैं उनके—
अचानक, यह स्याही का बूंद
लेखनी से गिर कर, सुकुमार
गोल तारा-सा नभ से कूद,
सोधने को क्या स्वर का तार
सजनि, आया है मेरे पास ?

अर्ध-निद्रित-सा, विस्मृत-सा,
न जागृत-सा, न विमूर्छित-सा,
अर्ध जीवित-सा, न विमर्षित-सा,
न हर्षित-सा, न विमर्षित-सा,
गिरा का है क्या यह परिहास ?

एकटक, पागल-सा यह आज,
अपरिचित-सा, वाचक-सा कौन,
यहाँ आया छिप-छिप निर्व्याज,
मुग्ध-सा, चिंतित-सा जड-मौन,
सजनि, यह कौतुक है या रास ?

योग का-सा यह नीरव तार,
ब्रह्म-माया का-सा ससार,
सिधु सा घट मे, – यह उपहार
कल्पना ने क्या दिया अपार,
कली मे छिपा बसत–विकास ?

—पल्लव।

---

१ चिन्तामणि, प्रथम भाग।

पंतजी की इसी प्रकार की अमार्मिक-अप्रस्तुत योजना का एक और उदाहरण देखिये :—

इन्दु दीप से दग्ध शलभ शिशु ! शुचि उलूक अब हुआ विहान,
अधकारमय मेरे उर मे, आवो छिपजावो अनजान।

इसकी आलोचना करते हुये पण्डित रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "सबेरा होने पर नक्षत्र भी छिप जाते है, उल्लू भी। बस इतने से साधर्म्य को लेकर कवि ने नक्षत्रो को उल्लू बना डाला है और वे साफ-सुथरे ही क्यो न हो, उन्हे अंधेरे उर मे छिपने के लिये आमन्त्रित कर दिया गया है। पर इतने उल्लू डेरा डालेगे तो मन की क्या दशा होगी ? कवि को यदि अपने नैराश्य और अवसाद की व्यन्जना करनी ही थी तो नक्षत्रो को बिना उल्लू बनाये भी काम चल सकता था।"[1]

उपमान-योजना मे साम्य भ्रामक न होना चाहिये, क्योकि भ्रामक साम्य से उपमान-योजना मे अपूर्णता रहती है। यथा—

हृदय कुसुम की खिली अचानक,
मधु से भीगी वे पाखें॥
—कामायनी : प्रसाद।

कवि को यहाँ हृदय और कुसुम दोनों का साम्य देखना चाहिये, किन्तु कवि ने इसका ध्यान नही दिया है। कुसुम मे तो पंखडियाँ होती हैं, लेकिन हृदय के पख नहीं होते। अत: साम्य अपूर्ण है।

मैथिलीशरण गुप्त द्विवेदी-युग के सर्वोत्कृष्ट कवि माने जाते है, किन्तु द्विवेदी युग के पश्चात् जब छायावादी कविता का प्रचलन हुआ तो वह उससे भी काव्य-रचना मे प्रभावित हुये जिसका प्रमाण उनका प्रमुख काव्य ग्रथ 'साकेत' की-गीतात्मक शैली है। यद्यपि यह रामायण की प्राचीन कथा से सम्बन्धित है, किन्तु इसकी वर्णन-शैली मे आधुनिकता का पुट है। "साकेत"-जिसका समय द्विवेदी युग का अन्त और तृतीय उत्थान का आरम्भ है तथा फलस्वरूप जिसमे प्राचीनता और नवीनता का सम्यक् मिश्रण हुआ है—की उद्भावना बहुत बाद मे हुई। उस समय इनमे मुक्तक गीतो की प्रवृत्ति के अत्यधिक विकास के कारण महाकाव्य के लिए अधिक स्थान नही था। फलत: 'साकेत' मे मुक्तक गीतो की अधिकता है। भाषा मे लाक्षणिकता और अभिव्यक्ति की अधिकता है। महाकाव्य की चार प्रमुख विशेषताओ मे से जीवन की विविध दिशाओं को सामने लाने वाली कथा-वस्तु, वर्णन, सम्वाद तथा भावाभिव्यजना मे से 'साकेत' में केवल (अन्तिम) दो विशिष्ट-

---

१ रस-मीमासा —प० रामचन्द्र शुक्ल।

तायें ही लक्षित होती है । 'साकेत' की कथावस्तु भी महाकाव्य के उपयुक्त नहीं है और इसमें नवीन वर्णनों का ही आधिक्य है, इसलिए 'साकेत' को महाकाव्य नही कहा जा सकता । इसकी असफलता का प्रधान कारण कवि की गीतात्मक प्रवृत्ति है ।"[१] गीतात्मकता और लाक्षणिक अभिव्यक्ति छायावाद की प्रमुख विशेषतायें है जिनका पर्याप्त प्रभाव 'साकेत' पर प्रतीत होता है । अतः अप्रस्तुत योजना की दृष्टि से उनका यहाँ अनुशीलन करना असंगत न होगा ।

छायावादी कवियों ने अप्रस्तुत-योजना मे सादृश्य और साधर्म्य की अपेक्षा प्रभाव-साम्य की ओर अधिक ध्यान दिया है । 'साकेत' मे इस प्रकार की रमणीय अप्रस्तुत योजनायें पर्याप्त मात्रा मे प्राप्त होती हैं । उदाहरणार्थ—

वढी तापिच्छ-शाखा-सी भुजायें,
अनुज की ओर दायें और बायें,
जगत संसार मानों क्रोड-गत था,
क्षमा-छाया तले नत था, निरत था ।

इस उदाहरण के प्रस्तुत-अप्रस्तुत मे साधर्म्य अवश्य है, किन्तु प्रधानता प्रभाव-साम्य की ही है । राम के क्रोड मे क्षमा की शान्ति और एक प्रकार की सघनता थी । क्षमा शब्द से सघनता व्यक्त होती है और उधर राम के क्रोड मे भी यही बात है । शब्द मे राम की श्यामता का प्रतिबिम्ब है । इसी प्रकार—

रथ मानो एक रिक्त घन था,
जल भी न था न वह गर्जन था ।

इस उदाहरण में "सूने रथ की रिक्त घन से समानता दिखाई गई है । रथ का और घन का कोई सादृश्य नही, परन्तु रिक्त घन में जो अभाव और सूनापन होता है, वह रथ की शून्यता (राम हीनता) को व्यक्त करने मे बडा सहायक हुआ है । रीते बादल जिस प्रकार अपना सब कुछ लुटा कर मन्थरगति से शान्त लौटते हैं, इसी प्रकार वह रथ राम को छोड कर आ रहा था । घोड़ों मे कोई उत्साह नहीं था । सारथी व्यथा-विमूढ था । अतः उसकी गति मे किसी प्रकार का जीवन नही रह गया था । वह उस सूने पथ पर अनन्त मार्ग में मन्थर गति से खिसकते हुये बादलों के समान चल रहा था । यहाँ साधर्म्य ही है, प्रभाव-साम्य भी रिक्तता के भाव में मिल जाता है ।"[२]

साकेत मे कही-कही बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप को बडे सूक्ष्म कौशल से ग्रहण कर सादृश्य की बड़ी ही सूक्ष्म व्यंजना की गई है । यथा—

---

१. आधुनिक काव्यधारा —डा० केसरी नारायण शुक्ल ।

२. साकेत— एक अध्ययन —डा० नगेन्द्र

जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज-पंक्ति, अचल-सी काया।
उस सरसी-सी आभरण-रहित सित वसना।
सिहरे प्रभु माँ को देख हुई जड रसना।

इसमे कौशल्या के विधवा-वेष का चित्रण किया गया है। कवि लंका का वर्णन करने के पश्चात् सीता की स्थिति की ओर संकेत करना चाहता है—उसमें वह मूर्त उपमेय के लिये अमूर्त उपमान का प्रयोग करता है—

उस भव-वैभव की विरक्ति-सी वैदेही व्याकुल मन में।

इसी प्रकार लक्ष्मण के शक्ति लग जाने के कारण शोक-विह्वल समाज में, जड़ी सहित हनुमान का आगमन, कवि को ऐसा लगा : मानो बुरे स्वप्न मे वीर आ गया उद्‌बोधन-सा।

इसी प्रकार अमूर्त उपमेयो के मूर्त उपमान जुटाये जाते है। इस प्रकार के अप्रस्तुत-विधान के लिए बहुत ही सूक्ष्म निरीक्षण की आवश्यकता होती है। 'साकेत' मे ऐसे प्रयोग मिलते है—

फिर भी एक विषाद वदन के तपस्तेज मे बैठा था,
मानो लौह-तन्तु मोती को बेध उसी मे बैठा था।

इसमे विषाद को लौह-तन्तु और माण्डवी के तेज-दीप्त मुख-मण्डल को मोती कहा गया है। जिस प्रकार मोती के नैसर्गिक सौंदर्य मे लौह-तन्तु बाधक होता है, उसी प्रकार विषाद के कारण माण्डवी का तपस्तेज नैसर्गिक रूप मे प्रकाशित नही हो रहा था।

गुप्त जी ने 'अभिलाषाओं की करवट' के समान 'वैसी हिलती-डुलती अभिलाषा' कहा है। प्रकृति के तत्वो पर मानव-व्यापारो का आरोपण कर पश्चिमी ढंग का मानवीकरण भी किया है। इस प्रकार के चित्रणों में प्रस्तुत तो होता है प्रकृति और अप्रस्तुत अधिकाशत. नारी होती है या कोई अन्य चेतन चित्र। जैसे—

अरुण संध्या को आगे ठेल
देखने को कुछ नूतन खेल,
सजे विधु की वेंदी से भाल
यामिनी आ पहुँची तत्काल।

एक और उदाहरण देखिये जिसमे सूक्ष्म भावनाओं पर मानव-व्यापारों का आरोप किया गया है—

श्रुति-पुट से लेकर पूर्वस्मृतियाँ खड़ी यहाँ पर खोल,
देख आप ही अरुण हुये हैं उनके पाण्डु कपोल।

इसमें पूर्वस्मृतियों को नारी-रूप में चित्रित कर प्रभाव-वृद्धि की गई है।

प्रात:काल की अप्रस्तुत-योजना के उदाहरण मे सूर्योदय के कारण तारागण के विलीन होने और धीरे-धीरे रश्मियों के पृथ्वीतल पर पहुँचने का सुन्दर वर्णन है—

सखि, नील नभस्सर से उतरा,
यह हंस अहा तरता-तरता,
अब तारक-मौक्तिक शेष नहीं,
निकला जिनको चरता-चरता।
अपने हिम-बिन्दु बचे तब भी,
चलता उनको धरता-धरता।
गड़ जायें न कण्टक भूतल के
कर डाल रहा डरता-डरता।

इस प्रकार की गुप्त जी की वर्णन-शैली पर छायावाद के माध्यम से पाश्चात्य अभिव्यंजना-कौशल का प्रभाव है। छायावादी काव्य मे इस प्रकार के प्रचुर प्रयोग हुए हैं। संस्कृत-साहित्य मे रूपकातिशयोक्ति, अन्योक्ति, अप्रस्तुत-प्रशंसा आदि अलंकारों में किसी सीमा तक इस प्रकार का वर्णन होता है, किन्तु इन अलंकारों मे प्रस्तुत की चेतना सदा बनी रहती है। अत:, उतनी सुन्दर अप्रस्तुत-योजनाा नही हो पाती, जितनी कि पाश्चात्य शैली में। पश्चिमी शैली मे प्रस्तुत की उतनी चिन्ता नही रहती। वहाँ तो व्यंग्य होता है।

इतने विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि छायावाद खड़ी बोली कविता का स्वर्ण युग है। इसमे अभिनव उपमानों का बहुत ही भव्य विधान हुआ है। छायावादी "अभिव्यक्तियों में जो छाया की स्निग्धता है, तरलता है, वह विचित्र है। अलंकारों के भीतर आने पर भी ये उनसे कुछ अधिक हैं।"[१]

अप्पय दीक्षित का उपमा के विषय में कहना है कि उपमा नटी की भाँति सहृदयों की चेतना का भूमिका-भेद से अनेक रूप-रंगों में अनुरंजन किया करती है। इस कथन का पूर्ण विकास हमें छायावादी कविता में प्राप्त होता है। इसमे उपमा विभिन्न रूपों मे अभिहित, लक्षित एवं व्यंजित हुई है। छायावादी कविता की उपमान-योजना मे लाक्षणिकता का प्राधान्य देखकर हिन्दी के अनेक आलोचको ने इसे लक्षणकाव्य की संज्ञा प्रदान की है। छायावादी कवि ने अन्तर्मुखी होने के कारण, वस्तु के सूक्ष्म अंतरंग को ग्रहण करके उपमान योजना का प्रयास किया है,

१ काव्य, कला तथा अन्य निबंध—जयशंकर प्रसाद

किन्तु अन्तर्मुखी कवि के सूक्ष्म का इतना आधिक्य हुआ कि प्रतिक्रियास्वरूप कवि बहिर्मुखी होकर स्थूल-चित्रण की ओर अग्रसर हुआ।

जिस प्रकार द्विवेदी-युगीन स्थूल के प्रति सूक्ष्म ने विद्रोह किया और परिणाम स्वरूप छायावाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावादी सूक्ष्म के प्रति स्थूल ने विद्रोह किया और प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवाद का उद्भव हुआ। छायावादी कवि पृथ्वी पर पैर न रख कर आकाश मे अपना 'नीड' बसा कर, जीवन की वास्तविकता और कठोरता से पलायन कर, कल्पना-वैभव, सूक्ष्म-सौदर्य मे रमण करने लगे थे। इसीलिए इसका पतन हुआ और प्रगतिवादी काव्य की रचना प्रारम्भ हुई। कार्लमार्क्स के समाजवादी सिद्धांतो के आधार पर रूस मे वर्गहीन समाज की स्थापना सन् १९१७ में होने लगी थी, जिसका शनैः शनैः प्रभाव भारत पर भी पड़ा। रूसी क्राति का द्विवेदी-युग के कवियों ने भी स्वागत किया था।[1]

---

१ (अ) समदर्शी फिर 'साम्य रूप' धर जग मे आया।
समता का सन्देश गया घर-घर 'पहुँचाया॥
धनद-रक का ऊँच-नीच का भेद मिटाया।
विचलित हो वैषम्य बहुत रोया-चिल्लाया॥
काँटे बोये राह मे फूल वही बनते गये।
साम्यवाद के स्नेह मे सुजन सुधी सनते गये॥

× × ×

फैले है ये भाव नया युग लाने वाले।
घोर क्रान्तिकर उलट–फेर करवाने वाले॥
कलि मे सतयुग सत्यरूप धर लाने वाले।
समता का सदेश सप्रेम सुनाने वाले॥
समता सरि की बाढ मे ऊँच-नीच बह जायगा।
समतल जल की ही तरह एक रूप रह जायगा॥

राष्ट्रीय मत्र (१९२१) से 'साम्यवाद' शीर्षक कविता : गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'। आप इस प्रकार की राष्ट्रीय कविताएँ 'त्रिशूल' उपनाम से करते है।

(आ) ईश्वर ने इस जग को रच कर सबको स्वत्व समान दिया।
नही किसी का अब तक उसने न्यूनाधिक सम्मान किया॥
मुट्ठी बाँधे भेज सभी को हाथ पसारे बुलवाता।
और सभी को आदि अन्त मे धरा–सेज पर सुलवाता॥
औरो के श्रम से धन पाकर चैन उडाता भाग्य नही।
यही स्वार्थ है, यही कपट है, यही अनय है, पाप यही॥
दोनो को तुम बैल बना कर निलज बने हो मनुज वृथा।
प्रथा यही क्या सदा रहेगी ? रह जावेगी अयशकथा॥

× × ×

भारत में मार्क्सवादी सिद्धांतों का अनुयायी एक कम्यूनिष्ट दल सन् १९२७ ई में स्थापित हुआ था, जिससे कुछ युवक सम्मिलित थे।

हिन्दी-साहित्य में इस विचारधारा का स्वर तब स्पष्ट हुआ जब सन् १९३६ मे लखनऊ मे 'प्रगतिशील लेखक सघ' की प्रथम बैठक प्रेमचन्द जी के सभापतित्व मे हुई। उन्होने अपने अध्यक्ष पदीय भाषण मे काव्य मे उपयोगितावाद मत का प्रचार किया।[1] यही से आधुनिक हिन्दी-कविता ने एक नवीन मोड लिया। किन्तु इसका यह तात्पर्य नही है कि इसके पूर्व इस विचार-धारा की रचनाये लिखी ही नही गई। लिखी अवश्य गईं, किन्तु किसी साहित्यिक सगठन या आन्दोलन के रूप मे नही। सन् १९३४ मे लाहौर से रामेश्वर 'करुण का ब्रजभाषा मे सात सौ दोहों का प्रगतिवादी विचारधारा का सग्रह 'करुण सतसई' के नाम से प्रकाशित हो चुका था। इसकी प्रशसा पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी और प० जवाहरलाल नेहरू ने भी की थी। 'करुण' जी रूसी साम्यवाद से प्रभावित थे। उन्होने अपनी सतसई मे किसानो आदि का बडा ही मार्मिक चित्र प्रस्तुत किया है।

सन् १९३६ के पश्चात् प्रगतिवादी विचारो से बहुत लोग प्रभावित हुए। यहां तक कि छायावादी कविता के प्रमुख कवि सुमित्रानन्दन पन्त प्रगतिवादी कविता के प्रमुख सूत्रधार बने। पत ने 'पल्लव' की भूमिका के रूप मे छायावाद का घोषणा-पत्र प्रस्तुत किया था और उन्होने ही सन् १९३८ मे 'रूपाभ' मे कवियों को कल्पना-लोक से उतर कर जीवन की यथार्थता और कठोरता से सघर्ष करने तथा उसे ही कविता का विषय बनाने का आदेश दिया।[2] प्रगतिवाद के प्रमुख कवि केदारनाथ,

---

जहाँ आय से करका लेखा बढ कर देखा जाता है।
साम्यवाद भी वही प्रकट हो भीषण रूप दिखाता है॥
—राष्ट्र-भारती (१९२१) से 'साम्यवाद' शीर्षक कविता—रामचरित उपाध्याय।

१ नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही-केवल उपदेश-विधि मे अन्तर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशो द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का यत्न करता है, साहित्य ने अपने लिए मानसिक अवस्थाओ और भावो का क्षेत्र चुन लिया है। मुझे यह कहने मे हिचक नही कि मैं और चीजो की तरह साहित्य को उपयोगिता की तुला पर तौलता हूँ। फूलो को देख कर हमे इसलिए आनन्द होता है कि उनसे फलो की आशा होती है।

२ इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र रूप धारण कर लिया है, इससे प्राचीन विश्वासों मे प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गये हैं। श्रद्धा अवकाश मे पलने वाली सस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो

नागार्जुन, रामविलास, शिवमगल सिह 'सुमन', गजानन माधव मुक्तिबोध, त्रिलोचन, रागेयराघव, नेमिचन्द जैन और भारतभूषण अग्रवाल है। निराला, नरेन्द्र और अंचल की भी कुछ कविताए प्रगतिवाद के अन्दर आती है। प्रारम्भ मे पन्त जी उस दिशा की ओर मुडे अवश्य, किन्तु प्रगतिवादी भौतिकता का अधिक दूर तक साथ न दे सके। आरम्भ मे तो उन्हे साम्यवाद मे ही स्वर्णयुग के दर्शन हुए—

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण।
मुक्तलिखित मानवता करती मानव का अभिवादन।।
—युगवाणी।

पत ने कहा कि सत्य, शिव, सुन्दर आदि मूल्यो को किसी दर्शन के ससार मे शोध करना व्यर्थ है क्योकि वे सब मानव मे ही निहित है—

वहाँ खोजने जाते हो
सुन्दरता औ आनन्द अपार
इस मासलता से है मूर्छित
अखिल भावनाओ का ससार
—युगवाणी।

डा० रामविलास शर्मा ने छायावादी कवियो पर व्यग्य करते हुये कहा—

शुद्ध कला के पारखी कहते है उस पार की,
इस दुनियाँ की कौन कहे भवसागर मे कौन बहे।
—प्रथम तार सप्तक

जन-मन के भावो को व्यक्त तथा जन-मन को प्रभावित करने के लिए कविता का रूप परिवर्तन ही आवश्यक समझा गया। एक स्थान पर सोलीवेनोस्की ने लिखा है कि समाजवाद का कवि होने के लिए न केवल समाजवाद के सिद्धान्तो मे विश्वास आवश्यक है, प्रत्युत् काव्य की शैली मे भी परिवर्तन आवश्यक है। कवि को ससार के प्रति अपना दृष्टिकोण ही परिवर्तित कर देना चाहिए।[1] पत ने जन-मन के भावो को नवीन शैली मे व्यक्त कर देने के लिए कहा—

उठा है और काव्य की स्वप्न-जडित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप से सहम गई है। अतएव इस युग की कविता सपनो मे नही पल सकती। उसकी जडो को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड रहा है।
'रूपाभ', पत का सम्पादकीय, वर्ष १, अक १, जुलाई १९३८।

1 To become an artist of Socialism means, if you come from intelligentia that not only must you be convinced that the ideas of Socialism are correct, but that you must alter your previously formsd style; you must change your way of looking at the world. *Solivenosky*

कवि नवयुग की चुन भाव-राशि,
नवछन्द आमरण रस-विधान।
तुम बन न सकोगे जन-मन के,
जाग्रत भावो के गीत यान ।।
—युगवाणी ।

जन-मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने के लिये अनपेक्षित दुरूह शैली अप्रिय प्रतीत हुई—

तुम वहन कर सकोगे जन-मन मे मेरे विचार ।
वाणी मेरी चाहिए तुम्हे क्या अलंकार ।।
—ग्राम्या : पत ।

इस प्रकार की विचारधारा ने, छायावादी युग मे कविता-कामिनी का अभिनव शृ गार करने की जो परम्परा चल रही थी, उसे समाप्त कर दिया और निरलकार, नीरस, प्रचारात्मक रचना का प्रचलन चल पडा। सूक्ष्मता के स्थान पर स्थूलता प्रतिष्ठित हुई। छायावाद मे अधिकाश उपमान प्रकृति के क्षेत्र से होते थे और प्राय. अमूर्त होते थे, किन्तु प्रगतिवादी कविता मे उपमान अधिकतर समाज से सम्बद्ध और मूर्त होने लगे। यथा—

१. लहू की बूदो-से
जलते हैं बिजली के बल्ब सूनी सड़को पर-लाल-लाल ।
डा० रामविलास शर्मा ।

२ कोयले की खान की
मजदूरिन-सी रात
बोझ ढोती तिमिरका
विश्रात-सी अवदात .
—रागेय राघव ।

३. लेखनी ही है हमारा फार
धरा है पट, सिन्धु है मसिपात्र
तुच्छ से अति तुच्छ जन की जीवनी हम लिखा करते
कहानी, काव्य, रूपक गीत. .
—नागार्जुन ।

४ चल रहे देवता थे
ढेल-सी बड़ी-बड़ी आंखें लिये—

५ अधिकांश जनता का
रद्दी की टोकरी-सा जीवन है;
सज्ञाहीन, अर्थहीन,
बेकार, चिरे-फटे टुकड़ों-सा पड़ा है।

--केदारनाथ अग्रवाल।

६. मटक मुँह बिचकाता है पथ पर पागल
बूढ़े स्तन लटकाए नंगी भाग्य-देवता
फूटे बर्तन-सी तिरस्कृता जब मानवता

७ दो लालटेन से नयन दीन,

×

लकडी का खोखा वक्ष रिक्त—

—गजानन माधव मुक्तिबोध।

कविता मे सफल उपमान-योजना प्रेषणीयता लाती है, प्रभावोत्पादन करती है, भावों का प्रसार एवं रसोत्कर्ष करती है। इन विशेषताओ से शून्य उपमान सहृदय-हृदय को सदैव अनाकर्षक ही रहेगे। ये गुण उपमान योजना मे तभी आ सकते हैं, जबकि कवि स्वय मर्मग्राही हो और जड़-चेतन प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण हो। यद्यपि उपमान योजना कल्पना द्वारा की जाती है, फिर भी जो जितना अनुभवी होगा उसके उपमान उतने ही अधिक हृदयग्राही और मार्मिक होगे। प्रगतिवादी कवियों की कविता का विषय जन-जीवन होता है। अत: उनके उपमान भी जन-जीवन से सम्बन्धित और सामयिक होते हैं। उदाहरण के लिये ऊपर दिये गये उद्धरणों में पाँचवें और छठवें मे तिरस्कृत, दलित, शोषित और संतप्त मानवता की तुलना चिरे-फटे टुकडो और फूटे बर्तनों से की गई है। ये उपमान मूर्त होने के साथ समाज से सम्बन्धित होने के कारण बहुत ही स्पष्ट और सर्वग्राह्य हैं, साथ ही हृदय मे त्रस्त मानवता के प्रति दयाभाव तथा पीड़ा उत्पन्न करते हैं। जिस प्रकार फटे कपड़े और फूटे बर्तन उपेक्षित होते हैं उसी प्रकार आज के युग मे मानवता तिरस्कृत है– यही दोनो मे साधर्म्य है। दूसरे उदाहरण की भी उपमान योजना मे नवीनता और भावुकता है। कोयला ढोते-ढोते मजदूरिन जैसे काली हो जाती है, वैसे ही कालीरात है। रात अन्धकार का बोझ ढोती है और अन्धकार का प्रतीक स्वरूप कोयला भी काला है। जैसे रात को अन्धकार से होने वाले सुख-दुख का ज्ञान नहीं होता, वैसे ही मजदूरिन को भी कोयले से सोना बनाने की बात का ज्ञान कैसे हो सकता है। इसमे नवीनता और भावुकता के साथ यथार्थवादिता भी है। किन्तु पहले उदाहरण में जिसमे लाल बिजली के बल्बों की तुलना रक्त की बूँदों से दी गई है, सार्थक नहीं

प्रतीत होती। बिजली के बल्बों और लहू की बूंदों मे बड़ा अन्तर है। केवल लालिमा के कारण लहू की बूंदें उपमान रूप मे लाई गई है। इस उपमान मे न तो रूप-आकार का बोध होता है और न भाव-बोध मे ही सहायता मिलती है। इसी प्रकार चौथे और पांचवें उदाहरण मे आँखो की तुलना ढेला और लालटेन से की गई है जो अत्यन्त असुन्दर और नितान्त निरर्थक है। जिन नेत्रों के लिए कवि-समाज कमल, मीन आदि की-उपमान योजना करता रहा है, उन्हीं को लालटेन कहना कितना कुरुचिपूर्ण प्रतीत होता है। यदि दीन नेत्रों की उपमा लालटेन से दी गई है, तो क्या प्रसन्न नेत्रो की उपमा गैस बत्तियो से दी जायेगी। इस प्रकार की नवीनता कदापि अभिनन्दनीय नही है। समर्थ और सिद्ध कवियो के अप्रस्तुत इस प्रकार के नही होते। यदि दीन नेत्रो का वर्णन करना है तो वे कहेगे—

मद भरे नलिन नयन मलीन है,
अल्प जल मे या विकल लघु मीन है ?
या प्रतीक्षा मे किसी की सर्वरी,
बीत जाने पर हुये ये दीन हैं ?
—परिमल : निराला।

मेरे कहने का तात्पर्य यह नही है कि परम्परा से अलग होकर चला ही न जाय, अवश्य चला जाय, किन्तु मार्ग मर्यादित और विद्वानो द्वार प्रशंसित हो। अप्रस्तुत योजना का सौन्दर्य इसी मे है कि सुन्दर प्रस्तुत के लिए सुन्दर अप्रस्तुत और असुन्दर के लिये असुन्दर अप्रस्तुत लाये जांय। आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि सिद्ध कवियों की दृष्टि ऐसी ही अप्रस्तुता की ओर जाती है जो प्रस्तुतों के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कान्ति, कोमलता, प्रचण्डता, भीषणता, उग्रता, उदासी, अवसाद, खिन्नता जगाते हैं।[1] अनुपयुक्त उपमान किस प्रकार रसास्वादन मे बाधक होते है, इसका उदाहरण देखिये—

गगन की निर्द्वन्द्वता जग की अधेरी बन गई है,
भूंकते कुत्ते लटकती जीभ थर-थर कापती ज्यो,
रात के चिथडे न नभ को, ढाक पाते और चेचक—
के पके वे दाग मे तारे, लगे है झलमलाने।
—रागेयराघव।

अन्धकारपूर्ण गगन की निर्द्वन्द्वता के लिए कुत्ते की थरथराती जीभ का उपमान और तारों के लिये चेचक के पके दाग के उपमान बडे ही कुत्सित हैं।

---

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० ६९०।

प्रथम उपमान मे न तो सादृश्य है और न साधर्म्य। तारों के अप्रस्तुत चेचक के पके दाग सादृश्य नही लाते है एवं दागो का परिणाम बहुत घृणोत्पादक है। इसी प्रकार सूर्य को शशक कहना भी समीचीन एवं सगत नही प्रतीत होता—

आज का दिन बादलो मे खोजता था
दृष्टि मे आकर शशक जैसे
चपल से चपल होकर
सघन-पथ श्याम बन मे खो गया था।
—त्रिलोचन।

यहाँ दिन का बादलो मे खो जाना सूर्य का बादलों मे ओझल हो जाना तात्पर्य है। इस भाव को हृदयगम करने के लिये कवि ने जो सश्लिष्ट योजना की है, उसमे वह दृश्य सम्मुख नृत्य करने लगता है। शशक का दृष्टिगोचर होते-न-होते त्वरितगति से सघन श्यामल वन मे खो जाने की योजना बडी चमत्कारिक है, किन्तु सूर्य को शशक कह देने से समानता निरर्थक हो जाती है। इस प्रकार के भावापकर्षक उपमानो का तो प्रगतिवादी काव्य मे बाहुल्य है--

लोहे की ढाल पर उभर कीलों-सी तारिका प्रखर,
युग-युग के अन्धकार से मानव को फिर उबार लूँ।
—रांगेयराघव।

आकाश की अगणित जगमग तारिकाओ का उपमान उभरी हुई कीलों वाली लोहे की ढाल कहने मे भाववर्द्धन नही होता, अपितु भावापकर्षण होता है। ऐसे उपमान धर्मगतन्यूनता के कारण निरर्थक होते है। उपमान उपमेय के अनुरूप हों और उसमे उपमेय की हीनता न हो तो वह सफल कहा जा सकता है, अन्यथा इस प्रकार की उपमान योजनाये न तो भाव-प्रकाशन मे समर्थ होगी और न सौन्दर्य-सृष्टि मे।

यद्यपि प्रगतिवादी काव्य मे मूर्त-उपमान-योजनाओ का ही आधिक्य है, किन्तु यत्र-तत्र अमूर्त उपमान के भी प्रयोग प्राप्त होते हैं।

सिनेमा के गीत-सा यह
वर्गबद्ध समाज
गूँजते है शब्द, जिनका
अर्थ केवल शब्द।
—रांगेय राघव।

अमूर्त की मूर्त अप्रस्तुत योजनायें भी हुई हैं, किन्तु बहुत कम; जैसे—

"किन्तु उर मे क्या उदासी शाप-सी ।[१]
प्रत्येक चेहरे पर लिखी जो राख-सी ।।"

प्रथम पंक्ति मे उपमेयोपमान दोनो अमूर्त हैं; किन्तु द्वितीय पंक्ति मे राख मूर्त है। यद्यपि योजना मे भव्यता नही है, किन्तु राख से उदासी का भाव अभिव्यक्त हो जाता है।

प्रगतिवादियों ने अन्योक्ति—पद्धति का भी सहारा लिया है। अन्योक्ति मे प्रस्तुत—अप्रस्तुत का सुन्दर चमत्कार-विधान होता है। इसमें अप्रस्तुत सामने लाया जाता है और प्रस्तुत व्यंग्य होता है। इसमे अप्रस्तुत ऐसे स्वाभाविक और परिचित होने चाहिए कि पाठक को व्यंग्य अर्थ सहज ही बोधगम्य हो जाय। अन्योक्ति के लिये यह आवश्यक हैं कि अप्रस्तुत योजना हृदय की कोई-न-कोई भावभूमि हो और प्रस्तुत मे जीवन को स्पर्श करने की क्षमता हो। जैसे—

जल उठे है तन बदन से, क्रोध मे शिवके नयन-से,
खा गये निशि का अँधेरा, हो गया खूनी सबेरा।
जग उठे मुरदे बेचारे बन गये जीवित अंगारे,
रो रहे थे मुंह छिपाये आज खूनी रंग लाये ।।
— केदारनाथ अग्रवाल।

कोयले पर की गई यह अन्योक्ति बहुत ही मार्मिक और भावव्यंजक है। इसमे श्रमिक हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। कोयला काला होकर भी अग्नि से जल कर लाल हो उठता है, वैसे ही आज कुरूप और मलिन मजदूर भी चेतना के उद्बोधन से चेतना मे लाल अंगारे बन गये है।

सादृश्य के आधार पर लाये गये उपमानो मे रूप और आकार मे भी समानता परमावश्यक है, अन्यथा वे चमत्कारक नही होते। निम्नलिखित की द्वितीय पंक्ति मे किरणों को दिनकर की छवि वह्निवाण कहा गया है, जो लोक-व्यवहार-सिद्ध है।

फूटा प्रभात फूटा विहान,
छूटे दिनकर के कर ज्यो छवि के वह्निवाण।
—भारतभूषण अग्रवाल।

किन्तु, तारा की उपमा पारा से देना उपयुक्त नही प्रतीत होता—

पेड़ो के पल्लव से ऊपर उठता धीरे-धीरे ऊपर,
अन्धकार चन्द्रिका—स्नात तरुओं पर जैसे पारा।
—त्रिलोचन।

---

(१) काव्य मे अप्रस्तुत योजना—पं० रामदहीन मिश्र से उद्धृत पृ० १४६

पारा का प्रयोग ऐसा प्रतीत होता है मानो केवल तारा के साथ तुक मिलाने के लिये किया गया है। तारा और पारा मे कोई सादृश्य नही है। पारा का स्वभाव चंचल है। यह कभी स्थिर नही रह सकता। तारा धीरे-धीरे ऊपर उठता है, किन्तु पारा मे यह असम्भव है। कवि ने केवल दोनो की श्वेतता के आधार पर यह सादृश्य—कल्पना कर डाली है। कही-कही अवश्य गुण-क्रिया के साम्याधार पर अवश्य ही बहुत सुन्दर व्यजनाये हुई है। यथा—

अजली का फूल क्या अगार लेकर मै खडा हू।
मै पहाडो से अभय अब तक उठाये सिर खडा हू॥
—रागेयराघव।

पर्वत अटल होता है। वह कभी नत नही होता। यदि एक ही पर्वत हो, तो भी सिर उठा कर खडे होने वाले की अचलता, विशालता दुर्भेद्यता आदि गुणो का द्योतक होता है, किन्तु यहा अनेक पहाड है। ये सब इसकी व्यजना करते हैं कि अनेक पहाडो के उक्त गुण उस व्यक्ति मे विद्यमान है। इसी प्रकार और देखिये—

"सूने गगन मे आँख फाडे
कल्पनाप्रिय युवक कवि-सी सहज निष्प्रभ
खडी है विभवहीन पहाडियाँ।" [१] —नेमिचन्द

इसमे लिग-वचन के उपमेयोपमान मे वैषम्य होते हुये भी ये मूर्त उपमेयोपमान एक चित्र को प्रस्तुत कर देते हैं।

प्रगतिवाद छायावाद के विरोध मे उठा था। अत छायावादी अमूर्त वायवी उपमान योजना के स्थान पर स्थूल, माँसल, उपमान लाये गये और सुन्दर, विशेष तथा कोमल की जगह कुरूप, सामान्य एव परुष विधान किये गये। प्रतिक्रिया के जोश मे और नवीनता की उमग मे इनकी रचनाओ मे ऐसी अप्रस्तुत योजनाए कम हुई हैं, जिनसे भाव भली भाँति प्रकाशित हो सकें। कही-कही पर सुन्दर अप्रस्तुत योजनायें भी हुई हैं। जैसे—

बज उठा दूर साहस निर्भय हुकार उठा ज्यो काल पुरुष।
बुझ गई ज्योति काले बादल सहसा ढँक ले इन्द्रधनुष॥
—रागेयराघव।

बुझी ज्योति के लिये काले बादलों से इन्द्रधनुष के ढँक लेने की उपमा दी गई है। यहाँ उपमेय का रूप बुझाने की क्रिया है और उसके लिये ज्योतिस्वरूप इन्द्रधनुष को ढंकने के लिये बादल लाये गये हैं। उपमा का यह असाधारण स्वरूप

---

(१) काव्य मे अप्रस्तुत योजना—प० रामदहीन मिश्र मे उद्धृत पृ० १४२

है। इसी प्रकार मरु की चमचमाहट को हंसी कहना भी चमत्कार उत्पन्न करता है—

यह हसी तुम्हारे अधरो की पाती न छिपा जिसका क्रदन,
जैसे सागर का वेष किये फिरता मरु का प्यासा कण-कण,
फिर भी सागर मरु दोनो की छाती मे हाहाकार सतत।

—शिवमगलसिह 'सुमन'

प्रथम पक्ति उपमेय है और दूसरी उपमान। मरु की चमचमाहट से हसी की समता है। कण-कण की प्यास क्रदन है, फिर भी मरु को समुद्रवेषधारी बनाने का कारण यह है कि सागर मे जैसे सतत हाहाकार है, वही मरु मे भी है। इन दोनो के उर मे हाहाकार-सा ही क्रदन भरा हुआ है। इसमे एक उपमान दूसरे उपमान को साथ लिये हुए हृदय के हाहाकार को बडा ही प्रभावशाली बना देता है। जन-जीवन से सम्बन्धित एक अन्य अप्रस्तुत योजना देखिये—

हिनहिनाते अश्व भीतर कूदते है भूमि रह-रह,
और ये सईस बैठे हाकते है जिन्दगी को
सिर्फ भाडे के लिये ज्यो एक गाडी जा रही।

—रागेयराघव।

कमाने के अतिरिक्त गाडीवान का कोई दूसरा उद्देश्य नही रहता, वैसे ही सईस भी अपनी सईसी के पैसे से ही मतलब रखे जीवन व्यतीत कर रहे है, उसके सुख-दुख या उसके उद्देश्य से कोई तात्पर्य नही है।

पानी बरस जाने के पश्चात् भी ओरोतियो से पानी टपकता रहता है। कवि ने इसी को उपमान बना कर चित्रण मे नूतनता, यथार्थता और सार्थकता ला दी है—

सूखे खेत पडे होते ऊसर को देते हुए चुनौती।
उसकी आँखो की कोरो से टपका करती नित्य ओरोती।।

—शिवमगलसिह 'सुमन'

इसी प्रकार सावन-भादो की झडी लगने की प्राचीन अप्रस्तुत योजना को लक्षणा द्वारा नवीन रूप दिया है—

आहों मे ज्वलित अंगार उर मे सिन्धु के शतज्वार,
वाणी में प्रभजनभार सावन और भादो शून्य,
आँखों में रचे अनिमेष गाने को अभी अवशेष।

—शिवमगलसिह 'सुमन'।

निम्नलिखित 'भैसागाडी' शीर्षक कविता मे शोषित गावो के उठे हुए कच्चे घरो को फोडो से उपमा देने मे कितनी वेदना भरी हुई है—

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे, कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोडो-से, हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।
—भगवतीचरण वर्मा।

प्रगतिवादी कविता की उपमानयोजना पर इतना विचार करने के पश्चात् हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि इस विचारधारा के कवियों ने परम्परागत उपमानों का त्याग जान-बूझ कर किया है और नवीन उपमानो की योजना की है, चाहे वे भावप्रकाशन मे समर्थ हो या असमर्थ। इनके अधिकांश उपमान समाज के निम्नवर्गीय ग्रामीण-श्रमिक-जीवन से सम्बन्धित होते है, अत स्पष्ट होते है। प्रगतिवादी कवियो की उपमान योजना का उद्देश्य प्रस्तुत का मार्मिक रूपविधान करना या अनुरूप-भावमयता लाना नही होता, अपितु एन-केन-प्रकारेण पाठक के मस्तिष्क को किसी विशिष्ट विचार की ओर मोड कर व्यजित भाव को पूरी कटुता से समक्ष प्रस्तुत कर देना होता है। प्रस्तुत-अप्रस्तुत की रूप-आकार या गुण-क्रिया की अनुरूपता के अभाव मे इस युग की उपमान-योजना को उच्चकोटि का नही कहा जा सकता।

प्रगतिवाद के प्रचलन के कुछ समय पश्चात् प्रथम 'तारसप्तक' के प्रकाशन से अधुनिक मनोविश्लेषणवादी प्रयोगवादियो की कविता प्रारम्भ होती है। इस दल के नेता अज्ञेय' है और इनके अतिरिक्त प्रमुख कवि गिरिजाकुमार माथुर, भवानी-प्रसाद मिश्र, शमशेरबहादुरसिंह, नरेशकुमार मेहता और धर्मवीर भारती है। इस नई कविता के विषय मे पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी का निष्कर्षरूप मे कथन सर्वथा सत्य ही है कि 'प्रयोगवादी रचनाएँ पूरी तरह काव्य की चौहद्दी मे नही आती। वे अतिरिक्त बुद्धिवाद से ग्रस्त है। प्रयोगवादी रचनाएँ वैचित्र्यप्रिय है, वृत्ति का सहज अभिनिवेश उनमे नही। प्रयोगवादी रचनाएँ वैयक्तिक अनुभूति के प्रति ईमानदार नही है और सामाजिक उत्तरदायित्व को भी पूरा नही करती।[१]" प्रयोग वादियो की नवीन अर्थात् असाधारण स्पृहा ने कविता के अन्तरग और वहिरग दोनो मे परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया है। नये-नये उपमानो की योजना की गई है। नवीन उपमानों के विषय में प्रयोगवादियो का तर्क है—

अगर मैं तुमको
ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नही कहता,
या शरद् के भोर की नीहार न्हाई कुई,
टटकी कली चम्पे की
वगैरह, तो

१ आधुनिक साहित्य पृ० ७८

नही कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि, केवल यही—
ये उपमान मैले हो गये है
देवता इन प्रतीको के कर गये है कूच।
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है
—अगर मै यह कहूँ—
बिछली घास को तुम
लहलहाती हवा मे कलगी छरहरे बाजरे की ?
(क्यो तुम नही पहचान, पाओगी)
—हरी घास पर क्षण भर अज्ञेय।

निस्सदेह 'बिछलीघास' तथा 'छरहरी कलगी' जैसे उपमान कविता में शुष्कता, लय, गति-हीनता लाते है। इसी प्रकार सम्प्रदाय के एक अन्य कवि कहते है कि—

चादनी चदन सदृश
हम क्यो लिखें ?
मुख हमे कमलो सरीखे क्यो दिखें ?
हम लिखेगे
चांदनी उस रुपये-सी है कि जिसमे
चमक है, पर खनक गायब है।
हम कहेगे जोर से
मुह घर अजायब है
जहाँ पर बेतुके, अनमोल, जिन्दा और मुर्दा भाव रहते है।

इस प्रकार के विलक्षण, व्यर्थ के और बेतुके उपमानो मे न तो प्रभावात्मकता है, न आकर्षण और न उपयुक्तता ही। इन्हे चाहे जितने जोर से कहा जाय, अरण्य-रोदन ही रहेगा।

इस वर्ग की उपमान-योजनाओ मे शूलो की अधिकता और फूलो की न्यूनता है। इसका कारण यह है कि प्रस्तुत की अनुरूपता का ध्यान न रख कर जब अप्रस्तुत योजना की जाती है, तब उसमे प्रेषणीयता या भावबोध कराने की क्षमता नही होती। यथा—

क्वार की सूनी दुपहरी
श्वेत गरमीले रुएँ से बादलों मे
तेज सूरज निकलता फिर डूब जाता।
—गिरिजाकुमार माथुर।

'रुएँ' से यहाँ कवि का तात्पर्य बालो से है। वृद्धावस्था मे शरीर के रोयें श्वेत हो जाते हैं, किन्तु वे यत्र-तत्र ही होते है। उनमे घनता नही होती। बादलो मे सघनता है, तभी तो उनमे सूरज छिप जाता है। सघनता न होने से रोओं का गरमीला होना भी प्रकृति-विरुद्ध है। अत. कवि का अभिप्रेत बादल ही प्रतीत होता है; पर रुएँ तदर्थ-बोधक नही है। इससे तो पत जी की श्वेत बादलो के लिये धुनी हुई रुई की अप्रस्तुत योजना कही उत्तम है। बादलो के लिए धुनी हुई अप्रस्तुत योजना असगत नही कही जा सकती। बादलो मे जलांश अधिक होता है। उसमे तेज सूरज के डूबने से गरमी पैदा नही हो जाती, क्योंकि बूदे गरम नही होती। इसमे गरमीले की संगति नहीं बैठती। वैसे तो गरमीला विशेषण भी व्यर्थ है। बाल स्वत· गर्म होते है। गरमी के लिख देने से रुएँ गर्म नही हो सकते। इसी प्रकार और देखिये—

छोटे-छोटे बिखरे से, शुभ्र बादलो को पार करता—
मानो कोई तपक्षीण कापालिक
साध्य-साधना की व्रत बुझी, झरी
बची-खुची राखपर धीमे पैर रखता—
नीरव चपलतर गति से
चाँद भागा जा रहा है—
द्रुतपद।

—अज्ञेय।

यहाँ श्वेत बादल मूर्त है। इसके उपमान मे साध्य-साधना की बची-खुची राख है। यह उचित नही प्रतीत होता, क्योकि मूर्त के अमूर्त उपमान वही लाना सगत है, जहाँ ऐसे उपमान वस्तुबोध कराने मे सक्षम नही है। न यहाँ राख मूर्त है और न पैर रखना ही। लक्षण द्वारा यह अर्थ लिया जा सकता है कि कापालिक अपना तप खोकर जैसे शोक करता हुआ आगे बढता है, वैसे ही चन्द्रमा भी मन्द प्रकाश हो कर बादलों मे भागता हुआ दिखाई पड़ता है। पर यह अर्थ खीच-खीच कर ही लाया जाता है, योजना के साम्य से नही। शुभ्र बादलो के बीच से चन्द्रमा के जाने मे योजना से कुछ भी सहायता नही मिलती, अपितु इस सादृश्य को समक्ष प्रस्तुत करने मे बाधक बन जाती है। इधर कापालिक तो धीरे-धीरे पैर रखता है और उधर चाँद द्रुतगति से भागा जा रहा है। बादलो की गति से चाँद भागता-सा प्रतीत होता है। यह बात कापालिक मे नही है। इस प्रकार की जटिल अनुपयुक्त उपमान योजनाओ से रसास्वादन में व्यवधान उपस्थित होता है। ये उपमान सहृदयता और सरसता के द्योतक नही हैं, वरन् बुद्धि-व्यायाम के प्रतिफलन हैं। धूलि-कण-वृद्धि का वर्णन करते हुए कहते हैं—

द्रौपदी के पट जैसा, वारिधि के तट जैसा
वामन की मांग-सा, अनन्त भूख की पुकार-सा दुरंत
बढता चला गया व्योम भर छा गया।

—अज्ञेय।

इसमे धूलि-कणों के विस्तार का बोध कराना कवि का उद्देश्य है। इसके लिये कई उपमान लाए गये हैं, किन्तु प्रत्येक का धर्म एक नही है। पहली पंक्ति की दोनो योजनाओ मे धर्म लुप्त है। पट और तट दोनों ही असीम और अनन्त कहे जा सकते हैं, पर दोनो के रूप एक नही हैं। पट में अनन्तता है और उसका अन्त अदृश्य रूप मे है या है ही नही, यह कहा जा सकता है। इसका विस्तार साडी के आकार तक ही सीमित माना जा सकता है, पर समुद्र के तट की सीमा है। उसका अन्त अदृश्य के गर्भ मे नही है, उसका विस्तार अपरिमित है। इससे इनके लुप्त धर्म एक से नही होगे। अत: धूलि-कण के लिए भिन्न-भिन्न धर्म मानने होगे। एक धर्म के लिये भिन्न धर्म के उपमानो को लाना उपमेय की जटिलता का कारण हो जाता है। वामन की याचना धूलि-कण-सी अनन्त नहीं है। वामन ने केवल तीन पग भूमि की याचना की थी। वामन की माप को अवश्य अनन्त कहा जा सकता है। उसी धूलि-कण मे भूख को दुरतता लायी गयी है। भूख की दुरतता का अर्थ प्रबलता लिया जा सकता है, अनन्तता नही। इस प्रकार के भिन्न धर्मोपमान वस्तु-बोध या भावबोध में साधक न होकर बाधक ही होते है।

यदि कोई उपमान किसी का वास्तविक चित्र प्रस्तुत करता है; किन्तु उपमान मे सौन्दर्य-भाव-विधायिनी शक्ति नही है, तो वह काव्य मे अनपेक्षित और अग्राह्य है। प्राचीनों ने जघा को गजशुंड का उपमान दिया है। इसका कारण उसका चढ़ाव-उतार है। पर यह भाव-वृद्धि मे सहायक नही होता। कदली-स्तम्भ के उपमान मे तो कुछ स्निग्धता, शीतलता आदि गुण हैं, जो समता मे लाए जा सकते है। ये बाते गजशुंड मे नही है।

एक दृढ़ पैर का ही स्थान है
और वह दृढ़ पैर मेरा है,
गुरू, स्थिर, स्थाणु-सा गड़ा हुआ
तेरी प्राण-पीठिका पर लिंग-सा खड़ा हुआ

—अज्ञेय।

'लिंग-सा खडा हुआ' यथार्थ उपमान क्या वीभत्सता का चित्र नही खडा कर देता ? उपमान के अनेक दोष दृढ़ पैर उपमेय की मिट्टी पलीद कर देते है।"[१] उपमान योजना मे पर्याप्त पर्यवेक्षण और सुरूचि की आवश्यकता है। इस प्रकार के

---

१ काव्य मे अप्रस्तुत योजना—पं० रामदहीन मिश्र, पृष्ठ १५४।

उपमान नवीनता की मादकता में कवि को चाहे भले ही प्रिय हों, किन्तु परिष्कृत रुचि वालों को ये उपमान सदैव अरुचिपूर्ण रहेंगे।

यत्र-तत्र प्रयोगवादी कविता मे सुन्दर भी अप्रस्तुत-योजनायें प्राप्त होती हैं। यथा:—

प्राण तुम्हारे मुख पाटल से हिमकण जैसे कोमल।
ज्योत्स्ना जैसे चचल परिमल से वे शब्द भरे थे॥

—अज्ञेय।

इसमें रूपक-गर्भित उपमा है। उपमा मे रूपक के योग से चित्र में पूर्णता आ गई है। इसमे उपमेय 'शब्द' अमूर्त है और उपमान मूर्त है। पाटल से परिमल झरता है और मुख से शब्द। आरक्त मुख को पाटल कहना जैसा सुरंग सरसाता है, वैसा ही परिमल शब्दो का श्वास-सुरभि-सवलित सौष्ठव। पाटल पर जो हिमकण सचित होते हैं वे आर्द्र तो होते ही हैं, कोमल भी होते है। शब्द भी श्रवण-सुखद और स्नेहार्द्र है। पाटल पर ज्जोत्स्ना पडती है और उसके हिलने-डुलने से चचल प्रतीत होती है। शब्द भी मानसिक अस्थिरता से चचल हैं। इस प्रकार यहाँ के सभी उपमान अदृश्य शब्द के स्वरूप-बोध मे समर्थ है। यद्यपि शब्द अमूर्त हैं, फिर भी उपमान-योजना ऐसी हुई है कि आकर्षक चित्र प्रस्तुत हो जाता है।

कवि सम्प्रदायवादी होता है। यद्यपि प्रयोगवादी परम्परा का सर्वथा बहिष्कार करते हैं, फिर भी वे उसमे मुक्त नही हो सके हैं। उन्होने भी परम्परानुकूल हास्य को श्वेत, शुभ्र स्वरूप प्रदान किया है, रक्तिम नही—

खुल सी गयी हैं दो पहाडो की श्रेणियाँ
और बीच मे अबाध अन्तराल मे
शुभ्र धौत—
मानो स्फुट अधरो के
बीच से प्रकृति के
बिखर गया हो कल हास्य
एक क्रीड़ा लोल अमित लहर-सा।

—अज्ञेय।

इसी प्रकार माथे को फूल जैसा चढाना कहना, विश्वास की दृढता को हिमालय कहना और हृदय की पवित्रता के लिये गगा प्रयुक्त करना परम्परा-निर्वाह का सूचक है—

माथे को फूल जैसा
अपने चढ़ा दे जो,
रुकती-सी दुनियाँ को
आगे बढ़ा दे जो
मरना वही अच्छा है ।
—द्वितीय 'तारसप्तक'—भवानी प्रसाद मिश्र

जग का विश्वास ही हिमालय है ।
भारत का जन-मन ही गंगा है ।।
—द्वितीय 'तारसप्तक' : शमशेर बहादुर सिंह ।

हिमालय और गगा विश्वास की दृढ़ता और मन की शुचिता के प्रतीक स्वरूप उपमान हैं । कुछ उपमान ऐसे भी होते है जिनके एक ही गुण को लेकर उपमेय में साम्य-स्थापना की जाती है । इस परिस्थिति मे कवि उपमा के सारे दोषो को भूल जाता है और उक्त प्रकार के उपमानो की योजना करता है । इस प्रकार के अप्रस्तुतो का भी प्रयोग प्रयोगवाद मे हुआ है—

क्यों जब मैं ज्वाला में बत्ती-सी बढती हूं आगे ।
अग्निशिखा से तुम ऊपर ही ऊपर जाते भागे ।।

—अज्ञेय ।

कवि के कहने का तात्पर्य है कि नायिका नायक से संकट मे मिलना चाहती है, किन्तु नायक अग्निशिखा के सदृश दूर ही दूर आगे भागा जाता है, नायिका के मिलने के प्रयास को नायक ठुकरा देता है । इसमे उपमान की केवल बढना और भागना क्रिया को ही कवि ने साम्य के लिये समक्ष रक्खा है । अन्य धर्मों को नहीं । बत्ती बढती है तो स्नेह को भी साथ-साथ लेती चलती है, इस धर्म को कवि ने नहीं अपनाया है । इधर ज्वाला की भांति भागे जाने मे उपेक्षा का भी भाव नहीं है, जलाने का भी, दुखाने का भी, अपनाते नही अपितु जलाते हो—इस भाव को भी नही ग्रहण किया है । यदि नायिका केवल बत्ती और नायक शिखा के रूप में होते तो ये सभी भाव इसमें आ जाते, किन्तु भागना और बढ़ना को ही लेकर कवि ने अप्रस्तुत-योजना की है ।

प्रयोगवादी कवियों की उपमान योजना में नवीनता अवश्य है किन्तु अपेक्षित प्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता का अभाव है । जैसे--

गोमती के तट
दूर पेंसिल रेख–सा वह बांस झुरमुट
चिकने चीड़–सी वह बांह अपनी टेक पृथ्वी पर यहाँ

\+ \+ \+ \+

उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा 'श्वेत अंचल'
—द्वितीय 'तारसप्तक' : नरेशकुमार मेहता।

इसी प्रकार उदास कल्पना को सफेद बर्फ पर बिछी मलीन खिन्न धूप कहना भी उचित नही प्रतीत होता—

आज तक उदास यों कभी दिखी न रूप-सी।
सफेद बर्फ पर बिछी मलीन खिन्न धूप-सी॥
—धर्मवीर भारती।

बर्फ पर धूप पड़ने वाले प्राकृतिक दृश्य तो बहुत सुन्दर होते हैं। उस पर चाहे जैसी धूप पड़े वह दृश्य सदैव कान्ति का ही द्योतक होता है। इस प्रकार के सौन्दर्य और भव्यता का मनमोहक वर्णन कविवर कालिदास ने अपने ग्रन्थो मे बहुत किया है। यह वर्णन बहुत कुछ उसी प्रकार है जिस प्रकार महादेवी जी ने कहा है—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारों की जाली।
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली॥
—यामा।

इन पंक्तियो की आलोचना करते हुये पं० नन्ददुलारे बाजपेयी ने कहा है कि "यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का झिलमिल तारों की जाली ओढ़ कर जाना, बड़ी ही सरल और मार्मिक कल्पना है। किन्तु उजियाली का रोना हम साधारणत. कही नही देखते ? वह प्राय: हँसती ही आती है। यहाँ हमे अपनी अभ्यस्त अनुभूतियो को दबा कर यह कल्पना करनी पड़ती है कि प्रभातकाल की नमी अथवा ओस-आँसू के रूप मे उजियाली रो रही है।"[1]

प्रेमिका के स्वरूप-चिन्तन मे कवि के हृदय मे इतनी गहरी पवित्रता भरी हुई है कि वह कहता है कि—

प्रात सद्य: स्नात
कंधो पर बिखरे केश
आँसुओ से ज्यों
धुला वैराग्य का संदेश
चूमती रह-रह
बदन की अर्चना की धूप
वह सजल निष्काम
पूजा-सा तुम्हारी रूप।
—ठंढा लोहा : धर्मवीर भारती।

---

१. हिन्दी-साहित्य : बीसवी शताब्दी —पं० नन्ददुलारे बाजपेयी।

रूप की सुन्दरता और पवित्रता से पूजा की उपमा देने में बहुत ही सार्थकता और प्रभविष्णुता आ गई है। यह उपमान-योजना बहुत कुछ छायावाद के ढंग की है।

प्रयोगवादी कवियों की अप्रस्तुत योजना मे नवीनता है, वे सहृदय–हृदय के लिये सौन्दर्य-विधान करने मे सक्षम नही है। इसका कारण है बौद्धिकता का अत्यधिक आग्रह और सहृदयता की उपेक्षा। काव्य-रचना के लिये दोनों के सामन्जस्य की अपेक्षा है। किसी एक के अभाव मे रची गई रचना शाश्वत साहित्य के अन्तर्गत नहीं आ सकती। इतने समय के पश्चात् भी क्या प्रगति-प्रयोगवाद ऐसा कोई कवि उत्पन्न कर सका है, जिसे प्रसाद, निराला, पत, महादेवी मे से किसी एक की तुलना में रक्खा जा सके। यह है नयी कविता की निरर्थकता। यदि इसी प्रकार इनका असाधारण के प्रति मोह बना रहा तो ये लोग सदैव 'कवियश· प्रार्थी' ही बन कर प्रयोग करते रहेगे और परिणामस्वस्वरूप कभी भी सफल कवि-पद पर नही आसीन हो सकेंगे।

६

आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रतीक-विधान

हमारे प्राचीन साहित्य मे प्रतीक-विधान का बडा महत्त्व रहा है, किन्तु आधुनिक हिन्दी-साहित्य मे प्रतीक शब्द जिस अर्थ मे व्यवहृत होता है, सस्कृत-साहित्य मे उसका उस अर्थ मे प्रयोग शायद नही हुआ है। सस्कृत-साहित्य-शास्त्र मे 'उपलक्षण' शब्द आया है जिसके अनुसार जब कोई वस्तु-नाम इस रूप मे प्रयुक्त हो कि वह वस्तु उस गुण मे अपने समान अन्य वस्तुओ का भी ज्ञान करा दे ता वह शब्द 'उपलक्षण' रूप मे व्यवहृत कहा जायगा। श्रीमद्‌भागवत मे प्रतीकवाद के लिये परोक्ष-वाद शब्द प्रयुक्त हुआ है। भगवान श्रीकृष्ण गुण-दोष-व्यवस्था का स्वरूप और रहस्य समझाते हुये उद्धव से कहते है—

वेदा ब्रह्मात्वविषयास्त्रिकाण्ड विषया इमे।
परोक्षवादा ऋषय परोक्ष मम व प्रियम्॥ ११। २१। ३५॥

अर्थात् वेद मे तीन काण्ड है—कर्म, उपासना और ज्ञान। इन तीन काण्डों के द्वारा प्रतिपादित विषय है—ब्रह्म और आत्मा की एकता, सभी मन्त्र और मन्त्र-दृष्टा ऋषि इस विषय को खोल कर नही, गुप्त भाव से बतलाते है और मुझे भी इस बात को गुप्तरूप से अर्थात् प्रतीकात्मक शैली मे कहना ही अभीष्ट। है

हमारे प्राचीन साहित्य मे प्रतीकात्मक शैली का पर्याप्त प्रयोग उपलब्ध होता है और आधुनिक हिन्दी-कविता में भी प्रतीक-योजना हुई है, किन्तु अग्रेजी के 'सिम्बल' के पर्याय के रूप मे।

आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रतीकों की सत्ता की बडी महत्ता है। काव्य में प्रतीक-विधान द्वारा सौन्दर्य उत्पन्न करने की वृत्ति प्राय: न्यूनाधिक मात्रा मे सभी कवियों में लक्षित होती है। प्राचीनकाल मे जब कवि काव्य-रचना के लिए काव्यशास्त्र

का आश्रय लेते थे, तब स्वतंत्र प्रतीक – विधान की प्रवृत्ति बहुत कम दृष्टिगत हुई। प्रतीक उपमा या रूपक के संक्षिप्त संस्करण हैं, अथवा रूपकातिशयक्ति कह सकते हैं जिसमें उपमेय के स्थान पर उपमान प्रयुक्त होता है। इस रूप में उपमेय और उपमान का संबंध पूर्व निश्चित होने के करण अर्थ-ज्ञान में कठिनाई नहीं होती, किन्तु इसके सहज ज्ञान के लिये थोड़ा–बहुत शास्त्रीय ज्ञान अपेक्षित है। आधुनिक कवियों के काव्य में स्वच्छन्दता-प्रवृत्ति का प्राबल्य है। प्रतिभा–सम्पन्न कवियों ने भी उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि अलकारों की गंगा–यमुनी एक साथ प्रस्तुत कर अलंकारशास्त्र की अनभिज्ञता नहीं, अपितु उसके प्रति उपेक्षावृत्ति व्यक्त की है। आधुनिक कवि ने कविता•कामिनी का नये ढग से शृंगार करने का प्रयास किया। यह अभिनव प्रतीक-योजना भी आधुनिक कवियो की स्वच्छन्दता–प्रवृत्ति का ही परिणाम है।

प्रतीको का प्रसार शब्द से लेकर महाकाव्य तक है। बडे-बड़े महाकाव्यो तक को भी प्रतीकात्मक काव्य कहा जाता है। काव्य मे प्रतीकों का मुख्य उद्देश्य भावोत्तेजन है। हमारे काव्य मे प्रतीक "प्राय: अलकार-प्रणाली के भीतर उपमान के रूप मे प्रयुक्त किये गये है। प्रतीक और उपमान मे सबसे बड़ा अन्तर यही है कि प्रतीक के लिये सादृश्य के आधार की आवश्यकता नही, केवल उसमें भावोद्बोधन की शक्ति होनी चाहिये; पर उपमान से सादृश्य के आधार का रहना आवश्यक है।"[१] प्रतीक–प्रयोग किसी अस्थिर मस्तिष्क का सूचक नही है,[२] जैसा कि एक अ ग्रेजी-आलोचक ने कहा है, अपितु कल्पनाशील, उर्वर मस्तिष्क का पारिचायक है। काव्य मे सफल प्रतीक-विधान के लिये कवि के पास प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण हेतु मार्मिक अन्त दृष्टि होनी चाहिये। प्रतीक-विधान मे व्यजना का गुण जितना ही अधिक होगा, उतनी ही अधिक कवि को प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति मे सफलता प्राप्त होगी। अन्योक्ति प्रतीकाश्रित ही होती है। जिस अप्रस्तुत मे जितना ही अधिक प्रतीकत्व होगा, उस पर की गई अन्योक्ति उतनी ही सुन्दर और मार्मिक होगी। इसीलिये कल्पना व भाव–जगत को आन्दोलित करने के लिये प्रतीकों मे व्यञ्जकता परमावश्यक मानी गई है।[३]

---

(१) काव्य मे अभिव्यंजनावाद—लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'-पृ० ११८।

2. Symbolism is the mark of an infirm mind. It is the measure of our weakness and not our strength. It is produced and propogated by those who are unable to rise above materialistic level.

— A Critical Study of Greek Philosophy
W. T. Stace, P. 21.

3. The greater the suggestive quality of the symbol used, the more answering emotion it looks in those to whom it is

आधुनिक हिन्दी कवियो ने पाश्चात्य प्रतीकवाद के कतिपय रूपों से प्रेरणा ली है। उदाहरणार्थ मैटरलिक का प्रतीकवाद, ईसाई मत का प्रतीकवाद और फ्रान्सीसी प्रतीकवादी आन्दोलन ने आधुनिक हिन्दी-कवियो को प्रभावित किया है। मैटरलिक के प्रतीकवाद का हिन्दी और बगला दोनो साहित्यो पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। मैटरलिक ने अधिकाशत नाटक ही लिखे है। उसने अपने नाटको मे स्वप्न-ससार की भाव-भूमि को ग्रहण किया है। उसके पात्र स्वप्न-ससार के विविध प्रतीक प्रतीत होते है। उसके नाटको को पढते समय पाठक स्वप्न-जगत मे भ्रमण करता हुआ अनुभव करता है। "भारत मे रवीन्द्रनाथ टैगोर मैटरलिक की नाटकीय कला से प्रभावित हुये थे। हिन्दी मे प्रथम बार मैटरलिक का प्रभाव रवीन्द्रनाथ के माध्यम से ही आया। जयशकर प्रसाद का 'कामना' नाटक रवीन्द्रनाथ और मैटरलिक की परम्परा मे आता है। इसके उपरान्त १६३० मे डाक्टर रामकुमार वर्मा ने अपना काव्यात्मक रूपक 'आदत की मृत्यु' मैटरलिक के 'ब्लयू-बर्ड' से प्रभावित होकर लिखा। इसी 'ब्लयू बर्ड' नाटक से प्रभावित होकर १६३६ मे सुमित्रानदन पत ने अपने प्रतीकात्मक नाटक 'ज्योत्सना' की रचना की।[1] "ईसाई रहस्य वादियो" के प्रतीकवाद का भी प्रभाव आधुनिक हिन्दी-कविता की रहस्यवादी धारा पर रवीन्द्रनाथ टैगोर की रहस्यवादी कविताओ के माध्यम से पडा है। ईसाई रहस्यवादी अधिकतर बाईबिल से ही प्रतीक-चयन करते थे और यही कारण है कि रवीन्द्रनाथ टैगोर के प्रतीक-विधानपर भी बाईबिल का प्रभाव परिलक्षित होता है।"[2] आधुनिक हिन्दी-रहस्यवादी प्रतीक-योजना मे बाइबिल मे प्रयुक्त प्रतीको की प्रतिच्छवि प्राप्त होती है।

आधुनिक हिन्दी-कवियो का प्रतीक-विधान फ्रान्सीसी कवियो के प्रतीक-विधान से साम्य रखता है। फ्रान्स के साहित्य-जगत मे प्रतीकवाद एक साहित्यिक

---

addressed, the more truth it will convey. A good symbolism, therefore, will be more than mere diagram or mere Allegery; it will use to the utmost the resources of beauty & passion... ...its appeal will not be to the clever brain, but to the desirious heart, the intuitive sense of man.

—Mysticism : E. Underhill, P. 13.

१. हिन्दी काव्य पर आंग्ल-प्रभाव—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा।

2. The image of the Bridegroom and the parable of talents are sometimes to be found in Ravindra Nath's poems.

—Western Inflence in Bengali Literature by Priya Ranjan Sen.

आन्दोलन के रूप में चला । इस धारा के कवियों[1] ने विश्वसाहित्य पर बड़ा व्यापक प्रभाव डाला है । फ्रास में सन् १८७० मे प्रजातन्त्रात्मक पद्धति के सूत्रपात्र के पश्चात् वहाँ के राजनीतिक क्षेत्र मे दो वर्ग हो गये—जनतन्त्रवाद और पुरोहितवाद (Clericalism)। राजनीति के ये वाद साहित्य मे प्रकृतिवाद और प्रतीकवाद के नाम से विख्यात हुये । इन साहित्यिक सम्प्रदायों के प्रवर्तन का श्रेय क्रमश: जोला और मलारमे को है । जोला ने साहित्य मे भौतिक विज्ञान का प्रवेश कराया और मलारमे ने सौन्दर्यशास्त्र की प्रतिष्ठा की । प्रकृतवाद का निर्माण तो फ्रान्सीसी तत्वों ने ही किया, किन्तु प्रतीकवाद की प्रेरणा के मूल श्रोत जर्मन दार्शनिक कान्त, फिश्ते, शैलिग, हीगेल और शोपेनहावर हुए । संक्षेप मे फ्रासीसी प्रतीकवाद की देन है—(१) अत.प्रेरण, (२) व्यजना, (३) तुक और छदमुक्ति, (४) कविता और सगीत का सामन्जस्य, (५) सौन्दर्यवाद की स्थापना, (६) परम्परागत शैली का विरोध और बौद्धिक सूझ, (७) काव्य को राजनीति से दूर रखने का प्रयास । यद्यपि पश्चिम मे प्रतीकवाद की जन्म भूमि फ्रास ही है, किन्तु फ्रान्स से बाहर अन्य देशों मे भी व्यापक रूप से इसका प्रभाव पडा । इगलैण्ड मे 'डिकेडेण्ट' वर्ग, अमेरिका में 'इमेजिस्ट' और 'सिम्बोलिस्ट' जर्मनी मे 'रिल्के' और स्टेफन जार्ज तथा स्पेनिश अमेरिका मे 'मार्डन स्टास', आदि इसी धारा के अन्तर्गत आते है ।

"हिन्दी मे टी० एस० इलियट का सर्वाधिक प्रभाव प्रयोगवादी कविता पर पडा है । टी० एस० इलियट के काव्य पर मनोविश्लेषण विज्ञान और फ्रासीसी प्रतीकवाद का विशेष प्रभाव पडा है । इलियट के काव्य मे अस्पष्टता का कारण उसकी शैली है, जिस पर बोदलेयर से लेकर पालबेलरी तक की प्रतीकवादी फ्रासीसी कविता का प्रभाव है । वह अपने काव्य मे काव्य के आशय को व्यक्त करने के लिये अधिकतर प्रतीकोंका प्रयोग करता है, किन्तु उसके मे प्रतीक विविध साहित्यो व धार्मिक कथाओ से लिये गये है । इसकी कविताएँ अग्रेजी और अन्य विदेशी कवियो के उद्धरणों से भरी पडी हैं । इसके अतिरिक्त 'गीता', उपनिषद, बौद्धधर्म की पुस्तको और बाइबिल के अनेक प्रसग भी उनके काव्य मे मिलते है । यही कारण है कि साधारण

---

1 (a) Baudelaire, Verlaine, Mellerme, Rimbaud, Henri de Regnier, Verhaerin, Gustave kahn, Clauden, Proust, Paul Valery etc.

(b) Symbolism was in origin a mystical kind of poetry whose technique depended on its metaphysics and whose popularity was due to the importance it gave to the poets self and element of music in his art.

—The Heritage of Symbolism by C. M. Bowre, P. 12.

पाठक के लिये इलियट का काव्य कठिन हो जाता है।[1] हिन्दी के प्रयोगवादी कवियों ने इलियट की काव्य शैली का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है। इन लोगों के कव्य मे प्रतीको और 'फ्री एसोसियेसन' पद्धति का प्राय प्रयोग होता है।

आधुनिक युग के अभिव्यजना-क्षेत्र मे प्रतीको की प्रधानता है। हिन्दी के आधुनिक कवि प्रतीकों द्वारा सत्य को अधिक-से-अधिक प्रभविष्णु, मार्मिक और संक्षिप्तरूप मे व्यक्त करने का प्रयत्न करते है। "काव्य मे प्रतिको का उद्देश्य केवल सजावट नही है, प्रत्युत वे काव्य के अधार-भूत अग है। केवल कवि के भावावेश मे उद्भूत प्रतीक ही पाठको मे वैसी भावना जगाने मे समर्थ होते है। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिये गढे हुए प्रतीको का विश्लेषण करने पर उनमे सच्ची सौदर्य भावना का अभाव तथा शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दरलय के समान सौन्दर्य पूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते है। इन प्रतीको का अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। प्रत्येक देश के प्रतीको का अपना समूह होता है जिसके द्वारा देशवासी अपने सुख-दुःख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते है। इस प्रकार उष्ण देशो की भीषण उष्णता नरक की ज्वाला का प्रतीक बन गई और ठढे देशो की घोर शीतलता भी नरक मानी जाने लगी। बसत तथा ग्रीष्म हर्ष और दुःख के द्योतक माने गये। इसलिये दूसरी भाषाओ के प्रतीकों का अपने साहित्य मे समावेश करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है, क्योकि उन भाषाओ से अपरिचित पाठको के लिये अधिकाश विदेशी प्रतीक अर्थहीन सिद्ध होगे।[2]" छायावादी कवियो को प्राचीन प्रतीक रुचिकर नही प्रतीत हुए और जो प्राचीन प्रतीक ग्रहण भी किये उन्हे उन्होंने नई अर्थ-दीप्ति, व्यजना और भगिमा प्रदान की। अत उन्होने अपनी कविताओ मे प्रभविष्णुता और मार्मिकता लाने के लिये नवीन प्रभूत प्रतीको की उद्भावना की।

स्थूल रूप मे प्रतीक दो प्रकार के होते है—परम्परागत या रूढ और नवीन। छायावाद-युग और उनके बाद के कवियो ने नवीन प्रतीको का ही अधिक प्रयोग किया है। छायावादी कवियो ने रूप-गुण सादृश्य की ओर उतना ध्यान नही दिया जितना प्रभाव-साम्य की ओर। इस युग की प्रतीक-योजना की मार्मिकता का आधार मुख्यरूपेण प्रभाव-साम्य ही है। प्रभाव-साम्य की महत्ता बतलाते हुए आचार्य शुक्ल ने कहा है कि "सिद्ध कवियो की दृष्टि ऐसे ही अप्रस्तुतो की ओर जाती है जो प्रस्तुत के समान ही सौन्दर्य, दीप्ति, कांति, कोमलता प्रचण्डता, भीषणता,

---

१ हिन्दी-काव्य पर आग्ल-प्रभाव —डा० रवीन्द्रसहाय वर्मा।

२ आधुनिक काव्यधारा—डा० केशरीनारायण शुक्ल डी. लिट्, पृष्ठ २१७-२१८।

उग्रता उदासी, अवसाद, खिन्नता, इत्यादि की भावना जगाते हैं।[1]" प्रभाव-साम्य ही आगे चल कर प्रतीक योजना का कार्य करता है। इसी तथ्य पर प्रकाश डालते हुए शुक्ल जी ने लिखा है कि "छायावाद बड़ी सहृदयता के साथ प्रभाव-साम्य पर ही विशेष लक्ष्य रख कर चला है। कहीं-कही तो, बाहरी सादृश्य या साधर्म्य अत्यत अल्प या न रहने पर भी, आभ्यतर प्रभाव-साम्य लेकर ही अप्रस्तुतो का सन्निवेश कर दिया जाता है। ऐसे अप्रस्तुत अधिकतर उपलक्षण के रूप या प्रतीकवाद होते है—जैसे सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक ऊषा, प्रभात, मधुकाल, प्रिया के स्थान पर मुकुल, प्रेमी के स्थान पर मधुप, श्वेत या शुभ्र के स्थान पर कुंद; रजत, माधुर्य के स्थान पर मधु, दीप्तिमान या कांतिमान के स्थान पर स्वर्ण; विषाद या अवसाद के स्थान पर अधकार, अधेरीरात, या सध्या की छाया, पतझड; मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झझा; तूफान, भाव तरग के लिये संगीत या मुरली के स्वर इत्यादि।[2]" इन प्रतीको का छायावादी रचनाओं मे अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इस प्रकार छायावाद ने प्रतीक-विधान की एक नई परम्परा स्थापित की। छायावाद का आभ्यतर प्रभाव-साम्य उस युग के कवि की अन्तर्दृष्टि सम्पन्न कल्पना-शक्ति का परिणाम है, जिसके द्वारा छायावादी कवि जड़-चेतन प्रकृत के बीच स्थित सूक्ष्म सम्बन्ध-सूत्रो को देखने मे समर्थ था तथा अपनी महान् प्रतीक एवं उपमान-योजना द्वारा मानव-मानव के मध्य तथा मानव और प्रकृति के मध्य सम्बन्ध स्थापन का स्तुत्य कार्य सम्पन्न करता था। शुद्ध साध्यवसाना प्रयोजनवती लक्षणा में इसी प्रकार के प्रभाव-साम्य पर आधारित प्रतीको का व्यवहार होता है।

छायावादी कवि रीतिकालीन कविता की कृत्रिमता और रूढ़िवादिता से पूर्ण परिचित था। अत. उसकी कविता के रूप-निर्माण के भावो को ही प्राधान्य प्राप्त हुआ और भावो ने जिस प्रकार विचारों के क्षेत्र मे परम्परा का विरोध किया, उसी प्रकार रूप-विन्यास के क्षेत्र मे भी। "अंग्रेजी मे जिसे 'फार्म' कहते है, उसका सटीक अर्थ 'सगीत' है अर्थात् फार्म वह है जिसमे भाव के साथ रूप की पूर्ण सगति हो। भाव और रूप में जहाँ असंगति दिखाई पडे, वहाँ रूप मे कोई त्रुटि रह गई है। चारुता वही है जो' प्रियेषु सौभाग्यफल हो। 'फार्म' अथवा 'रूप' को सगति कहने का दूसरा अर्थ यह है कि स्वय रूप-विन्यास के विभिन्न उपादानो और पक्षो मे भी सगति होनी चाहिए; क्योकि जब तक स्वयं रूप-विन्यास के भीतर संगति न होगी, वह समष्टि के भाव के साथ सगति कैसे बैठा सकेगा? आचार्यों ने रूप-विन्यास की इस आतरिक संगति को 'सौन्दर्य' नाम दिया है—

(१) हिन्दी-साहित्य का इतिहास —पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६७०।

(२) हिन्दी-साहित्य का इतिहास —पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६७१।

अङ्गप्रत्यङ्गकाना य सन्निवेशो यथोचितम् ।
सश्लिष्ट-सन्धिबन्ध· स्यात् तत् सौन्दर्यमुदाहृतम् ।।

जब रूप–विन्यास अग-प्रत्यग मे यथोचित सन्निविष्ट, सश्लिष्ठ तथा सन्धिबन्ध होता है, तभी वह स्वाभाविक प्रतीत होता है। भावो के साथ उसका मेल भी तभी बैठ सकता है और ऐसी ही स्थिति मे किसी प्रकार के आभूषण बिना ही शरीर विभूषित मालूम होता है। सुरि और सुडौल अग-यष्टि अपने आप ही शोभन है। इसी को आचार्यो ने 'रूप' अथवा 'फार्म' सज्ञा दी है—

अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद् भूषणादिना ।
येन भूषितवद् भाति तद् रूपमितिकथ्यते ।।

भाव और रूप की पूर्ण सगति के बाद कभी-कभी काव्य की रूपविधि एक और कार्य करती है। अपनी सार्थकता प्रमाणित कर चुकने के पश्चात् जब रूप अथवा फार्म किसी अतिरिक्त भाव की व्यजना करता है, तब वह प्रतीक हो जाता है। 'झझा' जब अपनी ध्वनि से आंधी-पानी दोनो का पूर्ण बोध करा देती है तो उसके रूप की पूरी सार्थकता हो जाती है। किन्तु इससे आगे बढकर जब वह किसी हृदय की व्यथा और क्षोभ की ओर सकेत करती है, तो अपनी सार्थकता के अतिरिक्त कार्य करती है। काव्य के क्षेत्र मे 'रूप' का यह अतिरिक्त कार्य 'प्रतीक' और 'व्यजना' कहलाता है तथा वस्तुजगत मे 'लावण्य'। रूप की इस व्यग्यात्मक शक्ति को मोती की उपमा के सहारे समझाते हुये आचार्यो ने कहा है कि वह मोती की 'आब' अथवा 'तरल छाया' है—

मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा ।
प्रतिभाति यदगेषु तल्लावण्यमिहोच्यते ।।

छायावादी कवियों ने अपनी अनुभूतियो के अनुरूप रूप–विधि का निर्माण करते समय 'रूप' की सगति और सार्थकता के साथ–साथ उसके अतिरिक्त-सकेत की ओर ध्यान रक्खा है। इसलिये छायावाद की रूप–योजना मे एक ओर जहा सूक्ष्म भावो के व्यजक चित्र मिलते हैं, वहा दूसरी ओर प्रतीक-योजना भी पर्याप्त मिलती है।''[1] छायावादी कवियो की प्रतीक-योजना की यही अभिनवता है, जो तत्कालीन गतानुगतिको को अग्राह्य हुई। प्राचीन काव्य-मर्मज्ञ इस काव्य को नवीन अप्रस्तुत और प्रतीको के कारण नही ग्रहण कर सके, परिणामस्वरूप मनमाने आक्षेप किये, किन्तु यह युग की आवश्यकता थी। अत. निरन्तर विरोधों के होते हुए भी उसकी समृद्धि होती रही।

---

१ छायावाद–नामवर सिंह

प्रत्येक युग की कविता मे प्रतीको का प्रयोग प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ मध्यकालीन कविता मे खंजन अथवा मीन का नाम लेते ही नेत्रो का बोध हो जाता है। ये प्रतीक लगातार प्रयोग के कारण रूढि हो गये है, अत: अर्थ-बोध मे कोई कठिनाई नही होती, किन्तु छायावादी कवियों ने परम्परागत प्रतीको को न ग्रहण कर नये-नये प्रतीको का प्रयोग प्रारम्भ किया। नये प्रतीकों की कोई परम्परा न होने के कारण आरम्भ मे इन्हे समझने मे लोगो को कठिनाई हुई, लेकिन प्रयोग की पुनरावृत्ति और प्रसगानुकूलता की सहायता से वे रूढ बनने लगे। शनै:-शनै: युग की सामान्य भावधारा तथा सामाजिक चेतना के द्वारा ऐसा वातावरण बन गया कि वे प्रतीक सामान्य लोगो के राग-बोध के अग बन गये। इस प्रकार छायावाद ने नये प्रतीकों की सृष्टि कर पूर्वपरिचित वस्तुओ मे नवीन अर्थवता भर दी। उन्हे पूर्व-प्रचलित अर्थ मे से विशेष अर्थ के लिये रूढ कर दिया। उदाहरणार्थ हम कतिपय प्रतीकात्मक उद्धरण प्रस्तुत करते है—

१ झझा-झकोर गर्जन है बिजली है नीरद-माला।
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला ॥

२ विस्मृति है, मादकता है, मूर्छना भरी है मन मे।
कल्पना रही सपना था, मुरली बजती निर्जन मे ॥

३ पतझड था, झाड खडे थे, सूखे-से फुलवारी मे।
किसलयदल कुसुम बिछाकर आये तुम इस क्यारी मे ॥

४ आँसू से धुला निखरता, यह रग अनोखा कैसा ?

× × ×

५ मुरली मुखरित होती थी।

६ नाविक! इस सूने तट पर किन लहरो मे खे लाया ?

—आँसू : प्रसाद।

१ झझा—झकोर गर्जन, हृदय को व्यथित करने वाली तीव्र भावनाओं; बिजली हृदय मे रह-रह कर उठने वाली पीडा और नीरदमाला उदासी के प्रतीक है।

२ मुरली मधुरभावनाओं का प्रतीक है।

३ पतझड, शुष्कता; किसलयदल कुसुम, सरसता; और क्यारी हृदय के प्रतीक है।

४ रग प्रेम का प्रतीक है।

५ मुरली भ्रमरो के गुंजार का प्रतीक है।

६ नाविक मन और लहरें भावनाओ के प्रतीक हैं।

प्रारम्भ मे प्रसाद जी का 'आँसू' अपनी प्रतीकात्मक भाषा के कारण ही अस्पष्ट रहा। किसी ने उसे रहस्यवादी कहा, किसी ने मायावाद और किसी ने वैज्ञानिकता तथा अवैज्ञानिकता दोनो से परिपूर्ण कहा। यह सब गड़बड़झाला प्रसाद जी के प्रतीको को ठीक रूप से न पकडने के कारण हुआ। 'आँसू' का तो प्रारम्भ ही प्रतीक और लक्षणा के साथ होता है—

इस करुणा कलित हृदय मे
अब विकल रागिनी बजती।

इसमे 'रागिनी' लक्षण शब्द है। हृदय ऐसी वस्तु नही है जिसमे तार लगे हो, और किसी की अगुलियो के चलने से 'राग' निकले। अत जब वाच्यार्थ से अभीष्ट अर्थ असम्भव हो जाता है, तब हमे लक्षणा-शक्ति का आश्रित होना पडता है। 'रागिनी' से हम दु:ख का पैदा होना ग्रहण करेंगे। रागिनी स्वर का, उल्लास का प्रतीक है। इसी प्रकार—

ये सब स्फुलिग है मेरी,
इस ज्वालामयी जलन के।
—आँसू : प्रसाद।

इसमें 'स्फुलिग' गरम आँसू का प्रतीक है। स्मृति से हृदय मे जलन बढ गई है। परिणामत. गरम-गरम आँसू आँखो से निकलने लगे। अग्नि की चिनगारियाँ स्फुलिग कहलाती है। अत: गरम आँसू और स्फुलिग का गुण-साम्य होने के कारण स्फुलिग गरम आँसू का प्रतीक बना लिया गया है। इससे वेदना की गहनता भी व्यजित होती है। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिये—

निर्झर-सा झिर-झिर करता माधवी-कुञ्ज छाया मे।
—आँसू।

'माधवी कुञ्ज' प्रिय का प्रतीक है और छाया 'सान्निध्य' का। माधवी कुंज मे कोमलता, सुन्दरता, मोहकता आदि गुणों का समावेश प्रिय के रूप, स्वभाव आदि का द्योतक है।

कामायनी छायावाद-युग की सर्व श्रेष्ठ कृति है। इसमें प्रतीकों का प्रयोग प्रचुरता से हुआ है। इसकी प्रतीक-योजना साम्य पर आधारित है। इसमे प्रतीक अधिकतर अलकार-रूप अथवा लाक्षणिकता लाने के लिये प्रयुक्त हुए हैं; अत: वे दूरारूढ़ कल्पना से उद्भूत नही प्रतीत होते। उदाहरणार्थ—

१. अपनी ज्वाला से कर प्रकाश।
२. जीवन निशीथ के अंधकार।

३. कलियाँ जिनको मैं समझ रहा वे काँटे फैले आस-पास।
४. मधुमय बसंत जीवन-बन के।
५. क्या तुम्हें देखकर आते यो मतवाली कोयल बोली थी ?
६. देवो की विजय दानवो की हारो का होता युद्ध रहा।
७. किरणों का रज्जु समेट लिया जिसका आलम्बन ले चढती।
८ स्वच्छन्द सुमन जो खिले रहे जीवन-बन से हो बीन रही।
९. मुझको काँटे ही मिलें धन्य।
हो सफल तुम्हे ही कुसुम कुन्ज।

१० जीवन मे सुख अधिक था या दु:ख, मन्दाकिनि कुछ बोलोगी।
नभ मे नखत अधिक सागर मे या बुद-बुद मे गिन दोगी।।
११ श्रृद्धा देख रही चुप मनु के भीतर उठती आँधी को।
—कामायनी

इन पंक्तियों मे प्रयुक्त प्रतीकात्नक शब्द और उनके प्रतीकार्थ ये हैं—ज्वाला (वेदना), प्रकाश (ज्ञान अथवा सुख), अन्धकार (दु ख अथवा अज्ञान) कलियाँ (सुख के साधन), काँटे (कठिनाइयाँ अथवा दु ख), कोयल (हृदय का उल्लास), देव (सत्–प्रवृत्तियाँ), दानव (असत्वृत्तियाँ), किरणों का रज्जु (कल्पनाये), स्वच्छन्द सुमन (उन्मुक्त अभिलाषा), कुसुम कु ज (सुख), नखत (सुख), बुद-बुद (दु:ख), आँधी (भावनाओ का प्राचुर्य और प्राबल्य)। इसी प्रकार निम्नलिखित पक्तियों मे नृत्य, वन्शीवादन, मधुप-गुन्जन और शून्य हृदय के प्रतीक है—

वल्लरियाँ नृत्य निरत थी,
बिखरी सुगन्ध की लहरे,
फिर वेणु-रध्र से उठकर,
मूर्छना कहाँ अब ठहरे।
गूजते मधुर नूपुर से,
मदमाते होकर मधुकर,
वाणी की वीणा-ध्वनि-सी
भर उठी शून्य मे झिलकर।

× × ×

रश्मियाँ बनी अप्सरिया,
अतरिक्ष मे नचती थीं,
परिमल का कन-कन लेकर
निज रगमच रचती थी।
—कामायनी।

निराला जी की निम्नलिखित पंक्तियों में 'प्रात', 'चन्द्र', 'ज्योत्सना' और 'रेणु' स्फूर्ति, शान्ति और शीतलता के प्रतीक हैं—

वहाँ नयनो में केवल प्रात, चन्द्रज्योत्सना ही केवल गात,
रेणु छाये ही रहते पात, मन्द ही बहती सदा बयार।
हमे जाना इस जग के पार॥
—परिमल।

जिन प्रतीकों मे एक मूलगत व्यापक भाव की सार्वभौमिकता प्रतिष्ठित होती है, वे प्रतीक बडी तीव्रता के साथ सहृदय के मन मे मुख्यभाव की निष्पति करते है। जीवन की विविधता की अनुभूति एक मेले की भावना से हो सकती है और सहृदय का हृदय सांसारिक आकर्षणों एवं कोलाहलों की नश्वरता की अनुभूति से स्वभावत: आच्छादित किया जा सकता है—

मै अकेला
देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की सांध्यवेला।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मद होती आ रही,
हट रहा मेला।
—गीतिका : निराला।

छायावादी कवियो मे पंत जी ने प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग किया है। पत जी अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकों के प्रयोग मे अत्यन्त कुशल हैं। उदाहरणार्थ—

करुण भौंहों मे था आकाश,
हास मे शैशव का ससार;
तुम्हारी आँखों में कर वास,
प्रेम ने पाया था आकार।
उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख मे मृदुल विलास;
चाँदनी का स्वभाव मे भास,
विचारों में बच्चों की सांस।
—पल्लव

कवि की कल्याणी की करुण भौंहो में उच्चता का आभास था, यह न कह कर आकाश ही कहा गया है। उसकी हँसी विश्व के पक्षपात पूर्ण वातावरण से निरपेक्ष थी, शुद्ध थी, इसके लिये शिशुओ का ससार व्यवहृत हुआ। हृदय मे उल्लास था, यह न कह कर, उषा का आवास ही प्रयुक्त हुआ है। मुख से–वाणी के जो उद्गार निकलते, वे रमणीय होते थे, यह न कह कर उसमे अधखिली कली का मृदुल विकास ही प्रदर्शित किया गया है। कवि की मनोरमा का स्वभाव बहुत ही स्निग्ध और आह्लादक था, यह गुण बतलाने के लिए कवि ने चाँदनी का आश्रय लिया है। विचारो के भोलेपन के प्रतीक के लिये बच्चो से बढ कर भोलापन अलभ्य है। अत: बच्चों की साँस से कवि ने इसी भोलेपन का संकेत किया है। इसी प्रकार निम्नलिखित उद्धरण मे मानवता के लिये गगाजल और कलुष के लिये मदिरा का प्रयोग किया गया है—

कभी तो अब तक पावन प्रेम,
नही कहलाया पापाचार ।
हुई मुझको ही मदिरा आज,
हाय, क्या गंगाजल की धार ।।
—पल्लव ।

निम्नलिखित पंक्तियों मे मछली या मोती ब्रह्म का प्रतीक है, निस्तल जल परमार्थ या जीवन की तह का प्रतीक है। कवि इन प्रतीको की सहायता से यह बतलाना चाहता है कि इस जीवन की तह मे जो परमार्थ तत्त्व छिपा हुआ कहा जाता है, उसे पकड़ने और उसमे लीन होने के लिए बहुत से लोग अन्तर्मुख होकर गहरी-गहरी डुबकिया लगाते है, पर कवि को तो उसमे व्यक्त आभास ही रुचिकर है। अपनी पृथक् सत्ता विलीन करने मे उसे भय लगता है—

सुनता हूँ, इस निस्तल जल मे
रहती मोती मछली वाली
पर मुझे डूबने का भय है
भाती तट की चल-जल माली।
—गुंजन : पंत।

इसी प्रकार 'गुंजन' के प्रथम गीत में कवि ने प्रतीकों के सहारे अपने प्रयोजनीय अर्थ की अभिव्यंजना की है—

वन वन उपवन,
छाया उन्मन, उन्मन गुंजन,
नव-वय के अलियों का गुंजन।
—गुंजन।

इसमें प्रयुक्त प्रतीको के दोहरे अर्थ है। अलि छायावादी कवियों का भी प्रतीक है और अन्तरात्मा का भी। छाया छायावाद का प्रतीक है—और आध्यात्मिक जगत् का भी।

पत जी के 'स्वर्णकिरण' की 'अशोक-वन' रचना प्रतीकात्मक है। इसके पात्र प्रतीकात्मक है। सीता पार्थिव-चेतना और राम ईश्वरत्व के प्रतीक हैं। धरा-चेतना सीता और सत्य-रूप राम के परिणय मे ही लोक-मगल है। रावण जड़-भौतिकता का प्रतीक माना गया है। राम (सत्य), सीता (धरा-चेतना) को रावण (जडभूत-वाद) से मुक्त कर नव्य मानवी संस्कृति का विकास करते हैं। पिछली धनुष-भंग आदि घटनाओं की भी प्रतीकात्मक व्याख्या हुई है। रावण सीता को धरा की शोभा कह कर प्रणत होता है। फिर लका-दहन होता है। 'पावक-वाहन' युग का कर्दम जलाकर धन्य है। सीता (चेतना) और राम (सत्य) के मिलन-पूर्व सीता की अग्नि परीक्षा भी होती है—'प्रभु, क्यो ली यह अग्नि-परीक्षा ?' इन रचनाओ मे कथा गौण है और प्रतीकों द्वारा विचार एव चिन्तन की प्रसृति ही प्रधान है।

पंत जी ने आध्यात्मिक चेतना के लिए ज्योत्स्ना और स्वर्णप्रात के प्रतीकों का प्रयोग किया है। 'ज्योत्स्ना' नाटक में उन्होने विश्व-सस्कृति के स्थापनार्थ साम्राज्ञी 'ज्योत्स्ना' के रूप मे आध्यात्मिक चेतना का आह्वान किया है। 'ज्योत्स्ना' नाटक की इसी चादनी का आगमन 'स्वर्णकिरण' मे 'स्वर्णप्रात' के रूप हुआ है[1]—

खुला अब ज्योति-द्वार
उठा नव प्रीति-ज्वार,
सृजन-शोभा अपार
कौन करता अभिसार,
धरा पर ज्योति-भरण
हसी तो स्वर्ण-किरण।

—स्वर्णकिरण।

---

१ 'ज्योत्स्ना' की स्वप्नकांत चांदनी (चेतना) ही एक प्रकार से 'स्वर्ण-किरण' मे युग-प्रभात के आलोक से स्वर्णिम हो गई है—

वह स्वर्ण भोर को ठहरी जग के ज्योतित आगन पर
तापसी विश्व की बाला पाने नव जीवन का वर।

चादनी को सम्बोन्धित 'ज्योत्स्ना-गुंजन' काल की पक्तियों मे पाठकों को मेरे उपर्युक्त कथन की प्रतिध्वनि मिलेगी।

—'उत्तरा' की भूमिका : सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ १।

आध्यात्मिक चेतना के लिए पंत जी ने अधिकांशत. स्वर्ण-प्रतीक का ही प्रयोग किया है। 'स्वर्णकिरण' और 'स्वर्णधूलि' का जगत स्वर्णभोर, स्वर्ण निर्झर, स्वर्णधूलि आदि का जगत है। इस नवीन आध्यात्मिक चेतना के आलोक मे समस्त संसार अति सुन्दर दृष्टिगोचर होता है—

स्वर्णरजत के पत्रों की रत्नछाया मे सुन्दर
रजत घंटियों सा सुवर्ण किरणों का झरता निर्झर।

× × ×

स्वर्णिम पराग स्वर्णिम पराग।

× × ×

जयति प्रथम जीवन स्वर्णोदय।

—स्वर्ण किरण।

स्वर्णबालुका किसने बरसा दी जगती के मरुथल मे।
सिकता पर स्वर्णांकित कर, स्वर्गिक आभा जीवन मृग-जल मे॥

—स्वर्ण-धूलि।

पंत जी की 'उत्तरा' की प्रतीकात्मकता कवि की उर्वर एवं व्युत्पन्न प्रतिभा का परिचायक है। 'उतरा' की प्रायः प्रत्येक कविता मे मेघ, पावक, तडित, रक्तोज्वल, स्वप्नशिखर, छायाजलद, आभा, पखुडिया, देवदूत, चन्द्रज्वाल, सूक्ष्मवाष्प, छायातप आदि अनेक रमणीय प्रतीक प्राप्त होते है। जहा तक प्रतीको की विविधता का प्रश्न है, यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी-कविता में प्रतीको के प्रयोग मे पंत जी जैसी विविधता किसी मे नही प्राप्त होती। 'उत्तरा' में प्रयुक्त सभी प्रतीक नवीन, रम्य और सक्षम हैं। उनके प्रयोगों मे कही-कही दुरूहता अवश्य आ गई है। इस दोष का प्रधान उत्तरदायित्व प्रतीको पर नही, उनके प्रयोगों पर है। जहां का प्रतीक-विधान सुस्पष्ट है, वहाँ प्रतीक भी स्पष्ट है; जहा उनका विधान ही अस्पष्ट एवं सघन है तो क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है ?
उदाहरणार्थ 'निर्माणकाल' की इन पक्तियों को देखिए—

लो, आज झरोखों से उड़ कर,
फिर देवदूत आते भीतर।
सुरधनुओ के स्मित पंख खोल,
नवस्वप्न उतरते जब भू पर।
रंग-रंग के छायाजलदों-सी,
आभा पखड़ियां पड़तीं झर।
फिर मनोलहरियो पर तरती,
बिंबित अप्सरिया नि स्वर॥

—उत्तरा।

यहाँ झरोखे,देवदूत, सुरधनुओं के स्मितपख, छायाजलद, आभापंखडियां, मनोलहरियाँ, अप्सरियाँ नि.स्वर सभी प्रतीक है और बीच मे कोई भी पक्ति ऐसी नही है जिसके द्वारा प्रत्येक के अर्थ का किसी प्रकार का कोई सकेत मिले। इसी प्रकार—

मेघो के उडते स्तम्भ खडे
लिपटी जिनमे विद्युत ज्वाला
भीतर वाष्पो के कोश मसृण
नव इन्द्रजाल लटके कम्पित
चल जलदो के पट के भीतर
दिखते उडते तारक अगणित।
—उत्तरा।

इस उद्धरण मे मेघ, विद्युत, वाष्प, तारक आदि क्रमश स्थूल जगत, अन्तश्चेतना, सूक्ष्मभावनाओ व आतरिक प्रकाश के प्रतीक है, परन्तु 'प्रीति' शीर्षक कविता को समझने मे बुद्धि को बहुत कुरेदना पडता है जैसा कि कबीर के बहुत से पद पहेली बना कर रक्खे जाते है। ऐसी पहेलियाँ उत्तरा मे बहुत है। इनके खुल जाने पर कल्पना अवश्य उत्तेजित हो उठती है, परन्तु पाठक का धैर्य उसी प्रकार जवाब दे जाता है जैसा गणित की किसी समस्या के सामने आने पर होता है और समस्या के हल हो जाने पर जैसा कौतूहल-जन्य आनन्द मिलता है; वैसा ही आनन्द इन पहेलियो को खोलते समय मिला करता है। जो प्रतीक सवेदना को जागृत नही करते, वे इसी प्रकार गणित की प्रक्रिया को अपनाते है। इसीलिये 'उत्तरा' को पढ़ कर वह आनन्द नही मिलता, जो आनन्द रहस्यवादियो की कविता मे मिलता है।

'अतिमा' पत जी का नवीनतम काव्यग्रन्थ है। 'उत्तरा' के प्रतीको मे चेतना के स्तरों का क्रम बतलाने का प्रयत्न था, किन्तु इसमें कवि ने साकेतिक पद्धति द्वारा अपनी विचारधारा को बड़ी कुशलता से व्यंजित करने का प्रयास किया है। मृत सिद्धान्तो 'कैंचुल' शीर्षक कविता मे कवि ने गत सस्कारों को कैंचुल के रूप मे प्रस्तुत किया है। मृत सिद्धान्तो के कैंचुलो मे सभी अच्छे-बुरे सिद्धान्तो का बड़ी सफलता के साथ विद्रूप किया गया है। इसी प्रकार 'स्वर्णमृग' कविता मे भी मानव-मन का चित्रण है। कही-कही पर बहुत भद्दे आरोप हुए है। प्रकाश-पतिंगे और छिपकलियो को भावनावादियों और भौतिकवादियो के रूप मे प्रस्तुत किया गया है। व्यजना की दृष्टि से कविता अच्छी है, किन्तु यह अच्छाई बहुत महगी है। कवि डांट के स्वर मे कहता है—

उच्च उडान नही भर सकते,
तुच्छ बाहरी चमकीले पर।

महत् कर्म के लिए चाहिए,
महत् प्रेरणा बल भी भीतर।।

—अतिमा।

प्रकाश आत्मा का प्रतीक है, पतिंगे मन का और छिपकलियाँ देह का। देहवादियो को चाहिये कि वे आत्मा का आदर करें, यह कवि का उद्देश्य और है इस बहाने सामाजिक चेतना का उपहास करना, यह है महत् उद्देश्य। मन को चाहिये कि वह अति मन की ओर चले। छिपकलियों को चाहिये कि वे हिंसा छोडदे, देह के परे की सत्ताओं को स्वीकार करें। बाहरी चमकीले परों से, बाहरी उन्नति से आन्तरिक उडान नही भरी जा सकती और बिना इस उडान के लक्ष्य की उच्चता का अभाव होगा और लक्ष्यहीनता मे मानव का विनाश हो जायेगा। कवि की इस प्रकार की बातो मे कोई नवीनता नही है, क्योकि इस प्रकार की बाते बहुत कही जा चुकी हैं और कहने के लिये जिन छिपकली आदि का प्रयोग किया गया है, यह भी अरुचिकर है।

महादेवी वर्मा हिन्दी-कविता के आधुनिक युग की वेदनानुभूति प्रधान कवयित्री है। उनकी काव्य-वेदना आध्यात्मिक है। उसमे चिरन्तन प्रिय के प्रति किसी ससीम और विसर्जनोत्सुक प्रिय का आकुल-प्रणय-निवेदन है। कवयित्री ने अलौकिक के प्रति अपने विरह-निवेदन को बडी रहस्यमयी पदावली मे अभिव्यक्त किया है। इस पदावली को समझने के लिये उनकी कल्पना को समझना आवश्यक है। "उनके काव्य का एक विशेष गुण उनका कल्पना—प्राचुर्य है। रूप-रग के खेलो और प्रकृति के निर्द्वन्द्व रूपों के सहारे वे उन्मुक्तरूप से कल्पना-जगत मे विहार करने लगती है और कभी-कभी पाठक के लिए उनके साथ-साथ चलना कठिन हो जाता है। उनकी कल्पना का विस्तार इतना सूक्ष्म-सश्लिष्ट और वर्णमय है कि वहा पहुँच कर भी पूर्ण अर्थ उसके साथ नहीं लगता। जब तक पाठक कवि के लाक्षणिक प्रयोगो के अन्तर मे प्रवेश नही करता, तब तक अर्थ मुँदे ही रह जाते है। रहस्यवादी कवि के लिये भावुकता की जितनी आवश्यकता है, उतनी ही कल्पना की भी। उसे ऐसे अनुभव को रूप-रंग देना होता है जो सामान्यत: किसी भी रूप-रग मे बँध नही पाता। इसीलिये उसे अपनी बात कहने के लिये प्रतीकों का सहारा लेना होता है।" महादेवी जी के प्रतीक अधिकतर नये ढग से ढाले गये है। उनमे धर्म विशेष की गंध नही है, न वे सम्प्रदायो के बन्धन मे बधे हैं। अत. उनका अर्थ—सदर्भ के अनुसार स्वत: खोलना पडता है।"[1] उन्होने अपने अधिकाश प्रतीक प्रकृति से लिए है, किन्तु इन प्रतीको को प्रतिदिन की जानी-पहिचानी वस्तुओं से हटा कर नया अर्थ देने के लिये इन्हें असामान्य और अलौकिक रूप-तरंगों मे मण्डित करना आवश्यक हो गया

---

१. डा० महादेवी वर्मा —डा० रामरतन भटनागर।

है। जहाँ अलौकिक रूप-रग नही है, वहाँ भी कुछ बात इस तरह कही है कि वह अलौकिक बन गई है। प्रकृति के उपकरण जैसे समद्र, निर्झर, बन, शैलपथ, तारे, चाँदनी, फूल, विहगम, आदि सभी उनके काव्य मे मानसिक अथवा आध्यात्मिक हलचल और साधना से सम्बन्धित हो गये है।" इस प्रकार महादेवी जी की साधना एव उसकी आधारभूत वेदना को समझने के लिये उनके प्रतीको का स्व प भली-भाँति समझना आवश्यक है। प्रतीको के विविध प्रकार के प्रयोग से कवयित्री वेदना—भावना की सजीव अभिव्यक्ति करने मे सफल हुई है।

प्राचीन साँस्कृतिक, ब्राह्मण धर्म एव उपनिषद् के प्रतीको मे सूर्य, कमल, तारे, चन्द्रमा, रात, दिन, उषा, सध्या, अहोरात्र, शख, मुरली, सम्पुट इत्यादि मुख्य है। भारतीयो मे कमल आनन्द और सौन्दर्य का प्रतीक माना जाता है और इसीलिये मन्दिर, भवन, मूर्ति, चित्र तथा काव्य और नृत्य-मुद्राओ मे उसका बहुत प्रयोग होता है। इस प्रकार किसी सूक्ष्म भाव-विचार या परोक्षसता का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु जो तर्क बुद्धि से प्रस्तुत या उपास्य की अनुकृति नही कही जा सकती, प्रतीक कहलाती है।[1] रात, दिन, उषा, सध्या आदि नारी-रूप मे विचित्र है। सम्पुट उपनिषद् का बडा प्रसिद्ध प्रतीक है। ये सब वेद, उपनिषद्, पुराणो के प्रतीक है जिन्हे रवीन्द्र साहित्य ने मधुर और लोकप्रिय बनाया तथा महादेवी जी ने भी स्वभावत: ग्रहण कर लिया। सम्पुट—केदारण्य मे मत्रेय को भगवान ने उपदेश दिया कि माता पिता सीप की तरह है। महादेवी जी ने भी इस प्रतीक का इसी अर्थ मे उपयोग किया है—

नीलम मरकत के सम्पुट दो।
जिनमे बनता जीवन मोती॥

-यामा।

शख विजय का प्रतीक है, ज्ञान का प्रतीक है। शून्य मे शखध्वनि जीवन डालने का प्रतीक है। यह युद्ध का भी प्रतीक रहा है। महादेवी जी ने इसी अर्थ मे इसका प्रयोग किया है—

शख मे ले नाद मुरली मे छिपा वरदान।
दृष्टि मे जीवन अधर मे सृष्टि ले छविमान॥

—यामा

---

1. A Symbol might be defined as a representation which does not aim at being a reproduction.

—The Symbolist Movement in Literature.

—A Symons.

मुरली वैष्णवो के अनुसार मोहनी जगाने वाली है। मुरली बहुत पुराना प्रतीक है। रवीन्द्र की कविता मे भी इसका प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है।

कवयित्री के सम्मुख विसर्जन का बहुत महत्व है। एक पुष्प झरते-झरते ससार मे सुगन्ध फैला कर एक आनन्द का वातावरण उत्पन्न कर देता है और छोटा सा दीपक बुझते-बुझते विश्व मे आलोक भर देता है। अत. कवयित्री भी दीपक की भाति जल कर प्रकाश विखेरना चाहती है। निम्नलिखित पक्तियो मे दीपक कवयित्री के करुणापूर्ण जीवन का प्रतीक है और उसका जलना विश्व-सेवा मे आत्म-विसर्जन है—

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर

सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा धुल रे मृदुतन,

दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल-गल !
पुलक-पुलक मेरे दीपक जल !

—यामा।

इसी प्रकार प्याली जीवन का प्रकीक है, जो अश्रुसिक्त अर्थात् वेदना की अनुभूति से बनी है और उसमे साधिका ने ब्रह्म के बिरह की वेदनानुभूति समन्वित करके उसे और भी वेदनापूर्ण बना दिया है; परन्तु यह वेदना मधुर मदिरा के समान है, क्योकि उसमें प्रियमिलन का स्वप्न विद्यमान है—

अश्रुसिक्त रज से किसने
निर्मित कर मोती-सी प्याली
इन्द्रधनुष के रंगों से
चित्रित कर मुझको दे डाली ?
मैंने मधुर वेदनाओं की
उसमें जो मदिरा ढाली;
फूटी-सी पडती है उसकी
फेनिल विद्रुम-सी लाली।

\+ +

इस आशा मे मैं उसमे
बैठी हूँ निष्फल सपने घोल,
कभी तुम्हारे सस्मित अधरो
को छू वे होगे अनमोल।

—यामा।

प्रिय को स्वप्न मे बाध कर चिरप्रतीक्षा की प्यास बुझाने की कल्पना बड़ी मधुर है। यहा जीवन को प्रतीक्षा का प्रतीक माना गया है--

तुम्हे बाँध पाती सपने में
तो चिर जीवन प्यास बुझा
लेती उस छोटे से क्षण अपने मे!

—यामा।

यहा जीवन प्रतीक्षा का प्रतीक लक्षणा द्वारा सिद्ध होता है। इस प्रकार कवयित्री ने अपनी वेदनानुभूति की अभिव्यक्ति के लिये प्रतीकों का बडी मात्रा मे प्रयोग किया है। प्राय प्रतीक प्रकृति के उपकरणो से लिये है। इस प्रकार प्रकृति के विभिन्न उपकरणो का प्रतीक-विधान मे उपयोग कर कवयित्री सहृदय हृदय को करुणाप्लावित कर देती है और वेदनानुभूति सहृदय हृदय की अपनी सी हो जाती है। उदाहरणार्थ मिलन का प्रतीक रात्रि सुदर प्रतीक है, किन्तु उसमे ओसरूपी आसुओ की कल्पना करके सारे वातावरण तक को वेदना की करुण अनुभूति से मिश्रित करके वेदनामय कर दिया है—

डाले नवघन का अवगुंठन
दृग-तारक मे सकरुण चितवन
पदध्वनि से सपने जाग्रतकर
श्वासो से फैला मूक तिमिर
निशि अभिसारो मे आसू से
मेरी मनुहारें धो जातीं।

—यामा।

इसी प्रकार मधुमास के रूपक से अपना वेदनामय जीवन चित्रित करके अपने जीवन के विषाद को रात्रि के द्वारा और प्रिय की सुखद स्मृति को चांदनी द्वारा, अश्रुधारा को कालिन्दी के प्रतीक से व्यक्त किया है—

मैं बनी मधुमास आली।
आज मधुर विपाद की घिर करुण आई यामिनी,
बरस सुधि के इन्दु से छिटकीपुलक की चांदनी,

उमड आई री दृगो मे
सजनि कालिन्दी निराली ।।

—यामा ।

छायावादी कवियो ने प्राचीन प्रतीको का भी नये अर्थ मे प्रयोग किया है। उन्होंने अपने युग के अनुकूल इनके अर्थ मे परिवर्तन कर दिया है। इस प्रकार छायावाद के बहुत से प्रतीक युगानुरूप हो गये हैं। वीणा, झंकार, कली, पवन, भ्रमर, मधु, क्षितिज, अनन्त, झंझा गोधूली, यामा, आकाश, मेघ, वर्षा, प्रात, संध्या, यामिनी, इत्यादि छायावादी प्रतीकों के उदाहरण है। छायावादी प्रतीक अधिकतर प्रकृति के विभिन्न क्षेत्रो से लिये गये है। कली, पवन और भ्रमर क्रमश सुदरी, प्रेमीनायक और सामान्य सुख चाहने वाले गृहस्थ या दर्शक के प्रतीक है। महादेवी कहती हैं—

हँस देता जब प्रात सुनहरे
अचल मे बिखरा रोली,
लहरो की बिछलन पर जब
मचली पडतीकिर णें भोली,

तब कलिया चुपचाप उठाकर पल्लव के घूघट सुकुमार,
छलकी पलको से कहती है 'कितना मादक है ससार।'

देकर सौरभ दान पवन से
कहते जब मुरझाये फूल
जिसके पथ मे बिछे वही
क्यो भरता इन आखो मे धूल ?

'अब इनका क्या सार' मधुर जब गाती भौरों की गुजार,
मर्मर का रोदन कहता है 'कितना निष्ठुर है संसार।।'

यामा।

यहां कली सुन्दरी का, पवन प्रेमी नायक का और भ्रमर सामान्य सुख चाहने वाले गृहस्थ या दर्शक का प्रतीक है। सस्कृत मे पवन दूत का प्रतीक था और मेघ दूत की कोटि मे आता था। घनानन्द ने भी पवन को दूत बनाया है। भ्रमर भक्ति-साहित्य में बहुत ऊचा प्रतीक था। भ्रमर उद्धव जैसे ज्ञानी का प्रतीक था। महादेवी ने इसे मुक्त आनन्द-विलास करने की चिंता करने वाले के अर्थ में व्यवहृत किया है। शलभ को कवयित्री ने संसार के निरर्थक मोह और आकर्षण का प्रतीक माना है। सासारिक आकर्षण शलभ की भाति जीवन-दीप को घेरे रहते है, परन्तु दीपक की साधना कठोर है। दीपशिखा महादेवी के मन का प्रतीक है

उनकी सेवा के जीवन में तिल–तिल तपने की आत्मसमर्पण की साधना है। यह साधना उनके लिये एक साथ शाप और वरदान है—

शलभ मैं शापमय वर हू
किसी का दीप निष्ठुर हू ।
शून्य मेरा जन्म था,
अवसान है मुझको सबेरा ।
प्राण आकुल के लिये,
सगी मिला केवल अधेरा ॥

मिलन का मत नाम ले, मै विरह मे चिर हू ॥
—दीपशिखा ॥

यहा अंधेरा विषाद का प्रतीक है। इस प्रकार बदली सतो और भक्तो के यहा धीर, गभीर आदि का प्रतीक था। महादेवी जी ने उससे करुणा–जल बरसाने वाली का कार्य लिया है—'मैं नीर भरी दुख की बदली' बदली को देख कर मोर नाचने लगते हैं, संपूर्ण प्रकृति मे नवजीवन आ जाता है । वही यहा आसू का प्रतीक बन कर आह है। इसी प्रकार वर्षा करुणा का प्रतीक है, ग्रीष्म क्रोध का, बसत आनन्द का, मलय-पवन मधु और रश्मि का, मकरद आसू का। कही-कही आसुओ के लिये नक्षत्र और तुहिन-कण आदि भी प्रयुक्त हुए है। जीवन के प्रतीक रूप मे तरी, प्याली, लहर इत्यादि आये है। नदी-नाव के प्रतीक का प्रयोग महादेवी जी की कविता मे प्राय हुआ है——

घोर तम छाया चारों ओर
घटायें घिर आई घनघोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते है पर्वत—मूल
गरजता सागर आरम्पार
कौन पहुचा देगा उस पार ?

तरगें उठी पर्वताकार
भयकर करती हाहाकार
अरे, उनके फेनिल उच्छ्वास
तरी का करते हैं उपहास
हाथ से गई छूट पतवार
कौन पहुचा देगा उस पार ?
—यामा ।

यहां सागर संसार का, तरी मनुष्य जीवन का, चारों ओर का अंधकार अज्ञान का और मारुत विपरीत परिस्थितियो का प्रतीक है ।

'दीपशिखा' मे महादेवी जी ने मुख्यरूप से दीपक के ही प्रतीक का प्रयोग किया है । इससे दीपक साधिका की आत्मा का, तेल आंतरिक स्नेह का, अधकार पीडा का और झझावात अनेक विघ्नबाधाओं का प्रतीक है । मदिर के निर्जन प्रागण मे देवता की वेदी के आगे जलता हुआ दीपक कवयित्री की एकात साधना का प्रतीक है—

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो ।
रजत शंख घडियाल स्वर्ण-वशी वीणास्वर,
गये आरती बेला को शत-शत लय से भर,

जब कलकठो का मेला
विहँसे उपल तिमिर था खेला
अब मदिर मे इष्ट अकेला ।

इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो ।।
—दीपशिखा ।

महादेवी जी के स्वनिर्मित प्रतीक होते हुए भी उन पर रविबाबू का स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है । ऐसे प्रतीको मे बदली (सेवा करने वाली, करुणजल से पूर्ण बादल-खड), साध्यगगन (लौकिक के प्रति विराग, अलौकिक के प्रति अनुराग), यामिनी (सेवा की साधिका) ओस, गीले फूल (आसुओ की लड़ी), वेदना जल (आसू), सरिता (करुणा और प्रेम की वाहक), बादल (करुणा के रखवाले), गोधूली (करुणा मिलन-बेला), तारा (बिल्कुल असमर्थ विवेक-वादी), उषा (राग), इन्द्रधनुष (मधुरमिलन की स्मृतिया), झकार (हृदय का स्पदन), तरल मोती (आसू), झझा (अनन्त से मिलन के मार्ग की अनेक बाधायें) आदि प्रमुख है ।

प० नन्ददुलारे जी वाजपेयी ने अपने एक लेख मे महादेवी के काव्य (यामा) का विवेचन करते हुये लिखा है कि "महादेवी जी के काव्य में छायावाद-युग की विशेषतायें नही मिलती । प्रकृति-सौदर्य के प्रति "पल्लव" वाले पत जी का (इस प्रयोग के लिये क्षमा चाहता हू) सविमोहक आकर्षण उनमे नही, इसके बदले वे प्रकृति के एक-एक रूप या उसकी एक-एक वृत्ति को साकार व्यक्तित्व देकर उनके व्यापारों की कल्पना करती हैं, जिनमे उनकी समृद्ध कल्पना-शीलता प्रकट हुई है । अवश्य यह कल्पना-बाहुल्य ही छायावाद-युग की एक विशेषता उनके काव्य मे दीखती है । किन्तु वे कल्पनायें सब जगह सीधी और चोट करने वाली नही हैं, उनका प्रत्यक्ष रूप सहज आखो के सामने नही आता । कही-कही तो उन प्रतीको का वह

कल्पित व्यापार हमारे सौन्दर्य सस्कारो के प्रतिकूल पड जाता है और कही-कही वह इतना क्लिष्ट होता है कि हम ईप्सित सौन्दर्य की झाकी नही पा सकते। इन दोनो का एक-एक उदाहरण मैं देना चाहता हू—

रजनी ओढ़े जाती थी, झिलमिल तारो की जाली
उसके बिखरे वैभव पर जब रोती थी उजियाली ॥

यह प्रभात का दृश्य है। रजनी का झिलमिल तारों की जाली ओढ कर जाना, बडी ही सरल और मार्मिक कल्पना है। किन्तु उजियाली का रोना हम साधारणतः कही नही देखते ? वह प्राय हँसती ही आती है। यहा हमे अपनी अभ्यस्त अनुभूतियो को दबा कर यह कल्पना करनी पडती है कि प्रभातकाल की नमी अथवा ओस आसू रूप मे रो रही है। क्लिष्ट कल्पना का एक उदाहरण मैंने यह चुना है—

निश्वासों का नीड निशा का बन जाता जब शयनागार।
लुट जाते अभिराम छिन्न मुक्तावलियो के बन्दनवार ॥
तब बुझते तारो के नीरव नयनो का हाहाकार।
आँसू से लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है ससार ॥

आकाश मे रात्रि के समय अचानक बादल छा गये है और पानी बरसने लगा है। इसी अवस्था की यह कल्पना जान पडती है। अथवा यह रात्र्यन्त की कल्पना है। रात्रि को मुक्तावलियो के अभिराम बन्दनवार (तारिकापक्ति) छिन्न होकर लुट गये हैं। विश्वासो का नीड उसका शयनागार बन गया है (इसका इतना ही अर्थ मेरी समझ मे आ पाता है कि रात्रि दु ख पूर्ण निश्वास ले रही है)। तारे बुझ रहे हैं, बूदे गिरने लगी हैं, वही मानो बुझते तारो के नीरव नयनो का हाहाकार और उसके आँसू हैं, जिनके द्वारा यह लिखा जा रहा है, 'संसार कितना अस्थिर है' कितनी कल्पना हमे ऊपर से करनी पडती है, कृपया विचार कीजिये ? और अब भी मुझे निश्चय नही कि मेरा अर्थ ठीक ही है। जिस क्षण को महादेवी जी की कल्पना ने पकड़ा है-तारो से हँसते हुए आकाश मे सहसा मलिन बादलो का छा जाना अथवा निशात तारो का डूबना, वह काव्योपयुक्त और अति सुन्दर है, किन्तु क्या यही बात उनके इस चित्रण के सम्बन्ध मे कही जा सकती है ? इसके दो कारण मुझे दीखते हैं। एक तो यह कि महादेवी जी की कवितायें इतनी अन्तर्मुख है कि वे प्रकृति के प्रत्यक्ष स्पदनो, उनकी ध्वनियो और सकेतों से सुपरिचित नही; और दूसरा यह कि वे काव्य के एक-एक बन्द को एक-एक चित्र के रूप मे सजाना चाहती हैं, जिसमे वस्तुओ और व्यापारो की योजना सश्लिष्ट हुआ करती है और चूंकि वे मानसिक कृतियो और वातावरणो को भी उन्ही वस्तु व्यापारो के द्वारा ध्वनित करना चाहती हैं, इसलिए यह कार्य उनके लिए दु साध्य हो जाता है।" इसी लेख मे एक अन्य स्थान पर वाजपेयी जी कहते है कि "छायावाद काव्य के व्यक्त प्रकृति के सौंदर्य-प्रतीकों को न लेकर महादेवी जी ने उन प्रतीकों की व्यापक

गतियों और छायाओ का सग्रह किया है। इससे उनकी रचनाओ मे वेदना की बिवृत्ति और रहस्यात्मकता वढ गई है किन्तु वे स्थल कही-कही अधिक दुरूह भी हो गये हैं। उदाहरण के लिए यह रचना लीजिये—

उच्छ्वासो की छाया में, पीड़ा के आलिगन मे,
निश्वासों के रोदन मे, इच्छाओं के चुम्बन मे,
उन थकी हुई सोती-सी उजियाली की पलको में,
सूने मानस-मन्दिर मे, सपनों की मुग्ध हँसी मे,
आशा के आवाहन मे, बीते की चित्रपटी में,
रजनी के अभिसारो मे, नक्षत्रो के पहरो मे,
ऊषा के उपहासों मे मुस्काती-सी लहरों मे,
जो बिखर पड़े निर्जन मे निर्भर सपनों की मोती,
मै ढूढ़ रही थी लेकर धुँधली जीवन की ज्योती।

लाक्षणिकता उसी हद तक काव्य मे काम दे सकती है, जिस हद तक उसके धारावाही सौदर्य मे रोडे न अटकाये। महादेवी जी के काव्य की जो भूमि है उसी भूमि की रचनाये कतिपय छायावादी कवियों की भी मिलती है, किन्तु उनकी व्यंजना व्यक्त सौदर्य-प्रतीको के और सीधी लाक्षणिकता के आधार पर होने के कारण स्पष्टतर हुई है। उदाहरणार्थ हम निराला जी की ख्यातिप्राप्त रचना 'तुम तुंग हिमालय-शृंग और मै चचल गति सुरसरिता' को ले तो दोनो का अन्तर साफ दिखाई देगा। हमारे कहने का मतलब यह नही है कि महादेवी जी के ऐसे प्रयोग सर्वत्र दुरूह हो गये है, कही-कही वे अतिशय मार्मिक है।"[१]

डा० रामकुमार वर्मा ने आँसू को करुणा के प्रतीक के रूप में लिया है, परन्तु रूपकत्व के कारण अप्रस्तुत्व भी भासित है—

यह जीवन तो छाया है
केवल सुख दुख की छाया,

मुझको निर्मित कर तुमने
आँसू का रूप बनाया।
—रूपराशि।

'बच्चन' ने जीवन की शक्तियों के लिये 'लोहू' का प्रतीक लिया है, किन्तु जीवन को गायन का रूपक देने पर लोहू (मूल्यवान अनुभूति) पर स्याही का प्रच्छन्नारोप भी प्रकट होता है—

१ हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी—पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पृष्ठ १७०, १७५।

मै समझूगा सब व्यर्थ हुआ
भीगी ठढी रातो मे जग

अपने जीवन के लोहू से लिखना अपना जीवन–गायन ।
सुखमय न हुआ यदि सूनापन ।
–एकात सगीत ।

इसी प्रकार विष जीवन की कटुता के लिए प्रतीक-रूप मे गृहीत है और विपत्तियो की समान्तरता से अप्रस्तुत्व भी ध्वनित है--

विष का स्वाद बताना होगा ।
ढाली थी मदिरा की प्याली,
चूसी थी अधरों में लाली,

कालकूट आने वाला अब देख नही घबराना होगा ।
विष का स्वाद बताना होगा ।
--एकांत सगीत ।

'बच्चन' के निम्नलिखित उद्धरण में भोर को विपत्ति-मोचन और तम को निराशा का प्रतीक माना गया है । ये सीमित तथा एकोन्मुखी प्रतीक है--

बहुत संभव कुछ न पाऊँ,
किन्तु कैसे लौट आऊँ
लौट कर भी देख पाऊँगा नही मैं भोर।
मुह क्यों आज तम की ओर ?
–एकात सगीत ।

हाला, प्याला, मधुशाला और साकीवाला, मालिक, मधुशाला और पीने वाला हालावादी काव्य के उपकरण हैं । उमरखैयाम की सुरा आध्यात्मिक प्रेम की सुरा कही जाती है । बच्चन ने भी उसी का अनुकरण कर हाला को अपने प्रतीको मे व्यक्त करने का प्रयत्न किया- –

चाहे जितनी दूँ मै हाला,
चाहे जितने तू पी प्याला,
चाहे जितना बन मतवाला

सुन भेद बताती हूँ अंतिम ।
यह शांत नहीं होगी ज्वाला ।
मैं मधुशाला की मधुबाला ।

यह स्वप्न-विनिर्मित मधुशाला,
यह स्वप्न-रचित मधु का प्याला,
स्वप्निल तृष्णा स्वप्निल हाला,
स्वप्नों की दुनियाँ मे भूला,
फिरता मानव भोला भाला।
मैं मधुशाला की मधुबाला।
—मधुबाला।

बच्चन की हालावादी कविता के प्रतीकों के कतिपय उदाहरण है—

मधुशाला	साकीवाला	प्याला	हाला
विश्व	समीर	नभ	सागर-जल
वीणा	रागिनी	तार	स्वर-लहरी
बलिवेदी	भारतमाता	वीरों के शीश	वीररक्त
प्रणय	प्रेयसी	अधर	यौवनरस
विरही	आँखे	पलक	आँसू

इस प्रकार के राशि-राशि प्रतीक 'मधुशाला' और 'मधुबाला' मे प्राप्त होते हैं, किन्तु इन प्रतीको का निर्वाह सर्वत्र नही हो पाया है।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने भी बहुत ही सुन्दर और मार्मिक प्रतीको का प्रयोग किया है। उनके काव्य मे विशेष रूप से 'कुरुक्षेत्र' मे दो प्रकार के प्रतीक प्राप्त होते है—कोमल और कठोर प्रतीक। जहाँ भाव कोमल होते है, वहाँ का प्रतीक-विधान भी मधुर होता है और जहाँ भाव उग्र एव कठोर होते हैं, वहाँ की प्रतीक-योजना भी उग्र होती है। कोमल प्रतीक-योजना का एक उदाहरण देखिये—

चाहिए उनको न केवल ज्ञान
देवता है मागते कुछ स्नेह, कुछ बलिदान
मोम सी कोई मुलायम चीज़
ताप पाकर जो उठे मन मे पसीज-पसीज
प्राण के झुलसे विपिन मे फूल कुछ सुकुमार
ज्ञान के मरु मे सुकोमल भावना की धार,
चाँदनी की रागिनी, कुछ भोर की मुसकान
नीद मे भूली हुई बहती नदी का गान
रग मे घुलता हुआ खिलती कली का राज
पत्तियो पर गूंजती कुछ ओस की आवाज
आँसुओं में दर्द की गलती हुई तस्वीर
फूल की, रस मे बसी-भीगी हुई जजीर।
—कुरुक्षेत्र

यहाँ कोमल भावों के लिए चाँदनी की रागिनी और भोर की मुस्कान आदि प्रतीक आए है। इन प्रतीको का अर्थ एक-सा है, किन्तु इन सबके प्रयोग से कविता में जो माधुर्य और चमत्कार आ गया है, वह इनके बिना नही आ सकता था। इसी प्रकार कठोर प्रतीको का प्रयोग भी दर्शनीय है—

पर हाय, यहाँ भी धधक रहा अम्बर है,
उड़ रही पवन मे दाहक, लोल लहर है।
कोलाहल-सा आ रहा काल-गह्वर से,
बाडव का रोर-कुराल क्षुब्ध सागर से॥
—कुरुक्षेत्र

नरेन्द्र शर्मा की निम्नलिखित पंक्तियों में ज्योति आशा के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुई है—

तिमिर माया-जाल को हर,
ज्योति से जीवन गया भर,
रहेगा ज्योतित निरंतर,
ज्योति–चुम्बन से हृदय के दीप की बाती जली।
घर-घर जली दीपावली।
—पलाशवन।

छायावाद की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति, लाक्षणिक लाघव, और चित्रात्मकता से प्रगतिवादी पूर्णरूपेण मुक्त नही हो सके। 'अचल' का निम्न प्रतीकात्मक प्रयोग सर्वथा छायावादी है—

उर में आग नयन में पानी, होठो में मुस्कान सजा,
हम हंसते इठलाते चलते, इतरा-इतरा बल खा-खा।
अपनी तरणी फेंक प्रलय की लहरों में खुल खेले हम,
आज भाग्य के उल्कापातों को हंस-हंस कर झेलें हम॥
—मधूलिका।

गोपालसिंह नैपाली ने दीपक को जीवन के प्रतीक के रूप मे व्यवहृत किया है—

दुख की घनी बनी अंधियारी,
सुख के टिमटिम दूर सितारे।
उठती रही पार की बदली,
मन के पछी उड़-उड़ हारे।

बची रही प्रिय की आंखों से,
मेरी कुटिया एक किनारे।
मिलता रहा स्नेह-रस थोड़ा,
दीपक जलता रहा रात भर।।
—नवीन।

जानकीवल्लभ शास्त्री ने चित्र को 'नामरूप' जग का प्रतीक बनाया है—

किसका रंग किसकी रेखा ?
प्राण छोड़ कर तन का लेखा।
मैंने ऐसा चित्रा न देखा—

जिसमे स्वर हों सप्त बिखेरे।
रूपचितेरे! रूपचितेरे!!
—गीत-वितान।

हंसकुमार तिवारी ने तम को अज्ञान और भाषा को विचारों की अभिव्यक्ति के साहस आदि के लिए प्रयुक्त किया है—

तम मे ही मेरा जन्म हुआ,
तम मे ही होने चला शेष।
मैं तो किस्मत का मारा हूं,
मैं शेष रात का तारा हूं।।
—रिमझिम।

रहस्यवाद छायावाद की एक प्रवृत्ति है। "रहस्यवादी समुदायों के प्रधान प्रतीक 'रहस्यात्मक खोज', आत्मा का विवाह और (हठयोगी के) 'पारसपत्थर' हैं।[१] इन प्रतीको मे रहस्यात्मक खोज के प्रतीक आधुनिक हिन्दी-कवियों को विशेष

---

१ आधुनिक काव्यधारा—डा० केसरीनारायण शुक्ल, पृ० २३९।
शुक्ल जी के रहस्यवादी प्रतीकों का यह वर्गीकरण बहुत कुछ ई० अंडरहिल के वर्गीकरण पर आश्रित है—

The symbols of pilgrimage (Divine transcendence) the symbols of love (mutual desire), and the symbols of transmutation (divine immanence.). —*Mysticism.*

Psychology of Unconcious शीर्षक पुस्तक में जुंग ने रहस्यवादी प्रतीकों का मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुत विशद विवेचन किया है।

रूप से प्रिय रहे है । प्रसाद जी की निम्नलिखित अन्योक्ति में इसी भाव की व्यंजना हुई है । सरिता देवलोक की अमृत-कथा की माया हिमालय को छोड़कर हरे-भरे मैदानों मे न रमती हुई सागर मे (जिसका देखा था सपना) परमविश्राम की आकांक्षा में बहती हुई चली जा रही है ।

देवलोक की अमृत-कथा की माया,
छोड हरित कानन की आनस-छाया ।
विश्राम मांगती अपना जिसका देखा था सपना ।

—लहर

इस प्रकार सदैव आगे बढकर प्रिय को खोजती हुई चली जाने वाली और पीछे मुड कर भी न देखने वाली सरिता को देखकर पंत जी की यह जिज्ञासा जागती है कि उसे अनन्त का पथ किसने बतलाया—

मां उसको किसने बतलाया उस अनन्त का पथ अज्ञात ।
वह न कभी पीछे फिरती है, कैसा होगा उसका बल ?
—वीणा ।

मोहनलाल 'वियोगी' भी इसी प्रकार के प्रतीक माध्यम से कहते है—

यद्यपि मै हू लिये पीठ पर जीवन का गुरु भार ।
तरी डूबने का यदि भय हो कहीं यही दूं डार ।।
हाथ जोड़ता हूं न सताओ तुम हो बड़े उदार ।
मुझे अब पहुँचा दो उस पार ।।
—निर्माल्य ।

आत्मा के विवाह के प्रतीक का प्रयोग निराला और महादेवी ने अधिक किय है । अपने वर की प्रतीक्षा मे निमग्न-वधू के चित्र का प्रतीक प्राय: उनके काव्य मे आता है । अभिसारिका (आत्मा) अपने प्रिय के पथ पर चलती है, किन्तु जग उसका उपहास करता है । उसने अपने प्रिय की पग-ध्वनि सुन ली है और उसका अब पीछे लौट जाना असम्भव है । उसका अग-अंग प्रसन्नता से पुलकित हो उठा है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती सब कहते श्रंगार ।
कण-कण कर कंकण, किण-किण रव किंकिणी ।
रणन्-रणन् नूपुर उर लाज लौट रंकिणी ।।
शब्द सुना हो तो अब लौट कहां जाऊं ।
उन चरणों को छोड़ और शरण कहां पाऊँ ।।
बजे साजे उर को इस सुर के सब तार ।
—गीतिका ।

'तुम जावगे चले' शीर्षक सम्पूर्ण कविता प्रतीकात्मक शैली में लिखी गई है। प्रात (जन्म) होने पर प्रियतम (ईश्वर) का प्रेयसि (आत्मा) से वियोग हो जाता है। रात्रि (जन्म से पूर्व) मे वे दोनों एक दूसरे के समीप थे, किन्तु आलोक (माया) के फूटते ही उन दोनों पर भेद छा गया और वे विलग हो गये—

हुआ प्रात प्रियतम ! तुम जावगे चले ?
कैसी थी रात, बन्धु थे गले-गले
फूटा आलोक,
परिचय-परिचय पर जग गया भेद, शोक !
छलते सब चले एक अन्य के चले।

—गीतिका।

महादेवी जी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति इसी प्रकार के प्रतीकों द्वारा हुई है। उदाहरणार्थ—

नयन मे जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण मैं वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूँ।
एक होकर दूर तन से छांह वह बल हूँ॥
दूर तुमसे हूँ, अखण्ड सुहागिनी भी हूँ॥

—यामा।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जहाँ 'कवि, कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए'— का झंझा उठाते हैं, वहाँ चिन्तन की नीहारिका में प्रतीकों द्वारा आत्मा की विदाई का लुभावना गीत भी गाते हैं—

डोले वालो, बढ़े चलो तुम,
छोड़ो अटपट चाल रे,
सजन-भवन पहुँचा दो हमको,
मन का हाल-बिहाल रे,
बरखा-ऋतु मे सब सहेलियाँ
मैके पहुँची जाय रे,
बाबुल-घर से आज चलीं हम,
पिय-घर लाज विहाय रे,
उनके बिन बरसाती रातें,

कैसे कटें अचूक रे,
पिय की बाहु उसीस न हो तो,
मिटे न मन की हूक रे !

—स्वासि ।

इस प्रकार की रहस्यात्मक भावना का प्रचुर प्रयोग कबीर-साहित्य में प्राप्त होता है। वैष्णव-भक्ति मे यह 'माधुर्य-भाव' के नाम से पुकारी जाती है। "आधुनिक विकास तथा परिवर्तन के प्रतीकों का बहुत कम प्रयोग किया है। 'पारसपत्थर' का संयोग कवियो को अधिक आकृष्ट न कर सका। इसके उदाहरण यदा-कदा मिलते हैं।'नेपाली' की निम्नलिखित पक्तियो मे इसकी ओर सकेत हुआ है—

मै तो पृथ्वी पर पड़ा लोह, बस बाट तुम्हारी रहा जोह।
तुम पारस कर दोगे कचन, तुम कब समझोगे मेरे मन ॥

—उमंग।

'निराला' की निम्नलिखित पंक्ति में अन्तर्मुखी साधना की व्यजना हुई है—

पास ही रे हीरे की खान,
खोजता कहाँ और नादान।

—गीतिका।

इन उदाहरणो से आधुनिक कवियो की रहस्यात्मक प्रतीकात्मकता का परिचय मिलता है।— यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि प्रतीक साकेतिक होते है, सत्य नही। इनके शब्दार्थ का अधिक आग्रह न कर इनके इगित पर ध्यान देना चाहिये। शब्दार्थ पर अधिक जोर देने से प्रतीकों का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और वे कवियो के साम्प्रदायिक विचारों की प्रतिध्वनि बन जाते है। दूसरों को समझाने के प्रयत्न मे प्रतीकों के अंग-प्रत्यंग का निरूपण करने से वे हास्यास्पद बन जाते है। प्रतीको का अधिक विवरण उनकी साकेतिकता नष्ट कर देता है, क्योकि प्रतीक केवल प्रतिकृति है, इससे अधिक कुछ नही।"[१]

'निराला' जी ने कही-कही पर वेदान्त के प्रतीकों को प्रस्तुत किया है। वह 'मैं' ब्रह्म के प्रतीक—रूप मे व्यवहृत करते हुए कहते है—

वहाँ कहाँ कोई अपना, सब सत्य नीलिमा मे लयमान।
केवल मै, केवल मै, केवल मै ज्ञान ॥

—परिमल।

कभी कभी अन्योक्तियों द्वारा निराला जी आत्मा और शरीर के सम्बन्ध की चर्चा करते हैं। मै (आत्मा) सह (शरीर) मे अवरुद्ध होकर नही रहना चाहता—

मै न रहूँगा गृह के भीतर,
जीवन मेरे मृत्यु के विवर।
यह गुहा गर्त, प्राचीनरुद्ध, नवदिक् प्रसार वह किरणशुद्ध।।
—गीतिका।

इतने विवेचन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि छायावादी कवियो ने सौन्दर्यमय प्रतीक—योजना द्वारा भावाभिव्यक्ति को मूर्तता, चित्रात्मकता एव तीव्रता देने का अभिनव सफल प्रयास किया है। प्रतीकात्मकता छायावादी अभिव्यक्ति का सबल-सबल है। इस युग के कवियो ने तीन प्रकार से प्रतीको का प्रयोग किया है—

१. उपमानच्छल से
२. रूपकच्छल से
३ लक्षणा से।

उपमान-रूप प्रयुक्त प्रतीक एकभाव या विषय की सूचना देते है, जबकि सागरूपको के अनेक प्रतीक क्रिया या क्रिया-प्रवाह की सूचना देते हे। लक्षणा द्वारा प्रतीकों की अनुभूति मे तीव्रता और साम्य लाने का प्रयास किया जाता है। छायावादी कवियो मे प्रसाद जी के प्रतीको मे भावोच्छलता अधिक है। निराला जी के प्रतीक-विधान मे कही दर्शन की व्यापकता और गहराई है, तो कही शृंगार और मादकता का मांसल प्रसाद है। पत जी ने प्रतीको का प्रयोग विवेकवादियो की दृष्टि से किया है, अत: उनकी प्रतीक-योजना मे बडी ही भव्य मूर्तिमत्ता है। महादेवी जी के प्रतीक चित्र की तूलिका के चटकीले रंग और छाया-प्रकाश की हलकी-गहरी छायाओ से सवारे है। कही व्यथा से सजल, कही सुहाग से रंगीन, तो कही बौद्धिकता से शान्त, सकान्त और सतेज है। डा० रामकुमार वर्मा के प्रतीको मे दार्शनिकता है। डा० 'बच्चन' के प्रतीक सीधे, खुले और ऐन्द्रिय होते हैं। 'दिनकर' की प्रतीक-योजना में बौद्धिकता और मनोवैज्ञानिकता है। नरेन्द्र शर्मा के प्रतीक अपेक्षतया अधिक मांसल होते है। रामेश्वर शुक्ल 'अचल' के प्रतीकों में शारीरिकता के साथ उर्दू का प्रभाव झलकता है। गोपालसिंह नैपाली के प्रतीक प्राय: स्पष्ट और मूर्त होते है। जानकीवल्लभ शास्त्री के प्रतीकों में दार्शनिक विस्तार की छाया रहती है और हंसकुमार तिवासी के प्रतीकों में कला एव चिन्तन की चेष्टा जागरूक रहती है।

डाक्टर केसरी नारायण शुक्ल ने हिन्दी-कविता पर आंग्ल-प्रभाव की आलोचना करते हुए लिखा है कि "अंग्रेजी कविता का वर्तमान हिन्दी-कविता पर बड़ा

व्यापक प्रभाव पड रहा है। प्रतीकात्मक काव्य की रचना और भाषा के लाक्षणिक प्रयोग मे हिन्दी के कवियो को इस ओर से पर्याप्त उत्तेजना मिली है। अधिकाश कवियों को इसमें अच्छी सफलता मिली है। कभी इन कवियों के प्रयास निष्फल भी हो जाते है। कभी-कभी ये कवि ऐसे प्रतीक हमारे सामने रख देते है जो व्यर्थ या अर्थहीन प्रतीत होते है। य भूल जाते है कि विदेशी भाषा के प्रतीक उस भाषा से अपरिचित पाठको के हृदय मे कवि की आन्तरिक भावना को जागरित करने मे असमर्थ होते हैं। ऐसे प्रतीक भाव-वहन मे असफल प्रमाणित होते हैं—

एक जीवन का पहला पृष्ठ देवि तुमने उलटा है आज।

—मधुकण : भगवतीचरण वर्मा।

अंगरेजी के 'पेज आफ लाइफ' से अपरिचित पाठको के लिए यह पंक्ति पहेली बन सकती है। इसी प्रकार 'दिनकर' की निम्नलिखित पंक्ति मे 'समय-रेत', अंग्रेजी के 'सैन्ड आफ टाइम' का अनुवाद जान पडता है—

सुन्दरता का गर्व न करना ओ स्वरूप की रानी।
समय-रेत पर उतर गया कितने मोती का पानी॥

—विशाल भारत–जीवन संगीत, नवंबर १९३२।

महादेवी वर्मा की निम्नलिखित पक्ति मे मृत्यु के ठढे अधरो की भावना भी हमे विदेशी प्रतीत होती है—

काल के प्याले मे अभिनव, ढाल जीवन का मधु आसव।
नाश के हिम अधरो से कौन, लगा देता है आकर मौन॥

—रश्मि।

अग्रेजी के 'इनोसेन्स' (निर्मलता और भोलापन) की भावना पंत की इन पंक्तियों मे समुचितरूप से नही व्यक्त हो रही है—

चाँदनी का स्वभाव मे वास, विचारो मे बच्चों की साँस।

—पल्लव।

नीचे की पंक्ति में मान चूमने मे मानमोचन की भावना न आ सकी—

चूम मौन कलियो का मान, खिला मलिन मुख में मुस्कान।

—पल्लव।

यह पंक्ति अंगरेजी के 'किस्ड अवे दि फेड ऐगर आफ़ दि बड्स' का अनुवाद-सा जान पडती है। पंत की निम्नलिखित पक्ति में ज्योत्सना की रुग्णा बाला से तुलना सामान्य भावना के प्रतिकूल है। ज्योत्सना प्रसन्नता सूचित करती है, दुख नही—

जग के दुख दैन्य शिखर पर यह रुग्णा जीवन-बाला।
रे कब से जाग रही वह, आँसू की नीरव माला ।।

—पल्लव ।

पंत की निम्नलिखित पंक्तियों मे यूरोप के गोचारण-काव्य की झलक वर्तमान है—

शिखर पर विचर मरुत रखवाल वेणु मे भरता था जब स्वर।
मेमनो से मेघो के बाल कुदकते थे प्रमुदित गिरि पर ।।

—पल्लव ।"[1]

हो सकता है कि डा० केसरीनारायण जी शुक्ल के समय मे इस प्रकार के प्रयोग अपनी अभिनवता के कारण आग्ल-अन्धानुकरण, अनुपयुक्त, अवाञ्छनीय लगे हो, किन्तु आजकल तो इनके निरतर व्यवहार के कारण इस प्रकार के प्रयोग अभिव्यक्ति मे सौदर्य लाने एवं भाव-वृद्धि मे सहायक स्वीकार किये जाते है।

छायावादी कवियो के अधिकांश प्रतीक अमूर्त ही रहे है, किन्तु इस प्रकार के काव्य के विरोधी प्रगतिशील कवियों ने अधिकतर मूर्त प्रतीकों का ही विधान किया है। हिन्दी के प्रगतिशील लेखको की नई पीढी पर अग्रेजी के आधुनिक कवि आडेन और उसके वर्ग के लेखको का भी पर्याप्त प्रभाव पडा है। आडेन वर्ग के सभी लेखक मार्क्सवादी विचारधारा के है। इन कवियो ने काव्य के अन्तरग के साथ बहिरग मे भी परिवर्तन किया है। ये सब रोमासवादी प्रतीकों और बिम्बों के विरोध मे है तथा अपनी कविता की वाणी को आधुनिक वातावरण के अनुकूल ही रखने के पक्ष मे है। इनके प्रतीक औद्योगिक जगत से लिये गये है। हिन्दी-कवियो की नई पीढी के प्रगतिशील लेखक इस वर्ग से प्रभावित है। इन नवीन कवियो ने आडेन वर्ग की सामाजिक और राजनीतिक कविता से विशेष प्रेरणा प्राप्त की है। प्रगतिवादी कवियो ने अधिकाश प्रतीको का चयन समाज से ही किया हे। अतः इनके प्रतीक-विधान मे छायावादियों की भाँति कहीं भी किसी प्रकार की दुर्बोधता और अमूर्तता नही है, अपितु सर्वत्र सुबोधता और स्पष्टता है।

मार्क्सवाद समस्त मानव-जाति को दो भागों मे विभाजित देखता है—
१-शोषक (पूजीवादी वर्ग) और २-शोषित (श्रमिक, कृषक और नारी)। प्रगतिवादी कवियो ने शोषितों के बहुत ही हृदय-विदारक चित्र अपनी कविता में अकित किये हैं। पूजीपतियों द्वारा किये गये अत्याचारों और पूजीवादी व्यवस्था के भयंकर परिणामो पर हिन्दी मे अनेक प्रतीकात्मक रचनायें लिखी गई हैं। 'निराला' जी की 'कुकुरमुत्ता' पूजीपतियो द्वारा किये गये शोषण के प्रति विद्रोह की आवाज बुलन्द करती है। इस कविता मे 'निराला' जी ने दो भागों में कल्पित सम्वादों द्वारा गुलाब और कुकुरमुत्ता को प्रतीक-रूप में ग्रहण किया है। इसमे साम्यवाद के

१ आधुनिक काव्यधारा—पृष्ठ २२७—२२८.

अतिरेकों पर व्यग्य भी किया गया है। प्रथम खण्ड मे गुलाब और नवाब के बाग के कुकुरमुत्ते की बातचीत है। द्वितीयखड प्रथम की अपेक्षा अधिक कथात्मक है। गोली और बहार की कथा द्वारा निम्नवर्गीय जीवन का यथार्थ भी सामने आया है। नवाबजादी बहार और मालिनी की पुत्री गोली मे संवाद हुआ है। इन दोनों के बीच उत्पन्न सहज प्रेम साम्यवाद के वर्ग-विशेष की आलोचना है। यहाँ कवि ने मानव के सहज सम्बन्ध पर बल दिया है। बहार और गोली मे गुलाबबाड़ी के कुकुरमुत्ते पर बात-चीत होती है और गोली से कुकुरमुत्ते की प्रशसा सुनकर नवाब-पुत्री बहार गोली के घर उसका स्वाद लेती है। घर आकर जब उसने नवाब साहब से उसकी प्रशंसा की तो उनके मुँह में भी पानी भर आया, पर अब कुकुरमुत्ता समाप्त हो चुका था। नवाब का सर्वहारा-प्रेम दिखावटी और झूठा है। यहाँ प्रचलन के नाते होने वाले साम्यवादियो पर व्यग्य है। निराला जी का तात्पर्य है कि जैसे कुकुरमुत्ता उगाये नही उगता, उसी प्रकार साम्यवादी क्रान्ति बलात् नही होगी। इसी प्रकार प्रथम खड में कुकुरमुत्ते की गर्वोक्ति साम्यवाद के सास्कृतिक खोखलेपन की संकेतक है—

आया मौसम खिला फारिस का गुलाब,
बाग पर उसका जमा था रोबोदाब,
वही गदे मे उगा देता हुआ बुत्ता,
पहाड़ी से उठा सर ऐंठ कर बोला कुकुरमुत्ता—
"अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत, गर पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट,
कितनो को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रक्खा, सहाया जाड़ा-घाम,
हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर पर रख वह, पीछे को भगा;
जानिब औरत की, मैदाने जंग छोड़,
तबेले को टट्टू जैसे तंग तोड़।
शाहों, राजो, अमीरों का रहा प्यारा,
इसलिये साधारणों से रहा न्यारा;
वर्ना क्या हस्ती है तेरी, पोच तू,
काँटों से ही है भरा, यह सोच तू,
कली जो चटकी अभी, सूख कर काँटा हुई होती कभी,
रोज पडता रहा पानी,
तू हरामी खानदानी,

चाहिये तुझको सदा मेहरुन्निसा,
जो निकाले इत्र-रू ऐसी दिशा,"
—कुकुरमुत्ता।

इसके पश्चात् कुकुरमुत्ता अपनी उपयोगिता और महत्व का व्याख्यान करता है—

देख मुझको मैं बढा,
डेढ़ बालिश्त और ऊँचा हूँ चढा,
और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मै,
कलम मेरा नही लगता,
मेरा जीवन आप जगता,
तू है नकली, में हूँ मौलिक,
तू है बकरा, मे.हूँ कौलिक;
तू रंगा और धुला,
पानी मैं, तू बुलबुला
तूने दुनियाँ को बिगाड़ा,
मैंने गिरते से उभाड़ा;
तूने रोटी छीन ली जनखा बना,
एक की है तीन दी मैंने सुना ?
काम मुझसे ही सधा है,
शेर भी मुझसे गधा है।
—कुकुरमुत्ता।

इसी प्रकार नरेन्द्र शर्मा की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' शीर्षक कविता भी प्रतीकात्मक रचना है, जिसमें मध्याह्न पूजीवादी शोषण का प्रतीक है, जिसके आतंक से सम्पूर्ण संसार व्याकुल हो उठा है। धरा की छाती पर मध्याह्नकाल ऐसा पड़ा है जैसे कोई अहि समस्त पृथ्वी को अपनी कुण्डली मे भरे हुए है; जब इस अहि-मुख से विषभरी भयावह फूत्कार निकलती है, तो धरा पर जीवन का कोई चिन्ह शेष रहता हुआ नहीं दृष्टिगत होता—

ज्यों घेर सकल संसार, कुण्डली मार,
पड़ा हो अहि विशाल,
आक्रांत धरा की छाती पर
गुम-सुम बैठा मध्याह्नकाल !
मध्याह्न-काल ज्यों अहि विशाल
केन्द्र में सूर्य—

शोभित दिन-मणि से गर्वोन्नत ज्यों भीम भाल ?
कर गरल-पान सब विश्व शान्त,
तृण-तरु न कहीं भय से हिलते—
जीवनी-शक्ति, जैसे परास्त हो महामृत्यु से, पड़ी क्लान्त ?
अधबुझी चिताओं के मसान के ही समान सर्वत्र शान्ति—
डिगती न तनिक तिल-भर भी जो ज्यों भीषरभूधर—
दुर्निवार ?

पलाशवन : नरेन्द्र ।

यह विशाल भयंकर अहि क्रूरता से सम्पूर्ण चर-अचर का शोषण करने पर तुला हुआ है—

वह गरज-गरज धू-धू करती बहने वाली अहि फूत्कार—
लू हरहर कर हरती चलती है विश्वप्राण ?
विषभरी भयावह फूत्कार—
भीषण बेरहम थपेड़ों से सबको पछाड,
बेबस धरणी की छाती पर चर-अचर सभी को झुलस—
जला नीचे दबोच औ 'कूट-कुचल कर माँस-हाड'
लो, सहसा ठहर गई पल में ज्यों महाशून्य मे महानाश
का—सा पहाड ?

—पलाशवन : नरेन्द्र ।

इतना ही नही, यह विशाल अहि अपने क्रूर अधरों पर उपहास रख कर संसार की ओर देखता है कि क्या कही जीवन का अवशेष अब भी है—

क्या जीवन का अवशेष कही ?—
उपहास क्रूर अधरो पर धर, अपलक आँखों में ज्वाला भर,
अजगर अब देख रहा है भव ?
(देखा सगर्व) सामने पड़ा—उन्मूल, धूल मे मिले पुराने बरगद—सा
ज्यों निखिल विश्व के पूर्ण पराभव का वैभव ?

—पलाशवन ।

इतने ही में—
मृतप्राय पेड़ की कोटर से, लो कांव-कांव कर उठा काग ?—
जीवन तरु का चिर-अजयपत्र,
उसको न जलाती प्रलय-ज्वाल,
उसको न डुबाते प्रलय-सिन्धु,
फिर भस्म उसे कैसे करती मध्याह्नकाल के विषधर की, विषभरी आग ?

—पलाशवन ।

आखिरकार मध्याह्नकाल का दर्प चूर्ण होता है और उसका पराभव होता है—

धीरे-धीरे अब बीत चला मध्याह्नकाल ?
ढल गई दुपहरी की बेला,
झुक गया सूर्य झुक गया भाल ?
चल दिया किसी अज्ञात विवर को अहि कराल ?
हो चुका पराक्रम पूर्ण,
हुआ अब दर्प चूर्ण,
अब बीत चला मध्याह्नकाल ॥

—पलाशवन ।

पराभव के पश्चात्—

गूंजेगी दूर कहीं कुन्जों मे मरण-वेणु,
छायेगी गोपथ पर करुणा की कनक-रेणु,
आयेगी जीवन की संध्या जब बनी धेनु,
रहस-रहस रंभा मुक्ति-गीत गाती हुई ।

—पलाशवन ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि नरेंद्र शर्मा की 'ज्येष्ठ का मध्याह्न' शीर्षक कविता एक प्रतीकात्मक रचना है, जिसमें मध्याह्न पूंजीवादी शोषण का प्रतीक है । जिसके क्रूर अत्याचारो से सारा विश्व विक्षुब्ध हो उठा है, किन्तु समय आने पर उसका भी अन्त हो जाता है और लोगों को अत्याचारों से मुक्ति मिलती है ।

निम्नलिखित पंक्तियों में प्रकृति का प्रतीक-रूप में चित्रण किया गया है । यहाँ चित्रण तो प्रकृति का ही है, किन्तु वर्णन ऐसे ढंग से किया गया है कि कविता का अभिधार्थ व्यंग्यार्थ में परिवर्तित हो जाता है—

पतझर की सूखी शाखों में लग गई आग, शोले दहके !
चिनगी-सी कलियाँ खिली और हर फुनगी पर लाल फूल लहके !
सूखी थीं नसें, बहा उनमें फिर बूंद-बूंद का नया खून,
भर नया उजाला डालों में खिल उठे नये जीवन-प्रसून !
अब हुई सुबह चमकी कलंगी, दमके मखमली लाल शोले !
फूले टेसू-बस इतना ही समझे पर देहाती भोले ?
लो डाल-डाल से उठी लपट ! लो डाल-डाल फूले पलाश ;
यह बसंत की आग, लगा दी आग जिसे छूले पलाश !
लग गई आग; बन में पलाश, नभ में पलश भू पर पलाश !
लो चली फाग; हो गई हवा भी रंगभरा-छूकर पलाश !

आते यो, आयेगे फिर भी वन मे मधु-ऋतु पतझार कई,
मरकत प्रवाल की छाया मे होगी सब दिन गुंजार नई।
—पलाशवन।

इस कविता में सूखी नसों मे नये खून का बहना, लाल शोले, नई गुंजार आदि पद कविता को मानव-जीवन पर घटित करते हैं। लाल रंग के पलाश की इतनी अधिकता लाल रूस की याद दिलाती है। प्रतीक का कार्य यही है। मानव के प्रेम, वासना, शृंगार, दुःख-वेदना, असन्तोष, विद्रोह, क्रान्ति, देशभक्ति आदि के प्रतीकों के रूप मे प्रकृति के चित्रण किये गये है। 'अंचल' की वासना जब उद्दीप्त होती है, तब वह इतनी विराट हो जाती है कि विशाल प्रकृति के अंग-अग में व्याप्त-सी हो जाती है। उस समय प्रकृति का प्रत्येक अवयव एव उसकी प्रत्येक गति उसी वासना की प्रतीक हो जाती है :—

पूरब दिशा से घिरी बदरिया फिर बरसेगी पीर घनेरी,
अलख, अकूल, अतल से निकलेगी तूफानी तृष्णा मेरी।

*　　　*　　　*

घोर काली रात थी घहरा उठा था तम गगन में,
डोलते थे हहर पीपल पर्ण तृष्णाकुल पवन में,
जल दिगन्तो मे रही थी शून्य सन-सन-सी उदासी,
अब बिछुड़ते है विकल हो तृषित हृदयों के निवासी।
—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : अपराजिता।

भगवतीचरण वर्मा की चरर-चरर चूं चरर-मरर करती हुई 'भैंसागाड़ी' शीर्षक कविता भारत के शोषित, जर्जर तथा निर्धन ग्रामों का प्रतीक है। इसी प्रकार प्रभाकर माचवे की 'कछुआ' नामक कविता मे कछुआ भारतीय संस्कृति का प्रतीक है, जो नये ज्ञान की सूक्ष्म लहर के स्पर्श तक से बचा रहना चाहता है।

केदारनाथ अग्रवाल ने शोषको के प्रति अपना आक्रोश स्थान-स्थान पर भिन्न-भिन्न ढंग से व्यक्त किया है। प्रतीक-पद्धति द्वारा शोषितों की विवशता प्रदर्शित करता हुआ कवि कहता है—

रात अंधेरी
दिया न बाती
तकवैया कुरिया में बैठा
ताक रहा है अपनी खेती।
प्यारे-प्यारे प्यारे पौधे
जिनको उसने खुद उपजाया

नाती पोते और पनाती-सा दुलराया
उन सबको—उन सब पौधों को
भारी तम ने ढांप लिया है।
हिंसक पशु धावा करते है
लाचारी है। ⋯ ⋯
तकवैया हैरान बहुत है।
एक सुअर है
सौ सुअरों का उसका दल है
सब मिल कर हत्या करते है
नाती पोतों की-पौधो की
रात अधेरी
दिया न बाती
डर धरती पर रेग रहा है
तकवैया बेहद चिन्तित है।

—युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल।

प्रगतिवादी भू-प्रेमी होता है। उसे आकाश और वहाँ की चीजें उसके लिये व्यर्थ है, क्योंकि वे उसके काम नही आयेंगी। निम्नलिखित 'बीज', 'बादल' और 'बिहग' शीर्षक प्रतीकात्मक रचनाओं मे इसी उपयोगितावाद की व्यंजना है—

(१) प्यार से सीचूं तुझे ओ बीज मेरे
एक दिन तूही बनेगा फूल!
इसलिये आयास
क्योंकि होगा व्यक्त तू ही हास मधुर विकास मे,
हास फुल्लोल्लास पायेगा तभी, तू समय आने दे
आज मिट्टी मे मुझे तुझको बिछाने दे
जल बहाने दे।

(२) तड़ित कम्पन तेज मे बीते न अन्तर्शक्ति,
शून्य मे ही न चुक जाये सिन्धु की आसक्ति,
दम्भ है यह उच्च तारे, रिक्त है यह धूम,
उतर भूपर, प्रणय की हरियालियों को चूम।

(३) उन्मुक्त द्वार, पंख मे शक्ति भरपूर।
फिर भी ओ मेरे विहंग, तू उड़ न दूर।
उन्मुक्त द्वार, मेरे विहंग, पर उड न हाय!
मत कर सुवर्ण को अर्थहीन, यों नि:सहाय!

बादल, बिजली, तारे, चन्दा, सूरज अनेक
है नभ के, पर मेरा है तू ही मात्र एक !
—मुक्तिमार्ग : भारतभूषण अग्रवाल ।

मार्क्सवादी लेखक नारी मे एक ऐसा शोषित वर्ग देखता है, जिसका नर द्वारा बहुत शोषण किया गया है । नारी नर की सम्पत्ति है, उसके विलास का साधन समझी जाती है । उसका स्वयं का कोई व्यक्तित्व नही है, वह नर की छायामात्र है । ऐसे नारी-सम्बन्धी अनेक विचार प्रगतिवादियों द्वारा व्यक्त किये गये है । पंत जी कहते हैं—

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूतयोनि वह, मूल्य चर्म पर उसका केवल अकित,
अंग-अग उसका नर के वासना-चिन्ह से मुद्रित,
वह नर की छाया, इगित संचालित, चिर पद लुण्ठि ा !

* * *

योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित ?
—ग्राम्या : सुमित्रानन्दन पत ।

किन्तु कवि को विश्वास है कि नारी नर-पाशों से मुक्त होकर किये गये अत्याचारो का एक दिन प्रतिकार लेगी । निम्नलिखित उद्धरण मे कवि ज्वालामुखी को नारी की क्रान्ति के प्रतीक-रूप प्रयुक्त करता हुआ कहता है—

क्राति का तूफान जब विश्व को हिलायेगा
ये बाजार की असंस्कृता निर्लज्ज नारियाँ
जो कि न 'योनिमात्र रहकर' बनेगी प्रदीप्त
उगलेगी ज्वालामुखी ।
—किरणबेला : अंचल ।

मार्क्सवाद ईश्वर पर विश्वास नही करता । मार्क्सवादी सिद्धान्तानुसार ईश्वर शोषक-वर्ग द्वारा निर्मित एक अस्त्र है, जिसे शोषितो को सदैव दासता की जंजीरों में जकड़ रखने के लिए प्रयुक्त किया जाता है । उदाहरणार्थ 'ग्राम-देवता' कविता मे पत जी का ईश्वर के प्रति दृष्टिकोण व्यंग्यात्मक है । उनका 'ग्राम-देवता' शोषण का प्रतीक है । वह जन-स्वातन्त्र्य के युद्ध को देख कर अपना हृदय थाम कर रह जाता है । ऐसे ग्राम-देवता से रूढ-रीति की अफीम खाकर चिर विश्राम लेने की सलाह देते है :—

हे ग्रामदेव, लो हृदय थाम
अब जन स्वातन्त्र्य-युद्ध की जग मे धूमधाम

* * *

तुम रूढ रीति की खा अफीम लो चिर विराम ।
—ग्राम्या ।

इसी प्रकार अंचल के लिये भी ईश्वर प्रवंचक है—

ऊपर बहुत दूर रहता है शायद आत्मप्रवंचक एक,
जिसके प्राणों में विस्मृत है उर में सुख श्री का अतिरेक !
—मधूलिका ।

प्रगतिवाद केवल समाज के शोषण के प्रति जागरुक होकर ही मौन नही रहता, वह उसके निराकरण के उपाय क्रांति का आह्वान भी करता है। सामाजिक क्रांति के सुन्दर दर्शन हमे नवीन, दिनकर, रामविलास, शिवमगलसिह 'सुमन' आदि कवियों की कविताओं में मिलते है। दिनकर ने क्रांति के विविध रूपों का चित्रण किया है। उनकी 'त्रिपथगा' कविता में क्रान्ति एक नर्तकी के रूप मे चित्रित हुई है। क्रांति की प्रतीक इस नर्तकी का परिचय उसके ही शब्दों में देखिये——

मेरे मस्तक पर छत्र मुकुट वसु-काल-सर्पिणी के शत-फन,
मुझ चिर कुमारिका के ललाट मे नित्य नवीन रुधिर चन्दन।
आंजा करती हूँ चिता-धूम का दृग में अन्ध-तिमिर-अजन,
संहार-लिपट कर चीर पहन नाचा करती मे छूम छनन ।।
पायल की पहली झमक, सृष्टि मै कोलाहल छा जाता है,
पड़ते जिस ओर चरण मेरे भूगोल उधर दब जाता है।
—हुंकार ।

नरेन्द्र शर्मा को विश्वास है कि भावी संतति क्लेश के प्रतीक तम को इस ससार से क्रांति द्वारा विनष्ट कर सकेगी—

धनुषाकार अर्द्ध रवि बनकर
बना क्षितिज प्रत्यंचा हम
अरुण अग्नि शावक वाणों से
क्षण में हर लेगे भव का तम !
—प्रभातफेरी ।

वे क्रांति के प्रतीक शिव को इस धरा पर अन्याय समाप्त करने के लिए आह्वान करते हैं—

नाचो शिव इस निर्दय जग पर
अन्यायी के आडम्बर पर !
—प्रभातफेरी ।

डाक्टर रामविलास शर्मा क्रान्ति के लिए फसल का प्रतीक प्रयुक्त करते है, जिसे धरती के पुत्र किसान परिश्रम करके अन्त मे काटेंगे—

कुसंस्कृति भूमि यह किसान की
धरती के पुत्र की
जोतनी है गहरी दो-चार बार दस बार
बोना महातिक्त वहाँ बीज असंतोष का
काटनी है नये साल फागुन में फसल जो क्राति की।

—प्रथम तारसप्तक।

आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रगतिवाद के अतिरिक्त दूसरी महत्वपूर्ण प्रवृत्ति मनोविश्लेषणवादी कविता की है। मनोविश्लेषण-विज्ञान ने हिन्दी-कविता को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। हिन्दी-कवियो मे 'सेक्स' को समस्त मानवीय प्रवृत्तियों का केन्द्र मानने मे अंचल सबसे आगे है। वह लिखते है कि "आधुनिक साहित्य में ऊंचाइयाँ और गहराइयाँ है जो पहले सम्भाव्य न थी। यदि एक ओर वैज्ञानिक आविष्कारों ने मनुष्य को प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने में सहायता दी है, तो दूसरी ओर मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण-विज्ञान ने यह दिखा दिया है कि मनुष्य का अपने ऊपर कोई नियन्त्रण नही। वह अपने चेतन मन के नीचे दबी पड़ी रहने वाली अवचेतन एव अर्द्धचेतन प्रेरणाओं के सामने सर्वथा असहाय है। उसके मस्तिष्क पर इन अज्ञात प्रेरणाओ का निरन्तर आक्रमण होता रहता है।"[1] अंचल सामाजिक वर्जनाओ से परिपीड़ित है। उनकी वासना को अपनी अभिव्यक्ति के लिये पूर्ण अवसर नही मिल सका और वह अब उनकी कविता मे एक ज्वालामुखी की भाति फूट पड़ी है—

वासना, बस कुछ न पूछो, है विरस निष्फल जवानी।"

—मधूलिका।

वह अपनी वासना-तृप्ति के मार्ग में धर्म और ईश्वर तक का अवरोध नहीं मानते। वह प्रेमी के लिए विलासी मधुप का प्रतीक प्रयुक्त करते हुये कहते हैं—

इन अमरो को आज दिखा दें, कैसे प्रेमी-जन होते,
कैसे प्यासे प्यास बुझाते, कैसे मधुप मगन होते !

—मधूलिका।

---

१. 'किरणवेला' की भूमिका, पृ० क।

बच्चन की 'नागिन' कविता में नारी के लिये नागिन का प्रतीक व्यवहृत हुआ है। सुन्दर नागिन आधुनिक युग की नारी है, जो पुरुष को मंत्र-मुग्ध कर उसे डस लेती है--

सब साम-दाम औ' दण्ड-भेद
तेरे आगे बेकार हुआ.........
अब शांति, अशांति मरण-जीवन
या इससे भी कुछ भिन्न अगर
सब तेरे विषमय चुम्बन मे
सब तेरे मधुमय दंशन मे
नर्तन कर, नर्तन कर नागिन
मेरे जीवन के आगन मे !

—सतरंगिनी।

इसी प्रकार आरसीप्रसाद सिह भी कहते है--

आओ मेरे आगे बैठो
जैसे बैठी होती काली
काली नागिन दो जिह्वा वाली ....
उगलो जहर ओठ पर
रख दो, रख दो कहता हूँ मैं
जीभ खून की प्यासी अपनी !
आओ बैठो मेरे आगे
जैसे बैठी होती बाघिन......
लगता हो
अब झपटे, मानो अब निगले

—नई दिशा।

मनोविश्लेषण-विज्ञान का प्रभाव उक्त कवियों के अतिरिक्त वास्तविक प्रभाव 'अज्ञेय' पर पड़ा है। मनोविश्लेषण-विज्ञान के परिणामस्वरूप हिन्दी की नई कविता में यौन-सम्बन्धी प्रतीको का प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है। इन प्रतीकों के प्रयोग का कारण यह है कि आज की वर्जनाये इतनी कठोर है कि चेतन क्षणों मे मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असम्भव-सा हो जाता है और उनकी वह पूर्ति या तो स्वप्न-जगत में या कलाजगत मे करता है। 'अज्ञेय' लिखते है कि "आधुनिक युग का साधारण व्यक्ति 'सेक्स' सम्बन्धी वर्जनाओं से आक्रांत है, उसका मस्तिष्क दमन की गयी 'सेक्स' की भावनाओं के भार से दबा रहता है। उसकी सौन्दर्य-भावना भी 'सेक्स' से उत्पीड़ित है और उसकी उपमायें और रूपक यौन-सम्बन्धी प्रतीक है। कभी जब प्रतीकों द्वारा व्यक्ति सत्य को पहिचानता है तो परिस्थिति से ऐसा भागता

है जैसे कोई विद्युत-प्रहार से चौक उठा हो।"[१] 'अज्ञेय' ने डी० एच० लारेंस की एक कविता का सारांश भी दिया है जिसमे पुरुष नारी से बात करते समय विद्युत-प्रकाश होने पर चौक पड़ता है, क्योंकि उससे प्रत्येक वस्तु स्पष्ट हो गयी है। आज यदि व्यक्ति की अनुभूतियाँ तीव्र है तो उसकी वर्जनाएं कठोरतर है। आधुनिक काव्य मनुष्य की इच्छाओ और उसकी वर्जनाओ को व्यक्त करता है। इसीलिए अज्ञेय की 'सावन-मेघ' शीर्षक कविता यौन-सम्बन्धी प्रतीकों से परिपूर्ण है—

घिर गया नभ, उमड आये मेघ काले,
भूमि के कम्पित उरोजो पर झुका-सा
विशद, श्वासाहत, चिरातुर
छा गया इन्द्र का नील वक्ष—
वज्र-सा, यदि तडित से झुलसा हुआ-सा
आह, मेरा श्वास है उत्तप्त—
धमनियों में उमड़ आई है लहू की धार—
प्यार है अभिशप्त—
तुम कहां हो नारि ?
मेघ-आकुल गान को मैं देखता था
वन विरह के लक्षणों की मूर्ति—

सूक्ति की फिर नायिकाएं
शास्त्र-सगत प्रेम-क्रीड़ाएं
घुमडती थी बादलों मे
आर्द्र, कच्ची वासना के धूम-सी।
——प्रथम तारसप्तक।

यौन-सम्बन्धी ये प्रतीक अधिकतर 'अज्ञेय', गिरिजाकुमार माथुर और यत्र-तत्र शमशेर की कविताओ में प्राप्त होते है।

'अज्ञेय' ने 'विश्वप्रिया' नामक कविता में बहुत से प्रतीकों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ फूल, तारा, धूलिकण, दीप, विद्युत आदि है। इनके प्रयोग से रचना मे एक प्रकार की साकेतिकता तो आती ही है कि कवि उन प्रतीकों का अर्थ खोल देता है और इस प्रकार सकेत से उत्पन्न भाव नष्ट हो जाता है। इससे कवि का भाषा पर अधिकार की कमी लक्षित होती है। 'अज्ञेय' के 'बावरा अहेरी' काव्य ग्रन्थ का नामकरण सग्रह की एक प्रमुख रचना के आधार पर हुआ है। इसमे अहेरी शब्द आलोक का प्रतीक है जो बाह्य जगत मे प्रकृति के अंधकार और अन्तर्जगत मे मन के तमस को मिटाता है। इस रचना की प्रारम्भिक पक्तियों पर फारसी के प्रसिद्ध

१ प्रथम तारसप्तक, पृ० ७६।

कवि उमरखैयाम की एक रूबाई का प्रभाव स्पष्ट लक्षित होता है। वहाँ भी प्रभात के आलोक को पूर्व का अहेरी कल्पित किया गया है। अज्ञेय के अहेरी को देखिये—

बावरे अहेरी रे
कुछ भी अवध्य नही तुझे, सब आखेट है,
एक बस मेरे मन-विवर में दुबकी कलौस को
दुबकी ही छोड़कर क्या तू चला जायगा ?
—बावरा अहेरी।

'अज्ञेय' की 'नदी के द्वीप' शीर्षक कविता एक सुन्दर, सुप्रसिद्ध प्रतीकात्मक रचना है। प्रयोगवादी कविता मे इसी के अनुकरण पर इसी प्रकार के प्रतीक बहुत प्रचलित हुए। इसमे अस्तित्व-संकट के भाव की बडी सुन्दर व्यंजना हुई है—

हम नदी के द्वीप है।
हम नही कहते कि हमको छोडकर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमे आकार देती है।
हमारे कोण, गलिया, अन्तरीप, उभार, सैकतकूल,
सब गोलाइयाँ उसकी गढी है।
माँ है वह। है, इसी से हम बने।[२]

द्वीप को अपने अस्तित्व का ज्ञान है कि वह द्वीप है, धारा नही। वह स्रोतस्विनी के साथ बहना नही चाहता, क्योकि बहने मे उसका विनाश है—

किन्तु हम है द्वीप।
हम धारा नही है।
स्थिर समर्पण है हमारा। हम सदा से ही है स्रोतस्विनी के।
किन्तु हम बहते नही। क्योकि बहना रेत है।
हम बहेगे तो रहेगे ही नही।
पैर उखडेगे। प्लवन होगा। ढहेगे। सहेगे। बह जायेंगे।
और फिर हम चूर्ण होकर भी कभी क्या धार बन सकते ?
रेत बन कर हम सलिल को तनिक गंदला ही करेंगे।
अनुपयोगी ही बनायेंगे।
—कविभारती।

---

1 Awake, for morning in the Bowl of Night.
Has flung the stone that puts the stars to Flight.
And Lo The hunter of the east has caught.
the Sulton's Turret in a noose of Light.
—Rubaiat omar khayyam-Translated by edward Fitzgerald.

२ 'कवि भारती' पृ० ६८४।

द्वीप होना कोई अभिशाप नही है। यह तो नियति है। नदी के पुत्र होने के कारण वह बृहद् भूखण्ड से सम्बन्ध स्थापित करता है—

द्वीप है हम।
यह नही है शाप। यह अपनी नियति है।
हम नदी के पुत्र है। बैठे नदी के क्रोड़ मे।
वह बृहद् भूखण्ड से हमको मिलाती है।
और वह भूखण्ड
अपना पितर है।

—कवि भारती।

द्वीप अपनी जन्मदात्री स्रोतस्विनी से कहता है—

नदी, तुम बहती चलो
भूखण्ड से जो दाय हमको मिला है, मिलता रहा है,
माजती, सस्कार देती चलो;
यदि ऐसा कभी हो
तुम्हारे आह्लाद से या दूसरों के किसी स्वैराचार से—
अतिचार से—

तुम बढो, प्लावन तुम्हारा घरघराता उठे—
यह स्रोतस्विनी ही कर्मनाशा, कीर्तिनाशा घोर
काल-प्रवाहिनी बन जाय।

तो हमे स्वीकार है वह भी। उसी मे रेत होकर
फिर छनेंगे हम। जमेगे हम। कही फिर पैर टेकेंगे।
कही फिर भी खडा होगा नए व्यक्तित्व का आकार।
मात:, उसे फिर तुम सस्कार देना।

—कविभारती।

इसी प्रकार की एक सुन्दर कविता भवानी प्रसाद मिश्र की 'कमल के फूल' है। कमल कविता का प्रतीक है। इस कविता मे कमल और मानसर के अतिरिक्त बीच, तीर, आचल और मूल शब्द भी विशिष्ट अर्थ के द्योतक है। कविता मानस से उमडती है—सहज भाव से। श्रेष्ठ कवि किनारे पर नही, गहराई मे जाकर ही उसे पा सकता है। पर पाने पर वह उसका करे क्या? उसकी सार्थकता तो इसी मे है कि पाठकों का आंचल भर जाय—

फूल लाया हूं कमल के।
क्या करूं इनका?
पसारे आप आंचल

छोड दूं,
हो जाय जी हल्का !
किन्तु होगा क्या कमल के फूल का ?
ये कमल के फूल
लेकिन मानसर के है,
इन्हे हू बीच से लाया
न समझो तीर पर के है।

—गीत फरोश।

'नदी के द्वीप' की शैली में डा० धर्मवीरभारती अभिव्यक्ति की स्वाभाविक प्रेषणीयता में सामंजस्य रखते हुए कहते है—

मै रथ का टूटा हुआ पहिया हू।
लेकिन मुझे फेंको मत
क्या जाने कब
इस दुरूह चक्र-व्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय–
बड़े-बड़े महारथी
अपने पक्ष को असत्य जानते हुए भी
अकेली निहत्थी आवाज को
अपने, ब्रह्मास्त्रों से कुचल देना चाहे !
तब मै रथ का टूटा हुआ पहिया
उसके हाथों में रक्षा की ढाल बन सकता हूं।

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूं
लेकिन मुझे फेंको मत
इतिहासो की सामूहिक गति सहसा झूठी पड़ जाने पर
क्या जाने सच्चाई टूटे हुए पहिये मे
आश्रय ले।
—ठंढा लोहा।

इस कविता में सांस्कृतिक परम्परा के एक अछूते प्रतीक के माध्यम से जो कुछ कहा है वह जन-चेतना का द्योतक है। इस प्रकार धर्मवीर भारती के प्रतीक सुलझे हुये होते है।

प्रगतिवादी सुप्रसिद्ध समालोचक शिवदानसिंह चौहान ने प्रयोगवादी काव्य की आलोचना करते हुये लिखा है कि 'प्रयोगशीलता की ओट में 'अज्ञेय' 'प्रतीक-

वादी' है।--यद्यपि वादों से ऊपर सिद्ध करने के लिए वह अपने को 'प्रयोगशील', किसी मजिल तक पहुँचे हुये, या किसी राह के राही नही बल्कि 'राहों के अन्वेषी' ही घोषित करते है, जिसमे प्रतीकवाद प्रयोगशीलता के छद्मवेश मे तरुण प्रतिभाओं को आकर्षक और ग्राह्य लगे। इसलिए अज्ञेय के हाथ मे पडकर 'प्रयोग' सत्य को अभिव्यक्ति देने या 'जानने' (?) का साधन नही रहा, बल्कि उसे खैरबाद कहने का साधन बनता गया है और उनकी देखादेखी या उनसे प्रभावित होकर प्रतीकवाद की शैली को अपनाने वाले अन्य तरुण तथा प्रगतिशील कवियों के लिए भी वह पाठकों तक पहुचने के मार्ग मे एक बाधा बन गया है।''[1] शिवदान सिंह जी ने अज्ञेय को प्रतीकवादी कहा है; किन्तु वास्तव मे वह प्रतीकवादी नही है, क्योंकि फ्रेंच कवियों जैसी रहस्य-प्रवृत्ति, धार्मिकता, संगीतात्मकता, अलौकिक सौन्दर्य-सृष्टि का मोह आदि बातें 'अज्ञेय' मे नही प्राप्त होती। 'अज्ञेय' की 'सावन-मेघ' जैसी रचनाओं के यौन-प्रतीको का जहा तक सम्बन्ध है, उनमे वह स्पष्टतया फ्रायडवादी है! इस प्रकार की यौन-प्रतीक-प्रधान रचनाओं मे अज्ञेय को विषय-वस्तु की दृष्टि से किसी सीमा तक इलियट के निकट कहा जा सकता है, बोदलेयर या मलामे के नही। फ्रेंच कवियो का प्रत्यक्ष प्रभाव 'अज्ञेय' या अज्ञेयवादियों पर नही पड़ा। जो कुछ भी इन कवियो का प्रभाव आया वह इलियट के द्वारा आया; लेकिन इलियट प्रतीकवादी नही है, उसने प्रतीकवादियों से प्रेरणा अवश्य थोडी-बहुत प्राप्त की है। प्रतीकवादी कवियो और हिन्दी के प्रयोगवादी कवियो मे यदि किसी प्रकार का साम्य है, तो वह यह है कि दोनो ने नए-नए प्रतीकों का विधान किया। प्रयोगवादी कवियों के विषय मे शिवदान सिह जी की दूसरी बात अवश्य सर्वथा सत्य है कि प्रयोगशीलता के छद्मवेश ने बहुत से तरुणो को आकर्षित किया है और परिणामस्वरूप सौन्दर्यहीन तथा कथित कविता का बहुत बड़ा ढेर एकत्र हो रहा है। हो सकता है कि भविष्य में इस कूड़ा-करकट के समूह से कोई महान् कवि उत्पन्न हो और किसी नवीन मार्ग का प्रदर्शन करे, किन्तु अभी तो इनमें से किसी से भी कोई आशा नहीं दिखायी पड़ती है।

———

१ आलोचना अंक २, सम्पादकीय।

७

आधुनिक हिन्दी-कविता में प्राचीन अलंकारों का स्वरूप

कविवर सुमित्रानन्दन पंत ने कहा है कि "अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नही, वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाषा की पुष्टि के लिये, राग की परिपूर्णता के लिये आवश्यक उपादान हैं, वे वाणी के आधार, व्यवहार, रीति, नीति हैं, पृथक् स्थितियों के पृथक् स्वरूप, भिन्न अवस्थाओ के भिन्न चित्र हैं। जैसे वाणी की झकारें विशेष घटना से फेनाकार हो गई हों, विशेष झोंके खाकर बाल-लहरियों, तरुण, तरंगो मे फूट गई हों, कल्पना के विशेष बहाव में पड़ आवर्तों मे नृत्य करने लगी हों। वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव-भाव है।[१]" सारांश यह है कि काव्य मे अलकार अनिवार्य नहीं है। वे काव्य की आत्मा नही शरीर के धर्म है। काव्य में अलकारों के महत्व का विषय प्रारम्भ से ही विवादग्रस्त रहा है; किन्तु कभी भी कविता के क्षेत्र से अलंकारों का निष्कासन नही हो सका। जब किसी युग मे अलकारों को अनावश्यक महत्व प्रदान किया गया है, तब उसकी प्रतिक्रिया अवश्य हुई है। उदाहरणार्थ रीतिकालीन कविता में जब 'भाषा की जाली केवल अलकारों के चौखटे से फिट करने के लिये बुनी गई, तब वहां 'भावों की उदारता शब्दों की कृपण-जड़ता में बंद कर सेनापति के दाता और सूम की तरह 'इकसार' हो गई। आधुनिक हिन्दी-कविता ने अलंकार-विषयक इस प्रवृत्तिका विरोध किया और परिणाम–स्वरूप काव्य मे अलंकारों का महत्व कम हो गया, किन्तु सर्वथा बहिष्कार न किया जा सका। "जिस प्रकार संगीत के साथ स्वर तथा

---

१. 'पल्लव' की भूमिका, पृष्ठ १९।

उनकी श्रुति-मूर्छनाये केवल राग की अभिव्यक्ति के लिये होती है और विशेष स्वरों के योग, उनके विशेष प्रकार के आरोह- अवरोह से विशेष राग का स्वरूप प्रकट होता है, उसी प्रकार कविता में भी अलकारो, लक्षणा-व्यजना आदि विशेष शब्द शक्तियो तथा विशेष छदो के सम्मिश्रण और सामजस्य से विशेष भाव की अभिव्यक्ति करने मे सहायता मिलती है। वहा उपमा उपमा के लिये, अनुप्रास अनुप्रास के लिये, श्लेष, अपन्हुति, गूढोक्ति आदि अपने-अपने लिये हो जाते-जैसे पक्षी का प्रत्येक पख यह इच्छा करे कि मै पक्षी की तरह स्वत त्ररूप से उडूं, वे अभीप्सित स्थान मे पहुचने के मार्ग न रह कर स्वयं विषय बन जाते है, वहा बाजे के सब स्वरों के एक साथ चिल्ला उठने से राग का स्वरूप अपने ही तत्वों के प्रलय मे लुप्त हो जाता है; काव्य के साम्राज्य मे अराजकता पैदा हो जाती है, कविता-सामग्री हृदय के सिहासन से उतार दी जाती है और उपमा, अनुप्रास, यमक, रूपक आदि उसके आमात्य, सचिव, शरीर-रक्षक तथा राज कर्मचारी शब्दो की छोटी-मोटी सेनाए सग्रहीत कर स्वयं शासक बनने की चेष्टा मे विद्रोह खडा कर देते और सारा साम्राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।" इस प्रकार की आधुनिक विचारधारा ने अलकारो का अनपेक्षित महत्व समाप्त कर उन्हे उचित स्थान प्रदान किया।

यद्यपि हिन्दी के आधुनिक कवि के पाश्चात्य साहित्य और साहित्य शास्त्र से प्रभावित होने के कारण उस पर पाश्चत्य अलकार-योजना का पर्याप्त प्रभाव है, तथापि भारतीय अलकार-शास्त्र के वे कम ऋणी नहो है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे रीतिकालीन ढग के अलकार-प्रयोगो को ढूढना निरर्थक है। आधुनिक कवियो ने अलकारो का चमत्कार-प्रदर्शन नहीं किया है, अपितु अलकारों के बहुत स्वाभाविक प्रयोग किये है। इन्ही प्रयोगो मे देखना है कि आलोच्यकाल कवियो ने भारतीय अलकारशास्त्र की परिभाषाओ का कहा तक निर्वाह किया है। अलंकारो के अनुशीलन मे पहले हम शब्दालंकारो को लेगे और तत्पश्चात् अर्थालकारो को।

कविता मे अलकारो का प्रयोग अनजाने भी होता है और जानबूझ कर भी। अर्थालकारो के प्रयोग के विषय मे निश्चितरूप से यह नही बतलाया जा सकता कि कवि की दृष्टि पहले भाव पर रहती है या अलकार पर; लेकिन शब्दालकारो के प्रयोग के समय निश्चित ही कवि थोड़ा सजग अवश्य रहता है, ऐसा प्रतीत होता है। फिर भी अभ्यास द्वारा प्रयोग को सुन्दर और स्वाभाविक बनाया जा सकता है। अर्थालकारों की भाति शब्दालकार अनुभूति के धर्म नही हो सकते।" शब्द-विशेषो के प्रयोग पर ही उनकी उपस्थिति निर्भर रहनी है। इस आपत्ति मे कुछ बल अवश्य है, पर उतना नही जितना दिखाई पड़ता है। भारतीय साहित्यशास्त्र के शब्दालकार दो प्रकार के है, एक जो मुख्यत: सगीत का विधान करते है, जैसे अनुप्रास।

(१) सुमित्रानन्दन पत : 'पल्लव' की भूमिका पृ० २०।

अनुप्रासों का समावेश वहीं अच्छा लगता है जहां वह संगीत को पुष्ट करता है, अन्यत्र यह सदहृयो को खलता है। श्रेष्ठ कवि प्राय: अज्ञातभाव से अनुप्रासों का सन्निवेश करते हैं। उस दशा मे अनुप्रास मूल अनुभूति की निरर्थकता के कारण ही अच्छे लगते हैं, वह भी निम्नकोटि के पाठकों को।[1]" शब्दालकारो मे अनुप्रास आधार भूत हैं। प्रत्येक युग की कविता मे यह प्राप्त होता है। अनुप्रास-योजना की सार्थकता इसी में है कि वह भावानुरूप हो। भावानुरूपशब्द-सृष्टि को वृतियों मे परिगणित किया जाता है, जिनमें भाव नाद मे प्रतिध्वनि हो उठता है। उदाहरणार्थ—

कंकण क्वणित रणित नुपुर थे,
हिलते थे छाती पर हार।

\+ + +

अपना कल कठ मिलाते थे,
झरनो के कलकल कोमल मे॥
—कामायनी . प्रसाद।

इस प्रकार के स्वाभाविक अनुप्रास-प्रयोग भाषा मे एक सहज आकर्षण उत्पन्न करते है।

अनुप्रास योजना का मनोविज्ञान यही है कि वर्ण का अनुरणन एक श्रुति-सौन्दर्य की सृष्टि करता है। छंद मे अन्त्यानुप्रास की योजना भी इसी उद्देश्य-सिद्धि के लिये हुई थी। इस प्रवृत्ति की यह व्यापकता अनुप्रास के महत्व पर प्रकाश डालती है। अनुप्रास-महत्व को आधुनिक कवियों ने भी नही भुलाया, किन्तु नियमबद्ध अनुप्रास का स्थान स्वरमैत्री और वर्णमैत्री ने ले लिया। 'निराला' जी के अन्त्यानुप्रास हीन मुक्त छद मे यह अलकरण मिलता है। केवल 'जुही की कली' मे पच्चीस स्थलों में इसका निर्वाह मिलता है—

१ विजन-वन-वल्लरी	'व' की आवृत्ति
२. सोती थी सुहाग-भरी— स्नेह-स्वप्न-मग्न	'स' की आवृति
३. अमल-कोमल	'मल' की आवृत्ति
४. तनु तरुणी	'त' की आवृति
५. विरह-विधुर	'व' की आवृत्ति
६. आई याद—आई याद—आई —याद	आद्यानुप्रास
७. बात-रात-गात	अन्त्यानुप्रास

---

(१) डा० देवराज : साहित्य-चिन्ता पृ० ५१

८. पवन उपवन	'वन' की आवृत्ति
९. सर-सरित	'स' की आवृत्ति
१० गहन-गिरि	'ग' की आवृत्ति
११. कुञ्ज-लता-पुञ्जो	'ञ्ज' की आवृत्ति
१२ की केति कली-खिली	'क' और 'ली' की आवृत्ति
१३. डोल उठी-हिडोल	'डोल' की आवृत्ति
१४. जागी नही-मागी नही	अन्त्यानुप्रास
१५. निर्दय उस नायक ने	'न' की आवृत्ति
१६. निपट निठुराई	'न' की आवृत्ति
१७ झोको की झाडियो से	'झ' की आवृत्ति
१८. सुन्दर सुकुमार देह सारी।	'स' की आवृत्ति
१९ कपोल गोल	'ओल' की आवृत्ति
२०. चकित चितवन निज चारों ओर	'च' की आवृत्ति
२१. चारो ओर फर	'र' की आवृत्ति
२२. हरे प्यारे	'र' की आवृत्ति
२३. खिली खेल	'ख' और 'ल' की आवृत्ति
२४ रग प्यारे रग	'अग' की आवृत्ति
२५ वल्लरी सुहागभरी	'री' की आवृत्ति ।

शब्द के अर्थ-विवेक मे छायावादी कवियो ने शब्द-कोश अथवा प्रचलन की उपेक्षा की है और अपने ध्वनि-भेद को अधिक महत्व प्रदान किया है। अपनी इस रुचि का विस्तृत परिचय पत जी ने 'पल्लव' की भूमिका मे दिया है। उनके अनुसासर ' भिन्न-भिन्न पर्यायवाची शब्द प्राय सगीत भेद के कारण, एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपो को प्रकट करते है। जैसे 'भ्रू' से क्रोध की वक्रता, 'भ्रकुटि' से कटाक्ष की चचलता, 'भौहो' से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है। ऐसे ही 'हिलोर' मे उठान, 'लहर' मे सलिल के वक्ष.स्थल की कोमल कम्पन, 'तरग' मे लहरों के समूह का एक-दूसरे को धकेलना, उठ कर गिर पडना, 'बढो-बढो' कहने का शब्द मिलता है, 'बीचि' से जैसे किरणों में चमकती, हवा के पलने में हौले-हौले झूलती हुई हसमुख लहरियों का, 'उर्मि' से मधुर मुखरित हिलोरो का, 'हिल्लोल-हिल्लोल' से ऊची-ऊची बाहे उठाती हुई उत्पातपूर्ण तरगो का आभास मिलता है।[1]" इसी सिलसिले मे पत जी ने इस प्रकार के अनेक रोचक उदाहरण दिये है। पत जी ने इन शब्दो के जो अर्थ निश्चित किये हैं, उनमे कहा तक औचित्य है, यह प्रश्न दूसरा है। वास्तविकता है इस विचार की पृष्ठभूमि मे

---

१ 'पल्लव' की भूमिका पृ० १६-१७

कार्य करने वाली छायावादी कवि की भाववादी या व्यक्तिनिष्ठ (सब्जेक्टिव) प्रवृत्ति या दृष्टिकोण को पहचानना। यह प्रवृत्ति पत जी के अतिरिक्त निराला जी मे भी है। 'मेरे गीत और कला' निबध मे उन्होने सस्कृत के 'श ण व ल' और हिन्दी के 'स म ब ल' संगीत की जो रोचक व्याख्या की है, वह भी इसी प्रवृत्ति की सूचक है। उनके लिए 'वर्ण चमत्कार' इसी मे था कि 'एक-एक शब्द बधा ध्वनिमय साकार' रहे। शब्द-रचना सबंधी सगीतका जहा तक सबंध है छायावादी कवियों ने स्वर अथवा व्यंजन सबंधी अनुप्रास का सहारा लिया है। निराला जी में यह प्रवृत्ति अधिक दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है
वह सध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे।

—परिमल : निराला।

यहाँ 'दिवसावसान-आसमान', 'समय मेघमय' तथा 'सुन्दरी परी-सी' मे स्वर और व्यजना सबंधी अनुप्रास-सौन्दर्य दर्शनीय है। इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण देखिये—

वे गये असह दुख भर
वारिद झर झर झर कर
नदि कल कल छल-छल सी
वह छवि दिगंत पल की
घन गहन गहन
बधु दहन
असहन निस्तल की

कहती :—

प्रिय पथ दुस्तर
वे गये असह दुख भर।

—गीतिका : निराला।

निराला जी की 'यमुना के प्रति' कविता मे इस आनुप्रासिक सौन्दर्य का प्राचुर्य दृष्टव्य है।

पत जी की कविताओं मे भी सुदर सानुप्रासिकता प्राप्त होती है। उदाहरणार्थ—

(१) वह मधुर मधुमास था, जब गध से,
मुग्ध होकर झूमते थे मधुपदल।

(२) मधुपबाला का मधुर मधु मुग्धराग।
×

(३) तरुणता की उन तरगो में तरल।
× ×

(४) चपल चोखी चोट कर अब पख की।
× × ×

(५) ललित लोल उमंग सी लावण्य की।

—ग्रंथि।

प्रगति-प्रयोगवादी कवियों की कविताओं में भी स्वाभाविक अनुप्रास के प्रयोग प्राप्त होते है—

क्या दूं देव ! तुम्हारी इस विपुल विभुता को मै उपहार ?

—भग्नदूत : अज्ञेय।

मसली सुहागिन सेज पर के सुमन वे।

—नाश-निर्माण :
गिरिजाकुमार मथुर।

पी के फूटे आज प्यार के पानी बरसा री।
हरियाली छा गई, हमारे सावन सरसा री।

—गीतफरोश भवानी प्रसाद मिश्र।

इस प्रकार के सानुप्रासिक प्रयोगों के लिए कवि को कोई आयास-प्रयास नही करना पड़ता, किन्तु कही-कही प्रयत्न परिलक्षित होता है। यथा—

(१) तरणि के ही साथ तरल तरंग मे
तरणि डूबी थी हमारी ताल में,
(२) गरज गगन के गान गरज गंभीर स्वरों में।
(३) पुलकित पलक पसार अपार।
(४) क्रीड़ा-कौतूहल कोमलता।
(५) रूप, रंग, रज, सुरभि मधुर मधु भर-भर मुकुलित
-अंगों मे।

—सुमित्रानन्दन पंत।

इन उदाहरणों में वर्ण-निर्वाचन प्रयत्नसाध्य है, किन्तु अनुरणन कम नही है। प्रसाद जी के शब्दो मे भी अनुरणन मिलता है—

(१) चन्द्रकिरण हिम-विन्दु मधुर मकरंद से।

(२) स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान,

उड़ाती हो परमाणु पराग।

(३) नवतमाल श्यामल नीरदमाला भली।

आधुनिक युग मे यमक और श्लेष नामक अलंकारो के बहुत कम प्रयोग हुए है; क्योंकि ये अलकार चमत्कार प्रधान है और आज का कवि अलंकारो के चमत्कार को पसद नही करता, साथ ही इन अलकारो के प्रयोग के लिये बहुत ही सावधानी, सोच-विचार और कौशल की अपेक्षा रहती है। इसलिये इन अलकार-प्रयोगो की आधुनिक हिन्दी-कविता मे न्यूनता है। प्रतिभाशाली कवियों ने ऐसे प्रयोग किये है, जो बहुत ही सुन्दर हुए है।

यमक वर्णों की आवृत्ति नही, वर्ण-सघात वर्ण-शृंखला अर्थात् 'पद' की आवृत्ति है और चूकि पद सार्थक होने पर शब्द भी होता है। अतः वहाँ कभी-कभी शब्द की आवृति होती है, पर सदैव नही। इस कारण यमक तीन प्रकार का होता है—निरर्थक-निरर्थक पदों का यमक, निरर्थक-सार्थक पदो का यमक, सार्थक-सार्थक पदो का यमक। आधुनिक हिन्दी-कविता से यमक के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करते है।

विश्वम्भर सौरभ से भर जाय।

—कामायनी : प्रसाद।

यहाँ पर भर (पूर्ण तथा भरना) शब्द के दो अर्थ है।

तरणि के ही साथ तरल तरंग मे,

तरणि डूबी थी हमारी ताल मे।

—ग्रन्थि : पंत।

इसमे प्रयुक्त तरणि (सूर्य तथा नाव) शब्द के दो अर्थ है। इस उदाहरण मे यमक के साथ अनुप्रास का भी प्रयोग हुआ है।

बोल रसाल रसाल सजाते,

मधु बरसा मधुमास जगाते।

-प्रभातफेरी : नरेन्द्र।

रसाल (रसवाला), रसाल (आम), मधु (मिठाई या शहद), मधु (चैत्र-बसंत)।

ये तीनों उद्धरण सार्थक-सार्थक पदो के यमक है। अब निरर्थक-सार्थक पदों का एक यमक देखिये—

फागुन-गुन गा प्राणो की पिक कुहुकी मधुबन यौवन मे ।
—प्रभातफेरी : नरेन्द्र ।

यहाँ गुन-गुन निरर्थक-सार्थक पदों की आवृत्ति है ।

आधुनिक कविता मे श्लेष का अपेक्षाकृत कम प्रयोग हुआ है । इसका उदाहरण है—

तुम्हारी पी गुञ्ज वास तरंग
आज बौरे भौरे सहकार ।
—गु जन : पत ।

यहाँ बौरे के दो अर्थ है—पागल और बौरे-जो भ्रमर और आम दोनो के साथ लगते है । शेष का प्रयोग देखिये—

दीनता के ही प्रकम्पित पात्र मे,
दान बढकर छलकता है प्रीति से ।
-ग्रथि: पत

'लाजकाजल' मे सभगपद श्लेष दृटव्य है—
किसकी बिछुडन न उर से सँभाली गई ।
'लाजकाजल' थुला धार बहने लगी ।।
—शैवालिनी : हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

शब्दालकारों मे पुनरुक्तिप्रकाश का भी प्रमुख स्थान है । इसमे भाव को रुचिर बनाने के लिए एक ही बात को बार-बार कहा जाता है । आधुनिक कवियों ने इसके प्रयोग किये है—

हृदय रो अपने दु:ख का भार,
हृदय, रो उनका है अधिकार,
हृदय रो, यह जड़ स्वेच्छाचार ।
—पल्लव : पंत ।

आज कितनी सदियों के बाद—
देवि कितनी सदियो के बाद ।
—मधुकण : भगवतीचरण वर्मा ।

हवा हूँ, हवा मैं
बसती हवा हूँ ।
वही हाँ वही जो
धरा का बसती

सुसंगीत मीठा
गुजाती फिरी हूँ
हवा हवा हूँ, मैं
बसती हवा हूँ।

—नीद के बादल : केदारनाथ अग्रवाल।

शब्दालकारों मे वक्रोक्ति, प्रहेलिका, चित्र आदि भी हैं, किन्तु आधुनिक कवियों ने इनके प्रयोग नही किये है। गुरुभक्त सिह ने अवश्य वक्रोक्ति* का एक सुन्दर प्रयोग किया है—

एक कबूतर देख हाथ मे पूछा कहाँ अपर* है।
उसने कहा अपर* कैसा है ? उड़ है गया सपर है।।

—नूरजहाँ।

यहां सलीम और मेहरुन्निसा का परिहास है। सलीम ने पूछा अपर (दूसरा) कहाँ है ? मेहरुन्निसा ने कहा कि यह अपर (पर-हीन) नही है, बल्कि सपर (परयुक्त) है, अत: उड़ गया।

अर्थालकारो मे उपमामूलभूत है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे नये-नये उपमानों की योजना की गई है। उपमा के दो भेद है—

१ पूर्णोपमा और
२ लुप्तोपमा।

पूर्णोपमा के प्रयोग हैं—

जब विमूर्छित नीद से मै था जगा,
कौन जाने, किस तरह ? पीयूष-सा,
एक कोमल समव्यवस्थित-नि.श्वास था,
पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।।

—ग्रंथि : पंत।

जीवन न दीन बने,
प्रथम यौवन के मिलन-सा चिरनवीन बने।

—आधुनिक कवि : रामकुमार वर्मा।

प्रथम उदाहरण में नि:श्वास उपमेय, पीयूष उपमान, सा वाचक और पुनर्जीवन साधारण धर्म है। मूर्छित कवि के पास एक बाला व्यथित नि:श्वास फेंक रही है। थोड़ी देर मे कवि की सास लौट आती है, प्रतीत होता है जैसे उसका नि:श्वास फेंकना व्यर्थ नही गया। पीयूष भी पुनर्जीवन देता है और इन नि:श्वासो ने भी

पुनर्जीवन दिया। उपमा मे इस प्रकार यहाँ गुण-साम्य हुआ। जीवनदान यद्यपि यहाँ नि श्वास ने नही, नि.श्वास फेकने वाले ने दिया है, नि:श्वास का पीयूष से दूर का सम्बन्ध है, वास्तव मे प्राणी ही पीयूष बन गया है, पर यह उपमा बड़ी ही मार्मिक और कोमल सिद्ध हुई है। द्वितीय उदाहरण मे जीवन उपमेय है, प्रथम यौवन के मिलन उपमान, सा वाचक और चिरनवीन धर्म है।

लुप्तोपमा के अनेक भेद होते है। उसके कतिपय प्रमुख भेदों के प्रयोग आधुनिक हिन्दी-कविता से प्रस्तुत करते है—

उपमेयलुप्ता— मुख-कमल समीप सजे थे दो किसलय दल पुरइन के।
—आँसू : प्रसाद।

इसमे पुरइन के किसलय उपमान का उपमेय दो कान लुप्त है।

वाचक लुप्ता— शलभ-चंचल मेरे मन प्राण।
—गुंजन : पंत।

धर्मलुप्ता— जीवन की गोधूली मे कौतूहल-से तुम आये।
—आँसू : प्रसाद।

वाचक धर्मलुप्ता— बिजली-माला पहने फिर मुस्काता था आँगन में।
—आंसू · प्रसाद।

आधुनिक कवियो ने मालोपमा के बड़े सुन्दर प्रयोग किए है। पत जी की 'छाया' शीर्षक कविता इसके लिए पर्याप्त प्रसिद्ध है। एक अन्य उदाहरण देखिये—

सुषमा की प्रतिमा एक तरुणी दिवागना-सी,
रति की अनूप रचना-सी,
सुन्दरी प्रणय अभिलाषा-सी
मादक मदिरा-सी,
मोहक इन्द्रधनु-सी।
—वासवदत्ता : सोहनलाल द्विवेदी।

आधुनिक हिन्दी-कविता मे रूपक का प्रयोग प्रचुर परिमाण मे प्राप्त होता है, किन्तु परम्परित और निरग का अधिक, साग का कम। सांगरूपक दूर तक चलने वाला अलकार है। इसका आद्योपात सफल निर्वाह आधुनिक युग के कवियो मे बहुत कम मिलता है। लोगों ने प्राय: इसके प्रयोग मे शास्त्रीय नियमो का उल्लंघन किया है। कभी उपमा से प्रारम्भ करके बीच मे रूपक खड़ा कर देते हैं और कभी प्रारम्भिक रूप सागरूपक को अन्त मे उपमा या उत्प्रेक्षा में बिगाड़ देते है। जैसे—

खैच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप—
शैल की सुधि यों बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल,
झुला झरनो का झलमल हार—
——आधुनिक कवि : पंत ।

प्रथम पंक्ति का रूपक बाद में 'का' जोड देने से खंडित हो जाता है। यह आधुनिक कवियो की स्वच्छन्द प्रवृत्ति की द्योतक है। यह स्वच्छन्दता प्रगति-प्रयोग-वादी कवियो मे अधिक मिलती है। द्वितीय 'तारसप्तक' में नरेशकुमार मेहता की ऊषा पर कई रचनाये सग्रहीत है। इनमें लम्बे-लम्बे सागरूपक बाँधने का प्रयास किया गया है, किन्तु इनका दूर तक निर्वाह नही हो पाया है और कही-कही तो ऐसा भी हुआ है कि पूरी रचना मे कोई चित्र ही नहीं उठता। किरणो की कल्पना कही धेनु और कही अश्व के रूप मे की है। ऐसे ही इन्द्र, वरुण, सोम, मत्र-पाठ आदि की चर्चा से वेद-कालीन वातावरण आज के युग मे बुद्धि द्वारा थोपा गया प्रतीत होता है। रचनाओ के छन्दो की तुकें इतनी वेतुकी हो गई है कि सारा प्रयास ही व्यर्थ-सा प्रतीत होता है।

निराला जी की कविताओ मे अवश्य सागरूपको का बडा भव्य निर्वाह देखने को मिलता है। यथा-जीव-ब्रह्म-परक रहस्यवादी कविता मे एक अज्ञात बतलाते है कि अनंत प्रिय है। आत्मा अभिसारिका है। यह अभिसारिका लोक मे चाहे जितनी लाछित हो, प्रिय के चरणो को छोड़ कर और कहा शरण पायेगी। इसे कवि रूपक मे बाँध कर इस प्रकार कहता है——

मौन रही हार—
प्रियपथ पर चलती,
सब कहते शृंगार
कण-कण कर कंकण प्रिय
किण्-किण् रव किंकिणी,
रणन्-रणन् उर लाज,
लौट रङ्किणी;
और मुखर पायल स्वर करे बार-बार,
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार।
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ ?
उन चरणों को छोड, और
शरण कहाँ पाऊँ ?—

बाजे सजे उर के इस सुर के सब तार,
प्रिय पथ पर चलती, कहते सब शृंगार ॥–
—गीतिका ।

आत्मा को चिन्ता है; हार कर प्रिय-पथ पर चलना पड रहा है। प्रत्येक आभरण से इसी आत्मसमर्पण की ध्वनि निकल रही है। हृदय मे लाज आती है, परन्तु लौट गई, तो वह प्रिय धन फिर कहाँ मिलेगा ? फिर सभव है, प्रिय ने आगमन की प्रतीक्षा के बाद नूपुरों का शब्द सुन लिया हो। फिर किसकी शरण मिलेगी ? प्रिय की ओर बढ़ती हुई अभिसारिका (परमात्म तत्व की ओर बढती हुई जीवात्मा) मे यही सवादी-विवादी स्वर बज रहे है, यही तर्क-वितर्क हो रहा है।

महादेवी जी ने भी सागरूपको के बहुत सुन्दर प्रयोग किये है। सब से अधिक चमत्कारपूर्ण आरती का सागरूपक है, श्लेष तथा अनुप्रास का भी मनोहर पुट प्राचीन अप्रस्तुत को नवीन रूप मे प्रस्तुत करता है—

प्रिय मेरे गीले नयन बनेंगे आरती।
श्वासों मे सपने कर गुंफित ॥
बन्दनवार वेदना चर्चित।
भर दुःख से जीवन का घट नित ॥
मूक क्षणो से मधुर भरूँगी आरती ॥ १ ॥
दृग मेरे दो दीपक झिलमिल।
भर आसू का स्नेह रहा ढल ॥
सुधि तेरी अविराम रही जल।
  पदध्वनि पर आलोक रहूँगी वारती ॥ २ ॥
यह लो प्रिय निधियोमय जीवन।
जग की अक्षय स्मृतियों का धन ॥
सुख सोना करुणा हीरक कर्ण।
तुम से जीता आज तुम्ही को हारती ॥ ३ ॥
—यामा : महादेवी ।

इस गीत में श्वासो के तार मे अपने सपनो को गूंथ कर वेदनाचर्चित वन्दनवार बनाया है, जीवन के घट को दुखरूपी जल से भरा गया है। दोनों नेत्र झिलमिलाते हुए दीपक है। आसू का तेल भरा जा रहा है और सुधिरूपी बत्ती जल कर पदध्वनि पर प्रकाश कर रही है। फिर असख्य धन, निधि, सोना तथा हीरक जुटा दिये जाते है। सागरूपक का एक और अनुप्रास तो है ही 'भर' 'वारती' और 'स्नेह' में श्लेष भी है। सांगरूपक का एक और उदाहरण देखिए—

मेरे मस्तक के छत्र मुकुट वसुकाल सर्पिणी के शतफन।
मुझ चिरकुमारिका के ललाट में नित्य नवीन रुधिर चन्दन ।।
आंजा करती हू चिता–धूम का दृग मे अंध तिमिर अन्जन ।
शृंगार लपट की चीर पहन कर नाचा करती मैं छूमछानन ।।
—हुंकार : दिनकर ।

निरंगरूपक का प्रयोग है—

इस हृदय–कमल का घिरना, अलिपलको की उलझन मे ।
आंसू मरन्द का गिरना, मिलना निश्वास पवन मे ।।
—आंसू . प्रसाद ।

परम्परित का प्रयोग है—

देती पृथ्वी पुष्प–मुखों से सरस–सुरभि–संवाद ।
—चित्ररेखा : रामकुमार वर्मा ।

आधुनिक कविगण कभी-कभी परम्परित रूपक मे उपयोग तथा उपमान का भी लोप कर देते है । यथा—

लो जग की डाली–डाली पर,
जागी नवजीवन की कलियां ।
—मधुप्रभात : पंत ।

इसमे जग को उपवन का आरोप है, किन्तु वह लुप्त है । डाली उपमान है, परन्तु इसका उपमेय अनुक्त है ।

उत्प्रेक्षा कवि–समाज का एक प्रिय अलकार है । इसका प्रयोग बिना चित्र–कल्पना के नहीं होता । यह चित्र–कल्पना केवल उपमा से नही होती और न केवल रूपक से, अत यह कवियों मे या तो दुर्लभ होती है या स्वाभाविक और सटीक नही होती । मैथिलीशरण गुप्त ने इसके सुन्दर प्रयोग किये हैं । प्रसाद जी के एक उत्प्रेक्षा का प्रयोग देखिये :—

उस असीम नीले अंचल में
देख किसी की मृदु मुस्कान,
मानों हँसी हिमालय की है
फूट चली करती कल गान ।
— कामायनी : प्रसाद ।

उक्त विषय वस्तूत्प्रेक्षा द्वारा प्रसाद जी का रूप–चित्रण दर्शनीय है—

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग,
खिला हो ज्यों बिजली का फूल
मेघवन बीच गुलाबी रंग ।
—कामायनी . प्रसाद ।

प्रत्येक अलंकार में मनु, मानों, जनु, इव आदि वाचक शब्दों का प्रयोग किया जाता है। ज्यों, यथा, जैसे, सो आदि वाचक शब्दो का प्रयोग उत्प्रेक्षा में दोष समझा जाता है, क्योंकि ये समानतासूचक है। इनका प्रयोग साधर्म्य-बोधक अलंकारों में ही होता है। ऊपर के उदाहरण मे ज्यों शब्द का प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि से ठीक नहीं है। उत्प्रेक्षा का एक अन्य उदाहरण है—

छोटे-छोटे बिखरे से, शुभ्र बादलों को पार करता—
मानों कोई तपक्षीण कापालिक
साध्य-साधना की जल बुझी, झरी
बची-खुची राख पर धीमे पैर रखता—
नीरव चपलतर गति से
चाद भागा जा रहा है
द्रुतपद—
—भग्नदूत · अज्ञेय

इसमे निष्फल कापालिक का सब कुछ छोड़-छाड़ कर भागना लोकसिद्ध है। इससे उत्प्रेक्षावाचक 'मानो' के स्थान पर उपमावाचक 'जैसे' होना अधिक उचित प्रतीत होता है।

आधुनिक कवियों ने स्मरण, संदेह और भ्रमालंकारो के भी सुन्दर प्रयोग किये हैं। प्रत्येक के उदाहरण निम्नांकित हैं—

स्मरणालंकार—

देखता हू जब पतला
इन्द्रधनु—सा हल्का
रेशमी घूघट बादल का
खेलती है जब कुमुदकला
तुम्हारे मुख का भी ध्यान
मुझे तब करता अंतर्धान
——गुजन : पंत ।

संदेहालंकार

मदभरे ये नलिन नयन मलीन है,
अल्पजल में या विकल लघुमीन है।
या प्रतीक्षा में किसी की शर्वरी,
बीत जाने पर हुये ये दीन है।
या पथिक से लाल लोचन कह रहे,
हम तपस्वी हैं, सभी दुःख सह रहे॥
—परिमल : निराला ।

भ्रमालंकार--

नाक का मोती अधर की कांति से,
बीज दाड़िम का समझ कर भ्रांति से।
देख उसको ही हुआ शुक मौन है,
सोचता है अन्य शुक यह कौन है ?
--साकेत : मैथिलीशरण गुप्त।

भारतीय अलंकारशास्त्र मे अपन्हुति बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके अनेक भेद होते हैं। आधुनिक कवियों ने इसके बड़े सफल प्रयोग किए है। उदाहरणार्थ शुद्धापन्हुति का प्रयोग है—

ये न मग हैं तव चरण की रेखियां हैं।
बलि-दिशा की ओर देखादेखियाँ है।
विश्व पर पद मे लिखे कृति लेख हैं ये,
धरा तीर्थो की दिशा की मेख है ये।।
--एक भारतीय आत्मा।

इसी प्रकार कैतवापन्हुति और पर्यास्तापन्हुति के भी प्रयोग आधुनिक हिन्दी-कविता में दृष्टव्य है—

कैतवापन्हुति—

प्रिये, कलि कुसुम में आज,
मधुरिमा मधु सुखमा सुविकास।
तुम्हारी रोम-रोम छवि व्याज,
छा गया मधुवन में मधुमास।।
—गुंजन : पंत

पर्यास्तापन्हुति—

मधुशाला वह नहीं–जहां पर मदिरा बेची जाती है।
भेंट जहाँ मस्ती की मिलती मेरी वह मधुशाला है।
—मधुशाला : बच्चन।

उल्लेख अलंकार का प्रयोग कुछ ही कवियो मे मिलता है। यथा--

फूल से कोमल, छबीला रत्न से,
बज्र से दृढ़, शुचि सुगधित यज्ञ से।
अग्नि से जाज्वल्य, हिम से शीत भी,
सूर्य से देदीप्यमान मनोज्ञ से।

वायु से पतला पहाड़ों से बड़ा
भूमि से बढ कर क्षमा की मूर्ति है
कर्म का अवतार रूप शरीर जो
श्वास क्या, ससार की वह स्फूर्ति है ।।
—हृदय : एक भारतीय आत्मा ।

सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के सहचर,
मेघदूत की सजग कल्पना. चातक के चिर जीवनधार ।
मुग्धशिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्तावर,
विहगवर्ग के गर्भविधायक, कृषक बालिका के जलधर ।।
—पल्लव : पत ।

भारतीय अलकारशास्त्रियों ने प्राय: प्रत्येक अलंकार के मूल मे अतिशयोक्ति की सत्ता मानी है जो चमत्कार का कारण है । चमत्कार की विशेषता से ही अलंकारों के भिन्न-भिन्न नामकरण किए गये है । आधुनिक हिन्दी-कवियो का यह पर्याप्त प्रिय अलंकार है । इसके अनेक रूपों में से रूपकातिशयोक्ति का प्रयोग आधुनिक हिन्दी-कविता मे अधिक हुआ है । यथा—

बांधा विधु को किसने इन काली जंजीरों से ।
मणिवाले फणियों का मुख क्यो भरा हुआ हीरों से ।।
—आंसू : प्रसाद ।

प्रिय का मुख शशि के समान सुन्दर था । काले बाल व्याल-से थे । इनमें उपमेयों का निर्देशन न करके केवल उपमानों का ही निर्देश किया गया है । मोतियों से भाग भरी हुई थी, उस पर कवि का कहना है कि सर्प तो स्वयं मणिवाला है, फिर उसका मुख हीरो से क्यों भरा है ? केवल उपमान निर्देश के कारण यहां रूपकातिशयोक्ति है । इसी कार चपलातिशयोक्ति का प्रयोग है—

मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूं ।
भुजलता फंसाकर नरतरु से झूले से झोके खाती हूं ।।
—कामायनी : प्रसाद

इसमें उपचारमात्र से तुल जाना कारण के ज्ञानमात्र से कार्य का होना दिखलाया गया है । अक्रमातिशयोक्ति में कारण और कार्य का एक साथ घटित होना प्रदर्शित किया जाता है । यथा—

पृथ्वीराज ! उधर तुम पहुंचे पाश इधर बढ़ चढ़ आया ।
तुम तो उधर बंधे पाशों मे शाप इधर सिर पर छाया ।।
—जौहर : सुधीन्द्र

अर्थालंकारों में अन्योक्तिविशेष महत्वपूर्ण है। इसमें प्रस्तुत वर्णन के स्थान पर उससे मिलता-जुलता अप्रस्तुत विधान किया जाता है। इसमे सम्पूर्ण प्रस्तुत अर्थ व्यंग्य रहता है। सामान्य कथन मात्र करने वाली रचनाओ से ऐसी रचनाओं में अधिक प्रभविष्णुता रहती है। द्विवेदीयुगीन कवियों ने इसके बड़े सुन्दर प्रयोग किए है; किन्तु लगभग सभी ने संस्कृत-काव्य की राशि-राशि मनोरम अन्योक्तियो को ही हिन्दी मे ढाला है। संस्कृत-अन्योक्तियो के भाव-समुद्र मे निरन्तर निमग्न रहने से मौलिक अन्योक्ति-मुक्ताएं भी कवियो के साथ लगी है। अन्योक्तिकारों ने स्थूल और सूक्ष्म, पृथ्वी से लेकर हिमालय तक पदार्थों (तृण, कठोर केतकी, चन्दन, आम, खजूर, खटमल, घुन, भ्रमर, पतग, काक, वक, कीर, कुक्कुट, मैना, कोकिल चातक, चक्रवाक, विल्ली, मूषक, मृग, हाथी, सिंह, पथिक, माली, मेघ, वर्षा, गगा, गंगाजल, कर्मनाशा, तड़ाग, समुद्र, बसंत, मलयानिल, संध्या, हिमालय आदि) पर अन्योक्तियों की सृष्टि और भाव-शिल्प प्रदर्शित किया है। प्रतिभावान कवि ही इस शिल्प में सफल हो सकते है। पंत जी की निम्नांकित पतझर' शीर्षक अन्योक्ति संस्कृत की प्रत्यक्ष मुद्रा से मुक्त एक मौलिक रचना है।

द्रुतझरो जगत के जीर्णपत्र।
हे स्त्रस्त ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीतराग, जड़ पुराचीन!!

निष्प्राण विगत-युग! मृत विहङ्ग।
जग नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों-से तुम
झर-झर अनन्त में हो विलीन!

कङ्काल जाल जग में फैले
फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली।
प्राणों की मर्मर से मुखरित
जीवन की मांसल हरियाली।

मंजरित विश्व के नवयौवन के
जगकर जग का पिक, मतवाली
निज पमर प्रणय स्वरमदिरा से
भर दे फिर नवयुग की प्याली।

—आधुनिक कवि : पंत

यह कविता अन्योक्ति का एक सुन्दर उदाहरण है। इसमें रूढ़ि ही पुराना पता है। युग की चाल के कारण सुन्दर सस्कार ही रूढ़ियां बन जाते हैं। नवीन विचारों से उन्हे नाश का भय होता है। पुराना युग मृत पक्षी के समान है। अतः संसार रूपी नीड कलरव और श्वासों से हीन है। संसार में हर्ष और उल्लास का वेग नही है। जिस प्रकार मरे हुए पक्षी के गिरे पख धीरे-धीरे झर कर मिट्टी में विलीन हो जाते है, उसी प्रकार तुम भी लय हो जाओ। जब पुराने सड़े पत्ते झर जायेंगे, तब सूखे वृक्षो की डालियों मे बसतागमन पर नये-नये लाल पल्लव फूट पडेगे। जब रूढ़िया नष्ट हो जायेंगी, तब ससार मे नवीन शक्ति का सचार होगा। पुराने पक्षी मर जायेंगे, नये पक्षी आयेगे और हरे-भरे उपवनो को कलरव से गुजित कर देगे। जब मनुष्य रूढ़ियों से मुक्त हो जायेगा, तब उसके प्राणो मे नया जोश और नया जीवन लहलहा उठेगा। बसत के आने पर आम मजरियो से लद जायेगे। अर्थात् जीवन में नवीन स्फूर्ति आ जायेगी। प्रगति का प्रथम पद प्राचीन कुसस्कारों से मुक्ति प्राप्त करना है—कवि के कहने का यह तात्पर्य है। 'ग्राम्या' की 'स्वीट पी के प्रति' शीर्षक कविता भी इसी प्रकार की रचना है, जिसमे मध्यवर्गीय कुलबधू का वर्णन है,पर उसका वर्णन स्पष्ट नहीहुआ है। स्वीट पी देखने में सुन्दर होती है, बडे यत्न से उसकी रक्षा की जाती है। सम्पन्न व्यक्तियो की फुलवारी में वह लगाई जाती है, पर सामान्य रूप से खाने-पीने मे उसका उपयोग नही किया जाता है अर्थात् उपयोगिता की दृष्टिसे उसका विशेष मूल्य नही है। ये सारी बाते कुल बधू के पक्ष मे भी घट जाती है। इस प्रकार की रचनाओं में व्यंग्य की भी अच्छी योजना की जा सकती है। निराला जी की 'कुकुरमुत्ता' नामक रचना व्यग्यपूर्ण अन्योक्ति ही है। 'कोयले' पर लिखी गई एक अन्य अन्योक्ति देखिये, जिसमे अन्योक्ति—पद्धति द्वारा श्रमिको की खिन्नता, दीनता और मलिनता के साथ ही यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया गया है कि अब उनमे चेतना आ गई है और वे अपनी दुर्दशा से परित्राण पाने के लिए प्रस्तुत है—

जल उठे है तन—बदन से,
क्रोध मे शिव के नयन—से।
खा गये निशि का अंधेरा,
हो गया खूनी सबेरा।

जग उठे मुरदे बिचारे,
बन गये जीवित अँगारे।
रो रहे थे मुह छिपाए,
आज खूनी रंग लाए।

—युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल।

इसमें कोयले से श्रमिक का सादृश्य है कुरूपता और मलिनता का। साधर्म्य इस बात का है कि जैसे कोयले आग से जल उठते है, वैसे ही श्रमिक चेतना के

उद्बुद्ध होने पर क्रोध से लाल हो गये है । सम्पूर्ण रचना से यह व्यंग्य है कि जो वस्तु इतनी तुच्छ है वह भी कर्म की प्रेरणा और उत्साह का संचार होने पर शक्तिमती बन सकती है । इस रचना मे सामान्य कथन की अपेक्षा कुछ आकर्षण और चमत्कार अवश्य आ गया है ।

जहाँ अनेक प्रस्तुत विषयों का अथवा अनेक अप्रस्तुत विषयो का क्रिया अथवा गुण द्वारा एक ही धर्म दिखलाया जाता है, वहाँ तुल्ययोगिता होती है । इसका प्रयोग है—

राम-भाव अभिषेक समय जैसा रहा,
बन जाते भी सहज सौम्य वैसा रहा ।
वर्षा हो या ग्रीष्म सिन्धु रहता वही,
मर्यादा की सदा साक्षिणी है मही ।।

—साकेत : गुप्त

यहां राज्याभिषेक और बनवास जैसे हिताहित में राम के मुख का भाव एक सा बना रहा । हित-अनहित मे तुल्यवृत्ति के वर्णन के कारण इसे द्वितीय तुल्य योगिता कह सकते है । तुल्ययोगिता के समान ही दीपक भी गम्यौपम्याश्रित अलंकार है । आधुनिक हिन्दी-कविता मे इसके प्रयोग प्राप्त होते है । यथा—

घन मे सुन्दर बिजली-सी, बिजली मे चपल-चमक-सी ।
आंखो मे काली पुतली, पुतली मे श्याम झलक-सी ।।
प्रतिमा मे सजीवता-सी, बस गयी सुछवि आँखों मे ।
थी एक लकीर हृदय में, जो अलग रही लाखों मे ।।

—आँसू : प्रसाद

जहां पूर्वकथित घन मे उत्तरकथित बिजली का, फिर पूर्वोक्त बिजली का उत्तरकथित चमक और ऐसे ही आखो मे पुतली का फिर पुतली मे श्यामता का 'बस गयी सुछवि आखो मे' इस एक क्रियारूप धर्म से सम्बन्ध स्थापित किया गया है । अतः यहा माला-दीपक है । कारक दीपक में अनेक क्रियाओ का एक ही कारक दिखलाया जाता है । जैसे—

इन्दु की छवि में, तिमिर के गर्भ में,
अनिल की ध्वनि में, सलिल की बीचि मे ।
एक उत्सुकता बिचरती थी सरल,
सुमन की स्मृति में, लता के अधर में ।।

—ग्रन्थि : पंत

दीपक के एक भेद पदार्थवृत्ति का प्रयोग देखिये, जिसमें छाया क्रिया पद की आवृत्ति हुई है—

तब इस घर मे था तम छाया,
था मातम छाया गम छाया।

—भ्रम छाया ।।

—मधुशाला : बच्चन

पण्डित जगन्नाथ के मतानुसार प्रतिवस्तूपमा और दृष्टान्त में विशेष अन्तर न होने से इनको एक ही अलंकार में परिगणित करना उचित है। वास्तव मे दोनों में अन्तर उपमावाची शब्द के प्रयोग से आ जाता है। प्रतिवस्तूपमा मे उपमावाची भिन्न शब्द एक ही धर्म का बोध कराते है, दृष्टान्त मे वे होते ही नही। दृष्टान्त में बिम्ब–प्रतिबिम्ब का भाव आवश्यक है, उदाहरणार्थ—

सुख–दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल ही घन ।।

—गुजन : पंत

इसमें सुख-दुख और शशि-घन का उपमेयोपमेय भाव है और साधारण धर्म का भी बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है। यह दृष्टान्त का एक नया रूप है। निम्नाकित पक्तियो मे उदाहरण अलंकार दर्शनीय है—

ज्यों दिन ढलते संध्या विहग,
प्रतिपल नीडाकुल होते ।
वैसे ही तुम बिन ये चंचल,
प्राण तृषातुर रोते ।।

—मधूलिका : अंचल

आधुनिक हिन्दी–कविता में समासोक्ति का विशिष्ट महत्व है। आधुनिक कवियों ने इसके नये–नये प्रयोग किये है। जैसे—

जग के दुख–दैन्य–शयन पर यह रुग्णा बाला,
रे कब से जाग रही वह आसू की नीरव माला ।
पीली पड़ निर्बल कोमल,--देहलता कुम्हलाई,
विवसना लाज मे लिपटी सांसो मे शून्य समाई ।।

—गुजन : पत

यहां लिंग की समता के कारण प्रस्तुत चादनी के वर्णन से अप्रस्तुत रुग्णा–बाला का आभास होता है।

वैषम्य या विरोधमूलक अलंकारों द्वारा भी काव्य में सौन्दर्य–विधान किया जाता है। विरोधाभास अलकार मे वास्तविक न होते हुए भी श्लेषादि के चमत्कार से विरोध की मिथ्या प्रतीति कराई जाती है। जैसे—

तुम मांसहीन तुम रक्तहीन,
हे अस्थिशेष तुम अस्थिहीन ।
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल,
हे चिरपुराण हे चिर नवीन ।।
—युगांत . पंत

यहां दूसरे चरण मे द्रव्य-द्रव्य और चौथे चरण मे गुण-गुण का विरोधाभास है, जिसका परिहार गाधी जी के व्यक्तित्व से हो जाता है । इसी प्रकार आग से हिमजल का ढुलकना और, और दाह का शीतल होना क्रिया से विरोध दिखलाया गया है—

आग हूं जिससे ढुलकते बिन्दु हिमजल के ।
शून्य हू जिसमे बिछे है पावडे पल के ।।
—यामा : महादेवी

भिगोता हिमजल मे यह कौन ।
जलाने वाली शीतल आग ।।
—करुणा . हृदयेश

विभावना विरोधमूलक अलकारो के अन्तर्गत परिगणित किया जाता है । इसमे कारणान्तर की कल्पना की जाती है । इसके अनेक भेद होते है । भिन्नकारणमूलता का उदाहरण देखिये, जिसमे भिन्न कारण या अकारण से कार्य होता है—

चुभते ही तेरा अरुन बान,
बहते कन-कन से फूट-फूट
मधु के निर्झर से सजल गान ।
—यामा महादेवी

यहा वाण के आघात से गान की सृष्टि होना भिन्न कारण से कार्य होता है ।

यथा—

दुख इस मानव आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन ।
दुख के तम को खा-खा कर भरती प्रकाश से वह मन ।।
—गुंजन · पंत ।

विरोधाभास सहित कारण-कार्य की स्वाभाविक संगीत के त्याग में असंगति अलंकार होता है । इसके देशगता कारण कही कार्य कही हो रहा हो—का प्रयोग है—

मेरे जीवन की उलझन बिखरी थी उनकी अलकें ।
पी ली मधु मदिरा किसने, थी बन्द हमारी पलके ।।
—आंसू . प्रसाद

अलकें तो बिखरी थी दूसरों की, दूसरे की जान आफत में थी । मदिरा पी किसी ने और पलकें बद हुई किसी की। एक ही काल मे कारण-कार्य के भिन्न-भिन्न स्थान है और विरोध का आभास भी। इसमे तो विरोध का आभास है, किन्तु विषम अलकार मे विरोध सत्य होता है—

आज गर्वोन्नत हर्म्य अपार, रत्नदीपावलि मन्त्रोच्चार ।
उलूकों के कल भग्नविहार, झिल्लियों की झनकार ॥
-- पल्लव · पत ।

पल-पल श्री शोभा करती लीला से शृ गार जहा ।
दग्ध कथा अपनी कहते थे अब बिखरे अगार वहाँ ॥
—जौहर सुधीन्द्र

समर्थनीय कथितार्थ का किसी कारण के द्वारा समर्थन मे काव्यलिग होता है; जैसे—

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथो से जहा
झूमते गज से विचरते हो, वही
आह है, उन्माद है, उत्ताप है !
—ग्रथि पत

यहां प्रेम का वेदना के हाथो द्वारा बना होना सिद्ध करने के लिये चौथी पक्ति मे कारण उक्त है। इसमे पृथक्-पृथक् पदो मे कारण उक्त है। इसी प्रकार एक अन्य प्रयोग है—

क्षमा करो इस भाति न तुम तज दो मुझे,
स्वर्ण नही हे राम ! चरणरज दो मुझे ।
जड भी चेतन मूर्ति हुई पाकर जिसे,
मुझे छोड़ पाषाण भला भावे किसे ?
—साकेत गुप्त

निम्नलिखित उद्धरण मे भरत को जन्म देने वाली जननी भी जिसके आशय को न जान सकी, इस अर्थ की प्रबलता से और किसी को उनके आशय का न जानना स्वत सिद्ध है। अत यहा काव्यार्थापत्ति है—

प्रभु ने भाई को पकड हृदय पर खीचा,
रोदन-जल से सविनोद उन्हे फिर सीचा ।
उसके आशय की थाह मिलेगी किसको ?
जन कर भी जननी जान न पाई जिसको ॥
—साकेत : गुप्त ।

इसी प्रकार का प्रयोग निराला जी ने भी किया है कि ऋषिमुनियों के धैर्य छूट जाने से भोगियों का धैर्य छूट जाना स्वतः सिद्ध हो जाता है—

देखो यह कपोत कंठ,
बाहु वल्लरी कर सरोज ।
नितम्ब भार–चरण सुकुमार गति मन्द–मन्द,
छूट जाता ऋषि–मुनियों का,
देव–भोगियों की तो बात ही निराली है ।

—परिमल : निराला ।

एक पदार्थ का 'सह' आदि सहार्थवाची शब्दों के साहचर्य से दूसरे पदार्थ के साथ सम्बन्ध–स्थापन मे 'सहोक्ति' अलकार होता है । यथा—

निज पलक मेरी बिकलता साथ ही,
अवनि से उर से मृगेक्षिणि ने उठा ।
एक पल निज शस्य श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप से ॥

—ग्रंथि : पंत ।

निम्नांकित पंक्तियों मे विशेषालकार का प्रयोग हुआ है, जिसमें एक ही काल में एक ही स्वभाव से सूनेपन का स्थानो में होना वर्णित है अर्थात् एक आधेय अनेक आधार है—

आखों की नीरव भिक्षा में आसू के मिटते दागों मे,
ओठो की हँसती पीड़ा मे, आहों के बिखरे त्यागों मे ।
कन–कन मे बिखरा है निर्मम,
मेरे मानस का सूनापन ॥

यामा . महादेवी ।

जहां किसी आधेय वस्तु का अनेक आधारों में अथवा उसका विलोम क्रम से होना प्रदर्शित किया जाता है, वहां पर्याय अलंकार होता है । इसका निर्वाह निम्न उद्धरण मे हुआ है—

तेरी आभा का कण तम को देता अगणित दीपक दान ।
दिन को कनक–राशि पहनाता विधु को चांदी का परिधान ।

—यामा : महादेवी ।

यहा एक आभा का ताराओं में, दिन के प्रकाश में और चन्द्रमा की उज्ज्वलता में होना वर्णित है । इसी तरह नीचे के प्रयोग में भी एक ही आधेय का अनेक आधारो में होना वर्णित है—

अलि कहां सन्देश भेजूं मै किसे संदेश भेजूं,
नयनपथ से स्वप्न मे मिल प्यास मे घुल,
प्रिय मुझी मे खो गया अब दूत को किस देश भेजूं ।।
—यामा · महादेवी ।

एक परिस्थिति में अनेक वस्तुओं, गुणों, क्रियाओं आदि के एकत्रीभाव में समुच्चय अलंकार होता है। अनेक गुणों का समुच्चय है—

आली तू ही बता दे इस विजन बिना मै कहा आज जाऊं ।
दीना हीना अदीना ठहरकर जहा शाति दू और पाऊं ।।
—साकेत . गुप्त ।

पात्र भी मधु भी मधुप भी मधुर विस्मृति भी ।
अधर भी हू और स्मित की चांदनी भी ।।
– यामा : महादेवी ।

तुम सुन्दर सुषमामयी कात कमनीया ।
तुम रुचिर चारु बन गई प्रकृति मे माया ।।
——प्रेयस : सुधीन्द्र

चमत्कारक उत्तर होने से उत्तर अलंकार होता है।
जैसे——

हे अनन्त रमणीय ! कौन तुम ' यह मै कैसे कह सकता,
कैसे हो ? क्या हो ? इसका तो भार विचार न सह सकता ।
हे विराट हे विश्वदेव तुम कुछ हो ऐसा होता भान ।।
——कामायनी : प्रसाद ।

तुम मुझ मे प्रिय फिर परिचय क्या !
तेरा अधर विचुम्बित प्याला, तेरी ही स्मृति–मिश्रित हाला ।
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछू मै मेरे साकी देते हो मधुमय विषमय क्या ?
यामा : महादेवी ।

यहा प्रथम का उत्तर संदिग्ध व असम्भव है और द्वितीय का उत्तर ऐसा प्रतीत होता है, जैसे इस उत्तर के लिये किसी ने प्रश्न किया हो। निम्नलिखित पंक्तियों मे रज अपना रंग छोड़ कर ऊषा का रंग ग्रहण करती है अर्थात् यहाँ तद्गुण अलंकार का निर्वाह हुआ है—

यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर से है आ जाता,
यह ऊषा का नवविकास है जो रज को है रजत बनाता ।
यह लघु लहरी का विकास है, कलानाथ जिसमें खिच आता ।।
—पंत

भाविक अलकार मे भूत और भविष्य के भावों का वर्तमान की भाँति वर्णन किया जाता है। यद्यपि इसमे कोइ विशेष आलकारिक चमत्कार नही है, किन्तु आचार्यों ने अलकार-वर्गीकरण मे इसका उल्लेख किया है। अत. इसके प्रयोग मे भी आलकारिक परिभाषा का निर्वाह देख लेना चाहिये—

अरुण अधरो का पल्लव प्रात, मोतियो—सा हिलता हिमहास,
इन्द्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल विद्युत का पावस लास।
हृदय मे खिल उठता तत्काल, अधखिले अंगो का मधुमास।
तुम्हारी छवि का कर अनुमान प्रिये प्राणो की प्राण ॥
—गुजन : पंत।

इसमे भावी प्रियतमा की छवि का अनुमान वर्तमानकाल मे हुआ है। निम्न-लिखित उद्धरण मे भूत का वर्तमान-सदृश वर्णन किया गया है—

अरे मधुर है कष्टपूर्ण भी जीवन की बीती घड़िया,
जब नि:सबल होकर कोई जोड़ रही बिखरी कडियां ॥
—यामा · महादेवी।

इसी प्रकार विगत युद्धस्थल का वर्णन वर्तमानकाल मे देखिये—
सभल-सभल कर पलकों के पग धरिये इसमें दर्शक वृन्द।
दलित न हो पाये मानव के लोहू के वे विन्दु अमन्द ॥
चमक रहे सम्मुख रजकण वे लेकर रण का हास-विलास।
ये वे कीर्तिस्तम्भ है जिन पर लिखा पुण्य-जय का इतिहास ॥
—जौहर सुधीन्द्र।

यहा तक लगभग सभी प्रमुख अर्थालकारो को लेकर उनकी परिभाषाओं की निर्वाह की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी-कविता मे प्रयोगो का अनुशीलन किया गया है। अब थोडा उभयालकारों के प्रयोगो पर भी विचार करना है। पंत जी ने लिखा है कि—

निज पलक मेरी विकलता साथ ही,
अवनि से, उर से, मृगेक्षिणी ने उठा।

एक निज स्नेह श्यामल दृष्टि से,
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप-सी ॥
—ग्रथि . पत।

इस पद मे सहोक्ति श्लेष और उपमा का सुन्दर सकर है, साथ ही प्रत्येक अलंकार एक पृथक् भाव का द्योतक है, उसका स्वतन्त्र प्रयोग नही हुआ है और

अतिम उपमा दीप-सी तो बहुत ही सुन्दर बन पडी है। इसी प्रकार एक पद और लीजिये जिसमे विषम, विरोधाभास, लोकोक्ति का सुन्दर समावेश है—

जो अपांगो से अधिक है देखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा,
वारि पीकर पूछता है घर सदा,
—ग्रथि पत ।

लोकोक्ति का एक प्रयोग और देखिये—

तट ने धोखा दिया मुझको मझधार का,
अगुली छू गई बॉह गहने लगी।
—शैवालिनी : हृदयेश

निम्नलिखित पद मे संध्या की लाली और रात्रि की कालिमा के स्थान पर हेमजाल और कालीचादर का वर्णन होने से रूपकातिशयोक्ति है, पर साथ ही हेमजल (गुण)के साथ कालीचादर(दोष) होने के कारण उल्लास अलकार भी है। इन दोनो अलंकारों के निर्णय मे सदेह है, अत. यहॉ सदेह सकर है—

जब शात मिलन सध्या को हम हेमजाल पहनाते ।
काली चादर के स्तर का खुलना न देखने पाते ।।
—ऑसू : प्रसाद ।

निम्नोद्धरण में अंगागि-भाव-सकर देखिये—

करुणामय को भाता है तम के परदे से आना ।
ओ नभ की दीपावलियो, तुम छिन भर को बुझ जाना ।।
—यामा महादेवी ।

इस पद में दो रूपक है—एक तम के परदे मे आना और दूसरा नभ की दीपावलियो। ये दोनो परस्पर उपकारक है—एक के बिना दूसरे की स्थिति असम्भव है, अत: यहॉ अगागि-भाव-सकर है—

सिधु-सेज पर धरा-बधू अब ।
तनिक संकुचित बैठी-सी ।।
—कामायनी : प्रसाद ।

सिंधु-सेज मे रूपकालकार है, साथ ही छेकानुप्रास भी है। इसलिए इसमें एकवाचककानुप्रवेश सकर है। इसी प्रकार एक दूसरा उदाहरण लीजिये—

तुम तुंग हिमालय शृंग और मै चचल गति सुरसरिता ।
तुम विमल हृदय उच्छ्वास और मै कात-कामिनी कविता ।।
—परिमल : निराला

यहाँ कात-कामिनी-कविता में अनुप्रास और रूपक दोनों अलंकार आ गये है।

सखी नीरवता के कधे पर डाले बांह।
छाँह-सी अम्बर-पथ से चली ॥
—परिमल : निराला।

यहाँ उपमा (छाँह-सी) और रूपक (अम्बर-पथ) का सम्मिलित होते हुए भी भेद स्पष्ट है। अत इसमे अर्थालकार-ससृष्टि है। एक और पद देखिये, जिसमे अर्थालकार-संसृष्टि है—

व्योम-विपिन में जब बसंत सा
खिलता नव पल्लवित प्रभात,
बहते तब हम अनिल-स्रोत में
गिर तमाल-तम के-से पात।
——पल्लव . पंत

यहाँ व्योम-विपिन मे और अनिल-स्रोत में रूपक तथा बसंत-सा और तमाल-तम के से मे उपमालंकार सम्मिलित होते हुए भी पृथक्-पृथक् है। अब एक शब्दार्थालंकार-संसृष्टि का प्रयोग देखिये—

जीवन प्रात समीरण-सा लघु विचरण निरत करो।
तरु-तोरण तृण-तृण की कविता छवि-मधु सुरभि भरो ॥
--परिमल : निराला

इसके पूर्वार्द्ध में उपमा और उत्तरार्द्ध में त, र, ण का वृत्यानुप्रास है। छवि-मधु में रूपक भी है, जिसकी स्थिति पृथक् है।

यहाँ तक तीनों प्रकार के अलंकारो-शब्द, अर्थ और उभय-की परिभाषाओं का निर्वाह आधुनिक हिन्दी कविता मे देखने का प्रत्यत्न किया है और इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि प्रथम तो आधुनिक कविता मे अलकारो का जमघट नही है, और द्वितीय उसमे रीतिकालीन ढग के आलकारिक प्रयोग शोध करना व्यर्थ है। रीतिकाल मे तो अलकार साध्य बन गये थे, किन्तु इस युग मे ऐसी दशा नही है। अब तो वे केवल भावाभिव्यक्ति के साधन है। आज के कवि मे अलकारो की पट्टेबाजी या चमत्कार-प्रदर्शन की प्रवृत्ति नही है। वह रीतिकालीन कवि की भाति अलंकारो को मस्तिष्क मे रख कर काव्य-रचना नहीं करता। अत: उसके काव्य मे आलकारिक परिभाषाओं का स्पष्ट निर्वाह भी नही उपलब्ध होता। आधुनिक कवि तो काव्य के बहिरग (छद,अलकार) का प्राय: बहिष्कार करता है और उसके अंतरंग पर ही अधिक बल देता है। ऐसी स्थिति में आधुनिक कवियों से सर्वथा शास्त्रीय निर्वाह की आशा करना संभव नहीं है।

अलंकारों की नवीन दिशा से मेरा तात्पर्य आंग्ल अलंकारों से है। हिन्दी के आधुनिक कवियो ने काव्य-रचना में अंग्रेजी-साहित्य से पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की है। अत: कतिपय अंग्रेजी अलकारों–मानवीकरण (Personifiation), ध्वन्यार्थव्यंजना (Onomatopoea) विशेषणविपर्यय (Transferred Epithet) आदि के बड़े ही सुन्दर प्रयोग आधुनिक कवियों ने किये है। इस प्रकार के प्रयोग विशेषरूप से छायावादी कविता मे प्रचुरता से प्राप्त होते है। प्रसाद जी की 'झरना' पुस्तक छायावाद की नवीन शैली मे लिखी हुई प्रथम पुस्तक मानी जाती है। इस संग्रह में मानवीयकरण के कुछ उदाहरण मिलते है। यह कहना तो अनुचित होगा कि प्रसाद जी पर अंग्रेजी का प्रत्यक्ष प्रभाव पडा। उन्होने बगला के अध्ययन से आग्ल प्रभाव को ग्रहण किया। 'झरना' की प्रथम कविता मे ही मानवीयकरण प्राप्त होता है—

उषा का प्राची में आभास
सरोरुह का सर बीच विकास
कौन परिचय था? क्या सम्बन्ध?...
राग से अरुण धुला मकरंद
मिला परिमल से जो सानन्द
वही परिचय था, वह सम्बन्ध
'प्रेम का मेरा तेरा छद'।

—झरना : प्रसाद

वर्डस्वर्थ की भाँति प्रसाद जी भी उक्त सचेतन प्रकृति में प्रेम के आदान-प्रदान का दर्शन करते है। समस्त प्रकृति उन्हें प्रेम-पाश में बद्ध प्रतीत होती है। इसी प्रकार उषा उन्हें एक रूपसी सदृश दृष्टिगत होती है जो अम्बर के पनपट पर तारों के घट को डुबो रही है—

बीती विभावरी जाग री।
अम्बर-पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी।
खग-कुल कुल-कुलसा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो, यह लतिका भी भर लायी—
मधु मुकुल नवल रस-गागरी,
अधरों में राग अमंद पिये,
अलकों में मलयज बंद किये—
तू अब तक सोयी है आली।
आँखों में भरे विहागरी।

—लहर : प्रसाद

चित्रात्मकता लाने के लिये प्रसाद जी ने 'कामायनी' में मानवीकरण अलंकार का बहुत उपयोग किया है, उदाहरणार्थ—

१. भयमय मौन निरीक्षक-सा था सजग सतत चुपचाप खड़ा।
२. संध्या की लाली मे हँसती उसका ही आश्रय लेती-सी।
छाया-प्रतिमा गुनगुना उठी श्रद्धा का उत्तर देती-सी।
३. सृष्टि हँसने लगी आँखों में खिला अनुराग।
४. शिथिल अलसाई पड़ी छाया निशा की कांत।
सो रही थी शिशिर कण की सेज पर विश्रांत।।
५. अभिलाषा अपने यौवन में उठती उस सुख के स्वागत को।
— कामायनी : प्रसाद।

प्रसाद जी के अतिरिक्त निराला, पंत, महादेवी के काव्य में मानवीकरण के बहुत ही मनोरम उदाहरण मिलते हैं। छायावादी कवियों ने प्रायः प्रकृति को नारी के रूप मे ही चित्रित किया है। उदाहरणार्थ निराला जी की 'संध्या-सुन्दरी' शीर्षक कविता देखिये—

दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही
वह संध्या-सुन्दरी परी-सी
धीरे-धीरे-धीरे
तिमिरांचल मे चंचलता का नही कही आभास,
मधुर-मधुर है दोनों उसके अधर,
किन्तु गम्भीर, नही है उनमें हास-विलास।
हँसता है तो केवल तारा एक
गुथा हुआ उन घुंघराले काले-काले बालों से,
हृदय राज्य की रानी का वह करता है अभिषेक।
अलसता की-सी लता
किन्तु कोमलता की वह कली,
सखी-नीरवता के कंधे पर डाले बाँह,
छाँह-सी अम्बर-अथ से चली।
नही बजती उसके हाथों में कोई वीणा,
नही होता कोई अनुराग-राग-अलाप,
नूपुरों में भी रुन-झुन रुन-झुन नही,
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द-सा "चुप-चुप-चुप"
है गूंज रहा सब कहीं—

× × ×

और क्या है ? कुछ नही ।
मदिरा की वह नदी बहाती आती,
थके हुए जीवो को वह सस्नेह
प्याला एक पिलाती,

सुलाती उन्हे अंक पर अपने,
दिखलाती फिर विस्मृति के वह कितने मीठे सपने ।
—परिमल . निराला

मानवीकरण की दृष्टि से निराला जी की 'तरङ्गों के प्रति' 'यमुना के प्रति 'जुही की कली' रचनाएँ भी परिलक्षणीय है । पंत जी की प्रकृति के मानवीयकरण की दो सर्वोत्तम रचनाएँ 'संध्या' और 'चाँदनी' हैं । संध्या को कवि ने एक अप्सरा के रूप मे देखा है जो व्योम से मंथर गति से चुपचाप सुनहले केशो को फैलाये हुये उतर रही है । अनिल से पुलकित संध्या का लोल स्वर्णांचल, खग-कुल खेल के रूप में उसकी नूपुर ध्वनि, जलदों के सीप के समान खुले उसके पख आदि का बड़ा भव्य वर्णन किया गया है—

कहो, तुम रूपसि कौन ?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया-छवि में आप,
सुनहला फैला केश-कलाप,
मधुर, मंथर, मृदु, मौन ।

मूद अधरों में मधुपालाप,
पलक मे निमिष, पदों में चाप,
भाव-संकुल, बकिम भ्रू-चाप,
मौन, केवल तुम मौन ।

ग्रीव तिर्यक, चम्पक-द्युति गात,
नयन मुकुलित, नत मुख-जलजात,
देह छवि-छाया मे दिन-रात,
कहाँ रहती तुम कौन ?

अनिल-पुलकित स्वर्णांचल लोल,
मधुर नूपुर- ध्वनि खग-कुल-रोल,
सीप-से जलदों के पर खोल,

उड रही नभ में मौन ।

लाज से अरुण-अरुण सुकपोल,
मधुर अधरों की सुरा अमोल,
बने पावस-घन स्वर्ण-हिंदोल,
कहो एकाकिनि, कौन ?
मधुर, मंथर तुम मौन।
—पल्लविनी : पंत।

इसी प्रकार पंत जी ने 'चाँदनी' में ज्योत्सना के विविध रूपों का वर्णन किया है। कभी वह सरिता के कूल पर सोई हुई नारी के रूप में है—स्तब्ध समीरण उसकी सासें और लघु-लघु लहरों की गति उसका उर-स्पन्दन है। कभी वह अपने ही सौन्दर्य मे छिपी हुई शिखर पर खड़ी है और उसकी सुन्दर छवि सागर की लहर-लहर पर नृत्य कर रही है।

महादेवी जी ने भी प्रकृति का मानवीकरण किया है। उन्होंने मानवीकरण द्वारा चेतन प्रकृति के कही-कही पर विराट चित्र प्रस्तुत किये है। वह 'बसंत-रजनी' को क्षितिज पर से उतरने के लिये कहती है—

धीरे-धीरे उतर क्षितिज से,
आ बसंत रजनी !
तारकमय नव वेणी बन्धन,
शीशफूल कर शशि का नूतन,
रश्मि-वलय सित घन-अवगुण्ठन,
मुक्ताहल अभिराम बिछा दे,
चितवन से अपनी।
पुलकित आ बसंत-रजनी।
मर्मर की सुमधुर नूपुर ध्वनि;
अलि-गुंजित पद्मों की किंकिणि;
भर पदगति में अलस तरंगिणि;
तरल रजत की धार बहा दे
मृदु स्मित से सजनी।
विहँसित आ बसंत-रजनी।
पुलकित स्वप्नों की रोमावलि;
कर में हो स्मृतियों की अंजलि;
मलयानिल का चल दुकूल अलि;
घिर छाया-सी श्याम, विश्व को
आ अभिसार बनी !
सकुचाती आ बसंत-सजनी

सिहर-सिहर उठता सरिता-उर;
खुल-खुल पड़ते सुमन सुधा-भर;
मचल-मचल आते पल फिर-फिर;
सुन प्रिय की पदचाप हो गई
पुलकित यह अवनी !
सिहरती आ बसंत-रजनी !
—यामा : महादेवी वर्मा ।

एक अन्य रचना में महादेवी जी ने प्रकृति को अप्सरा के रूप मे देखा है, जो अनन्तकाल से अमर लय-गीत तथा पद-ताल से नृत्य करती रही है--

लय गीत मदिर, गति ताल अमर,
अप्सरि, तेरा नर्तन सुन्दर ।
आलोक तिमिर सित असित चीर,
सागर गर्जन रुनझुन मँजीर,
उड़ता झंझा में अलक-जाल,
मेघों मे मुखरित किंकिणि स्वर ।
अप्सरि, तेरा नर्तन सुन्दर ।
—यामा : महादेवी ।

रामकुमार वर्मा की सौदर्यवादिता भी प्रकृति के मानवीकरण मे कभी-कभी व्यक्त होती है । वह ज्योत्सना को नभ की बरसी हुई उमग के रूप मे देखते है—

वह ज्योत्सना तो देखो नभ की बरसी हुई उमग ।
—आधुनिक कवि : रामकुमार वर्मा ।

वह पर्वत को नभ के स्पर्श से धरा का पुलकित हुआ गात मानते हैं—

नभ को छू के पर्वत स्वरूप ।
है उठा धरा का पुलक गात ।।
—आधुनिक कवि : रामकुमार वर्मा ।

प्रयोगवादी कवियो मे गिरिजाकुमार माथुर को मानवीकरण अलकार बहुत प्रिय है । उन्होने नारी-रूप मे वर्षा का बडा ही रम्यरूप चित्रित किया है—

गीली अलकों से बारि-बूदे चुआती हुई,
झीनी झोलियो से मुक्त-मुक्ता लुटाती हुई,
कोयल-सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल पर,

सुरमीली आँखों को ढांक रही श्यामअलक,
सावली बदलियो का उडता-सा घूघट पट,
छिपता-सा इन्दु बदन जाता है झलक-झलक,
उठती नत चितवन जब हलकी-सी विद्युत बन।

—मंजीर : गिरिजाकुमार माथुर।

प्रकृति और विश्व की समस्त जड़ तथा अरूप वस्तुयें चेतन और सरूप बन कर मानवी क्रिया-व्यापार करने लगती है, तब मानवीकरण अलंकार होता है। इस अलकरण की उद्भावना चित्रोपमता लाने के लिये और अनुभूति-प्रवणता की दृष्टि से हुई है। इसी से मिलते-जुलते एक अलंकार का उल्लेख भारतीय साहित्य शास्त्रियों ने किया है, जिसका नाम समासोक्ति है। अब हमें यह देखना है कि मानवीकरण और समासोक्ति में क्या अन्तर है। विश्वनाथ ने समासोक्ति की परिभाषा दी है कि जिस वाक्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत मे समानरूप से अन्वित होने वाले कार्य लिंग और विशेषणो से प्रस्तुत मे अप्रस्तुत के व्यवहार का आरोप किया जाय, वहाँ समासोक्ति अलकार होता है।[1] ऊपर से देखने मे समासोक्ति और मानवीकरण में कोई अन्तर नही दिखाई पडता।

आधुनिक कवियों के मानवीकृत प्रकृति-वर्णन में प्रस्तुत की अपेक्षा अप्रस्तुत-मानवीयरूप व्यापार ही अधिक मुखर हुए है। प्रस्तुत उनमें दब जाता है। ऐसे स्थलों में समासोक्ति का उपर्युक्त लक्षण पूर्णत: घटित नही होता। यही समासोक्ति और मानवीकरण में अन्तर है।

उदाहरणार्थ—

नीले नभ के शतदल पर,
वह बैठी शारद-हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष एकाकिनि!
वह स्वप्न-जड़ित नत चितवन
छू लेती अग-जग का मन,
श्यामल, कोमल चल चितवन
जो लहराती जग-जीवन।

—पल्लविनी : पंत।

---

१ समासोक्ति: समैर्यत्र कार्यलिगविशेषणै:।
व्यवहारसमारोप: प्रस्तुतेऽन्यस्य वस्तुन:॥

—साहित्यदर्पण।

इस उद्धरण में प्रस्तुत पक्ष– चाँदनी का वर्णन गौण पड गया है तथा अप्रस्तुतपक्ष-नायिका के स्वरूप ने उसे दबा लिया है ।

पंत जी ने लिखा है कि "पर्यायवाची शब्द, प्राय: संगीत भेद के कारण एक ही पदार्थ के भिन्न-भिन्न स्वरूपों को प्रकट करते है । जैसे "भ्रू" से क्रोध की वक्रता, 'भ्रकुटि' से कटाक्ष की चञ्चलता, भौंहों से स्वाभाविक प्रसन्नता, ऋजुता का हृदय मे अनुभव होता है ।" पंख शब्द मे केवल फड़क ही मिलती है, उडान के लिए भारी लगता है; 'स्पर्श जैसे प्रेमिका के अगों का अचानक स्पर्श होकर हृदय में जा रोमांच हो उठता है उसका चित्र है; 'अनिल से एक प्रकार की कोमल शीतलता का अनुभव होता है, जैसे खस की टट्टी से छन कर आ रही हो, वायु मे निर्बलता तो है ही, लचीलापन भी है । यह शब्द रबर के फीते की तरह खिच कर फिर अपने ही स्थान पर आ जाता है ।" इत्यादि । छायावादी कवियो ने विशेषरूप से सजग होकर इस प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया है । यह अग्रेजी अलंकार ध्वन्यार्थव्यंजना का प्रभाव है । इसमे नाद भाव का अनुकरण करता है । उदाहरणार्थ गति-व्यंजना का प्रयोग देखिये, जिसमें शब्दों की ध्वनि से क्षिप्र-मंद गतिकी व्यंजना होती है—

फिर क्या ? पवन
उपवन-सर-सरित गहन-गिरि-कानन
कुन्ज-लता पुन्जों को पार कर
पहुँचा…

—परिमल : निराला ।

यहाँ पवन की क्षिप्रता ध्वनि से कंणित हो उठी है ।

छायावादी कवियो ने भाव और नाद की मैत्री का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह किया है । नाद-व्यजना के उदाहरण देखिए—जिसमे ध्वनि से वस्तु के नाद (शब्द) की व्यंजना हुई है—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश,
पल-पल परिवर्तित प्रकृति वेश ।
—पल्लव : पंत ।

शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
—पल्लव : पंत ।

कणकण रव किंकिणि,
रणन रणन नूपुर ।
—गीतिका : निराला

१ पल्लव की भूमिका — पृ० १६-१७.

इसके उदाहरण निस्सन्देह प्राचीन हिन्दी कविता में भी हैं। तुलसी के 'कंकन किंकिणि नूपुर धुनि सुनि' मे नूपुर की ध्वनि भी सुनाई देती है। वृत्तियों के निर्वाह मे कुछ ऐसा ही सिद्धान्त था, किन्तु उसमे पूर्ण ध्वनिव्यंजना का निर्वाह कदाचित ही हो पाता था। नादानुकरण पर भाषा में अनेक शब्द (हिनहिनाना, झकार, हुकार, आदि) बने है। छायावादी कवियों ने विशेषरूप से पत जी ने शब्द के चित्र के साथ उसकी ध्वनि की प्रकृति को भी पहिचाना है। उन्होने छोटे-छोटे नादानुकारी पदों की सृष्टि की है—रतमल रणमण, टलमल, टलमल, छलछल, कलमल, रलमल, कलकल, छलछल, झर्झर, मर्मर आदि। निराला जी की संध्या-सुन्दरी, भी जब अम्बर-पथ से उतर कर चलने लगती है, तो एक अव्यक्त शब्द 'चुप, चुप, चुप' ही सुनाई पडता है। नाद-व्यजना आधुनिक कवियों की निजी विशेषता है। इस दृष्टि से इस युग की कविता द्विवेदी-युग की कविता से बहुत आगे बढ़ आयी थी। यह अन्तर निम्नलिखित दो उद्धरणो से स्पष्ट हो जायेगा—

सरस, सुन्दर सावन मास था,
घन रहे नभ में घिर घूमते।
विलसती बहुधा जिनमें रही,
छबिवती उड़ती बक-मालिका॥
घहरता गिरि-सानु समीप था,
बरसता क्षिति छू नव वारि था।
घन कभी रवि अन्तिम अशु ले,
गगन में रचता बहु चित्र था॥
नवप्रभा परमोज्ज्वल लीक-सी,
गतिमती कुटिला-फणिनी समा।
दमकती–दुरती घन–अंक में,
विपुल केलि-कला-खनि दामिनी॥
—प्रियप्रवास : हरिऔध।

झूम-झूम मृदु गरज, गरज घन घोर।
राग-अमर! अम्बर में भर निज रोर।

झर झर झर निर्झर-गिरि-सर मे,
घर मरु, तरु-मर्मर, सागर में,
सरित-तड़ित-मति-चकित पवन में,
मन में, विजन-गहन-कानन में,
आनन-आनन मे, रव-घोर-कठोर—
राग अमर! अम्बर में भर निज रोर!

× × ×

धंसता दलदल,
हसता है नद खल-खल
बहता, कहता कुलकुल कलकल कलकल।
देख-देख नाचता हृदय
कहने को महा विकल बेकल,
इस मरोर से-इसी शोर से—
सघन घोर गुरु गहन रोर से

मुझे-गगन का दिखा सघन वह छोर।
राग अमर अम्बर मे भर निज रोर।
—परिमल · निराला

प्रथम कविता द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि हरिऔध जी की है और द्वितीय छायावाद के प्रमुख कवि निराला जी की है। दोनों कवियो ने अपनी-अपनी कविताओ मे बादलों का वर्णन किया है, किन्तु भाषा का जो महान वैभव, छद का जो अपूर्व गभीर लास, शैली की जो अपार्थिव झकार निराला जी की कविता में है, वह हरिऔध जी मे अप्राप्य है। निराला जी की शब्द-योजना से बादलों का रव व्यजित हो रहा है, किन्तु हरिऔध जी की कविता मे यह गुण अनुपलब्ध है। इसी प्रकार पत जी की निम्नलिखित 'बादल' कविता में भी नाद-सौन्दर्य की इतनी प्रचुरता है कि वह चित्रकाव्य बन गई है—

धूम धुंआरे काजर कारे
तुम ही बिकरार बादर
मदनराज के बीर बहादुर
पावस के उडते फणिधर
चमक झमकमय मन्त्र बशीकर
छहर घहरमय विष सीकर
स्वर्गसेतु से इन्द्रधनुषधर
कामरूप घनश्याम अमर।

—पल्लव · पत

इसी प्रकार 'पवन-गीत' में वायु-ध्वनि का अनुरणन पकडने का प्रयास है—

सर सर मर मर झन-झन सन-सन
गाता कभी गरजता भीषण,
वन-वन, उपवन,
पवन, प्रभजन !
—पल्लविनी : पत

भ्रमरो की ध्वनि की व्यंजना से नीचे के छद में आए सभी शब्द झुनझुना रहे है—

वन वन, उपवन—
छाया उन्मन उन्मन गुजन,
नव वय के अलियो का गुंजन ।

—पल्लविनी : पत

इस प्रकार की कविताओ मे अग्रेजी अलकार ध्वन्यार्थ-व्यजना का ही प्रभाव है ।

जहा एक पदार्थ का विशेषण दूसरे पदार्थ के साथ नियोजित हो जाता है, वहा विशेषण विपर्यय होता है । यह एक प्रकार का अर्थालकरण है । तद्गुण भी इसी का सजातीय है, जिसमे एक वस्तु का गुण दूसरी निकट की वस्तु ग्रहण कर लेती है । विशेषण विपर्यय मे वाच्यार्थ का बोध होने और साकेतिक अर्थ का स्वीकार होने के कारण यह एक लाक्षणिक प्रयोग ही है, किन्तु अग्रेजी मे यही विशेषण विपर्यय (Transferred Epithet) के नाम से प्रचलित है । समस्त आग्ल अलकार प्राय. लक्षणाश्रित ही है । आधुनिक कवियो ने विशेषण-विपर्यय के बहुत प्रयोग किये है । यथा—

१. अभिलाषाओ की करवट फिर लुप्त व्यथा का जगना ।

—आसू . प्रसाद

२. चल चरणों का व्याकुल पनघट ।

—परिमल निराला

३ वेदना के ही सुरीले हाथ से —ग्रथि : पंत

४ बच्चों के तुतले भय-सी । —पल्लव : पत

उपर्युक्त उदाहरणों मे करवट, सुप्त, व्याकुल, अलसित, सुरीले, तुतले विशेषण विपर्यस्त है । अभिलाषाएं करवट नही लेती, आदमी करवट लेता है, व्यथाएं सुप्त नही है, आदमी सुप्त है, पनघट व्याकुल नही, कदाचित् गोपिया व्याकुल थी, वेदना का स्वर सुरीला है, हाथ नही, भय तुतला नही, बालक तुतला है । इसी प्रकार के अजाननयन (Innocent eyes), स्वप्निल हास (Dreamy Smile) आदि भी प्रयोग है जो पाश्चात्य प्रभाव से हिन्दी-कविता मे आए है । इसी प्रकार मेटोनिमी (Metonymy) और सिनक्डकी (Synecdoche) अलकार है जिनके प्रयोग आधुनिक हिन्दी-कविता मे मिलते है । मेटोनिमी मे लिंगी के लिए लिग, आधेय के लिए आधार और कर्ता के लिए कारण प्रयुक्त होता है । सिनक्डकी मे व्यक्ति के लिए जाति, जाति के लिये व्यक्ति, अंग के लिए अंगी, अंगी के लिये अंग, मूर्त के लिए अमूर्त और अमूर्त के लिए मूर्त प्रयोग किया जाता है ।

उक्त आंग्ल-अलंकारो को भारतीय अलंकारशास्त्रियों ने अलंकारों में नही परिगणित किया है। इसका कारण है, शब्द-शक्ति का पृथक् विवेचन। भारतीय और यूरोपीय अलकार-शास्त्र मे प्रमुख अन्तर यही है कि भारतीय आचार्यो में शब्द-शक्तियो का अलंकारो से पृथक् विवेचन किया है और यूरोपीय आचार्यों ने अलकारों मे ही शब्द-शक्ति को अन्तर्भूत कर लिया है। संस्कृत मे अनेक अलकार ऐसे है जो लक्षणाव्यजनाश्रित हैं। संस्कृत मे तो अत्यन्त साधारण चमत्कार मे भी अलकारिता स्वीकार की गई है। इतना ही नहीं, किन्ही-किन्ही कथनों मे तो कोई अलकारतत्व है ही नही, किन्तु उन्हे भी अलकार-सज्ञा दी गई है। ऐसी स्थिति मे आग्ल-अलकारों को भारतीय अलकार-शास्त्र मे स्थान देना अनुचित न होगा। यद्यपि यह सर्वविदित तथ्य है कि यूरोप मे अलकार-शास्त्र का इतना सूक्ष्म विवेचन नही हुआ है जितना कि भारतीय आचार्यों ने किया है, फिर भी ज्ञान-वृद्धि-हेतु समयानुसार परिशोधन, परिवर्द्धन और नवीनता का समावेश असगत न होगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने कहा है कि 'भारती को कुछ नवीन भूषणो से अलंकृत करने मे हमे सकोच नही करना चाहिए। फिर क्या कारण कि बेचारी भारती के जेवर वही, भरत, कालिदास भोज इत्यादि के जमाने के ज्यो-के-त्यों बने हुए है। भारती को क्या नवीनता पसन्द नही ? न हो तो न सही। हो तो केडिया जी कुछ नए आभूषणों की खोज या कल्पना करने की भी कृपा करें। ये पुराने भूषण-भाषण के भिन्न-भिन्न ढग हैं। क्या इनके सिवा बोलने और लिखने मे सरसता या चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कोई अन्य ढंग नही हो सकता है।'[1] द्विवेदी जी का यह कथन सर्वथा सत्य, संगत, समीचीन और समयानुकूल है।

---

१ 'भारती-भूषण' की प्रस्तावना में उद्धृत पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का एक पत्र।

८

आधुनिक अलंकृत उक्तियाँ और शब्द-शक्ति

मानव-जीवन में वाणी का बहुत महत्त्व है। वाणी की विशिष्टता के कारण ही मानव सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट रचना है। वाणी द्वारा मानव ने शेष सृष्टि से सम्बन्ध स्थापित कर अपने क्षेत्र को व्यापक बनाया है। यही कारण है कि वह इतर जीव-सृष्टि के सदृश स्वनिष्ठ नही है। वाणी अपनी इसी महत्ता के कारण प्रारम्भ से ही मनीषियों के मनन-चिंतन का विषय रही है। "मानव-जाति के सम्पूर्ण इतिहास मे शब्द और अर्थ से सम्बन्धित प्रश्नो के अतिरिक्त अन्य ऐसा कोई प्रश्न नहीं रहा, जिसने इतनी अधिक गवेषणात्मक व्यस्तता तथा इतना आकर्षण उत्पन्न किया हो—अब, यह गवेषणा शब्द तथा अर्थ के सम्बन्ध की प्रकृति के विषय मे है, जो शब्दार्थ-विज्ञान की वास्तविक तथा उच्चतम समस्या है; यहाँ शब्द और अर्थ का प्रयोग दोनो के विस्तृत अर्थ में किया गया है।"[1] विश्व की प्राचीनतम पुस्तक ऋग्वेद मे वाणी के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि "वाणी को देखते हुए भी कई व्यक्ति नहीं देख पाते; कई लोग इसे सुनकर भी नही सुन पाते। किन्तु विद्वान व्यक्ति के समक्ष वाणी अपने कलेवर को ठीक, उसी तरह प्रकट कर देती है, जैसे सुन्दर वस्त्र वाली कामिनी प्रिय के हाथों अपने आपको अर्पण कर देती है। विद्वान व्यक्ति देवताओं

---

1. Throughout the whole history of human race, there have been no questions which have caused more heart-searchings, tumults and devastations than questions of the correspondence of words to facts.........Now, it is the investigation of the nature of correspondence between words and facts, to use these terms in the widest sense, which is the proper and higest problem of the Science of meaning.

—Dr. Postgate quoted by Ogden and Richards in The Meaning of Meaning. P. 17.

का मित्र है, वह किसी भी समय असफल नही होता। किन्तु जो व्यक्ति पुष्प और फल से रहित अर्थात् निरर्थक वाणी सुनता है, वह ढोंग करता है।" इसी प्रकार विश्व के विद्वानो ने वाणी की महत्ता का विभिन्न ढगों से व्याख्यान किया है।[1]

काव्यशास्त्रियों ने शब्द और अर्थ के अनेक भेद किये है।[2] शब्द और अर्थ के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। वे सर्वथा एक दूसरे के विपरीत विचारधारा रखते है।[3] किन्तु, वाणी के विषय मे जितनी सूक्ष्मता से भारतीय

---

१ अ—एक: शब्द: सम्यग्ज्ञात: सम्मक् प्रयुक्त:;
स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति ॥ पतजलि।

ब—अनादि निधन ब्रह्म शब्द तत्त्व यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यत. ॥
आत्म रूप यथा ज्ञाने ज्ञेयरूपञ्चच दृश्यते।
अर्थरूप तथा शब्दे स्वरूपश्च प्रकाशते ॥

स—इदमन्धतम: कृतस्नं जायते भुवनत्रयम्।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारान्नदीप्यते ॥ दडी।

द—For one word a man is oftendeemed to be wise and for one word he is deemed to be foolish. We ought to be careful what we say.—Confucius.

२. भारतीय विद्वानों के अनुसार सार्थक शब्द चार प्रकार का होता है–प्रकृति, प्रत्यय, निपात तथा उपसर्ग, और अर्थ भी चार प्रकार का होता है—प्रत्यक्ष अनुमति, आप्तोलब्ध और कल्पित।

इसी सम्बन्ध मे एक बात और भी जान लेना आवश्यक है कि वाणी तथा भाव; अथवा शब्द तथा अर्थ मे अद्वैत सम्बन्ध है या द्वैत सम्बन्ध। यहाँ अद्वैत तथा द्वैत शब्दों का प्रयोग हम वेदान्त आदि दर्शन के पारिभाषिक रूप मे न कर साधारण अर्थ मे ही कर रहे है। भाषा के दर्शन तथा मनोविज्ञान के अन्तर्गत वाणी तथा भाव की इस समस्या को प्राय. दो प्रकार से मीमांसित किया गया है। कुछ विद्वानों के मतानुसार वाणी तथा भाव में अभिन्न सम्बन्ध है, दोनों एक ही है। दूसरे विद्वानों के मतानुसार वाणी भाव (विचार) नही, एक अभिव्यक्ति अर्थात् विचारों, भावों तथा इच्छाओं का बहि प्रदर्शन है।

३. प्रसिद्ध भाषाशास्त्री स्तीन्थाल वाणी तथा विचारों की अद्वैतता को मानते हैं। उनके मतानुसार "वाणी स्वयं विचार है, शब्द स्वय भाव है, वाक्य स्वयं ही निर्धारण है। केवल एक ही समय मे इनमें भाषाशास्त्रीय तथा ध्वन्यात्मक एकता स्पष्ट प्रतीत होती है।" अपने प्रसिद्ध काव्य 'रघुवंश' के मंगलाचरण में महाकवि

विद्वानों ने विचार किया है, उतना यूरोपीय विद्वानो ने नही। शब्दके सम्बन्ध मे मत-वैभिन्य होते हुए भी एक बात अवश्य सर्वमान्य है कि शब्द के अनेक अर्थ होते है। और काव्य के विषय मे तो यह कथन और भी अधिक सत्य है। "बिलियर्ड का कोई खिलाड़ी कदुक को उछालकर 'क्यू' को अपनी नाक मे सतुलित कर अपने क्रीडा–कौशल से दर्शको को चकित करने की चेष्टा करता है, इसी प्रकार चाहे हम जाने या न जाने चाहे या न चाहे, वाणी का प्रयोग करते हुए हम सब ऐन्द्र-जालिक हैं।[१]" इसी कारण शब्द का पूर्ण अर्थ-ज्ञान हमे तभी होता है, जब वह वाक्य मे व्यवहृत हो। कहा भी गया है कि "वाक्य मे प्रयुक्त सार्थक शब्द-ज्ञान से ही शब्द-बोध होता है, केवल शब्द के ही जान लेने से नही।[२]" शब्द का अर्थ से एक प्रकार का सम्बन्ध रहता है। बिना सम्बन्ध का शब्द अर्थ-हीन होता है। उसमे अर्थ-बोध कराने की शक्ति नही होती अर्थात् सबध ही शब्द की शक्ति है।

कालिदास भी वाणी तथा अर्थ को परस्पर सश्लिष्ट एवं अद्वैत मानते जान पडते हैं। शिव-पार्वती की वदना करते हुए वे कहते है—"मै वाणी के अर्थ की प्रतीति के लिये ससार के माता-पिता, पार्वती तथा शिव की बदना करता हूँ, जो एक दूसरे से उतने ही संश्लिष्ट है, जितने वाणी और अर्थ।" यहाँ शिव-पार्वती के अर्धनारीश्वर वाले अद्वैत रूप की स्तुति की गई है। इसी को महाकवि तुलसीदास ने भी यो व्यक्त किया है।

गिरा-अरथ जल-वीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दहुँ सीता-राम-पद, जिन्हहि परमप्रिय खिन्न॥ (बालकाड दो० १८)

इसके प्रतिकूल लीबमान जैसे विद्वान वाणी तथा विचारों की अद्वैतता का निषेध करते हुए कहते है "शब्द विचार (भाव) नही, विचार (भाव) कल्पना के आधार पर निर्मित नही, विचारात्मक मनन न तो आभ्यतर वाणी ही है, न कल्पना ही। किन्तु दोनों मे से एक वस्तुत: मानसिक शक्तियो से दूर है।

ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त: डा० भोलाशङ्कर व्यास, पृ० २१।

1. Whether we know it or not, we are all jugglers when we converse, keeping billiard-balls in the air while we balance the cue on our nose.

Practical Criticism by J. A. Richards, P. 180.

२. वाक्यभावमवाप्तस्य सार्थक-स्यावबोधत।
संपद्यते शाब्दबोधो न तन्मात्रस्य बोधत.॥
—शब्द शक्ति-प्रकाशिका, कारिका। १२।

बिना सबध के शब्द प्राणहीन होता है। इसीलिये शब्द-तत्त्ववेत्ताओं ने कहा है कि शब्द और अर्थ के सम्बन्ध का नाम शक्ति है (शब्दार्थ सम्बन्धः शक्तिः)। लेकिन शब्द एक से अधिक भावो का बोधक होता है; अत शब्द की एक से अधिक शक्तियाँ मानी गई है जिनके द्वारा शब्द अनेक अर्थों का ज्ञान कराता है। "एक 'बैल' (गौ.) शब्द ही 'सास्नादिमान पशु विशेष' (वाच्यार्थ), 'पुरुष विशेष' (लक्ष्यार्थ) तथा 'मूर्खत्व' (व्यंग्यार्थ) का बोधन करा सकता है, और प्रत्येक दशा मे उसकी एक विशेष शक्ति होगी। एक दशा मे वह सीधा अर्थ सूचित करता है, दूसरे तथा तीसरे में टेढा। इन्ही सम्बन्धों को क्रमशः अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना व्यापार माना गया है। इन व्यक्तियो मे से कुछ विद्वान केवल दो ही शब्द शक्तियाँ मानते है। मीमासको के मतानुसार अभिधा व लक्षण दो ही शब्द शक्तिया है। यही नैयायिको को भी सम्मत है। भट्ट मीमासक तथा नैयायिक तात्पर्य वृत्ति नाम की एक शक्ति जरूर मानते है जो वस्तुतः शब्द की शक्ति न होकर वाक्य की शक्ति है। प्राचीन वैयाकरण स्पष्ट रूप से दो ही शब्द शक्तियाँ मानते है, नव्य वैयाकरण अवश्य व्यजना को अलग से शब्द शक्ति मानने के पक्ष मे है। भरत, भामह, दण्डी, वामन आदि प्राचीन आलकारिको ने यद्यपि शब्द-शक्ति पर कोई प्रकाश नही डाला है, तथापि यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि वे भी अभिधा व लक्षणा इन दो शब्द शक्तियो को ही मानने के पक्ष मे थे।[1]" "निरुक्त, छन्दशास्त्र तथा वाक्यज्ञान आदरणीय विज्ञान है, तथा मानव-ज्ञान के विशाल-क्षेत्र मे उनका भी समुचित स्थान है। वे काव्य के शरीर-विज्ञान है। किन्तु वे हमे काव्य-शक्ति के रहस्यो को समझाने की सहायता वितरित नही करते, क्योकि काव्य-शक्ति आकस्मिक तथा बाह्य-साम्य से सर्वथा निराश्रित है।[2]" अर्थात् लक्षणा-व्यजना की काव्यालोचन सरणि काव्य के अन्तरतम गूढ रहस्यो का उद्घाटन करती है। यही बात प्रकारान्तर से आनन्दवर्धनाचार्य ने भी कही है कि वह (प्रतीयमान अर्थ) शब्दशास्त्र (व्याकरणादि) और अर्थशास्त्र (कोशादि) के ज्ञानमात्र से ही प्रतीत नहीं होता, वह तो केवल काव्य मर्मज्ञ को ही विदित होता है, क्योकि केवल काव्यार्थतत्त्वज्ञ ही उस अर्थ को जान सकते है। यदि वह अर्थ केवल वाच्यरूप ही होता तो शब्द और अर्थ के ज्ञानमात्र से ही उसकी प्रतीति होती। परन्तु केवल पुस्तक से गन्धर्वविद्या को सीख लेने वाले उत्कृष्ट

---

(१) ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्तः डा० भोलाशकर व्यास, —पृ० ६७

[2] Etymology versification, syntax are respectable sciences and have their proper place in the wide field of human knowledge. They are the anatomy and physiology of poetry. But they do not help us to understand the secrets of poetic power for the simple reason that the poetic power is independent of accidental and external resemblances.

—Creative Criticism, P. 11.

गान के अनभ्यासी (नौसिखिये) गायकों के लिये स्वर, श्रुति आदि के रहस्य के समान काव्यार्थ भावना से रहित केवल वाच्यवाचक (कोशादि अर्थ निरूपक शास्त्र और व्याकरणादि शब्दशास्त्र) मे कृतश्रम पुरुषों के लिए वह (प्रतीयमान) अर्थ अज्ञात ही रहता है[१]। इस प्रकार वाच्यार्थ से भिन्न व्यंग्य की सत्ता का ही काव्य मे प्राधान्य होता है।

अलकारों और शब्द-शक्तियों का परस्पर बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। पण्डित-राज जगन्नाथ ने 'रस गगाधर' मे शब्द-शक्ति-प्रसग मे अलकारो पर नवीन दृष्टिकोण से विचार किया है। उन्होने अलंकारों का मूलाधार लक्षणा माना है। इस प्रकार अलकारो का आधार शब्द-शक्ति हो गई है और मुख्याधार लक्षणा है। यूरोपीय साहित्यशास्त्र के प्राय: सभी अलकार लाक्षणिक प्रयोग के अन्तर्गत आ जाते है।

शब्द-शक्तियो मे अभिधा प्रधान शक्ति है, इसीलिये उसे मुख्या या अग्रिम कहा जाता है। ऐसी कविता की स्थिति असम्भव है जिसमे अभिधा शक्ति से किसी-न-किसी रूप मे काम न लिया गया हो। लक्षण से तो इसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध है ही, व्यंजना भी अभिधाश्रित है। जब लक्षणा भी किसी वाक्य का प्रकरणसापेक्ष्य अर्थ नहीं दे पाती, तब अभिधाशक्ति के बल पर ही व्यजना अभीष्ट अर्थ को प्रकट करती है। इसीलिये अभिधाशक्ति का कोई कम महत्व नही है। देव ने तो अभिधामूलक काव्य को ही सर्वोत्तम स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी काव्य मे अभिधाशक्ति का ही सर्वश्रेष्ठत्व मानते हुए लिखा है कि "यह स्पष्ट है कि लक्ष्यार्थ और व्यग्यार्थ भी 'योग्यता' या 'उपयुक्तता' को पहुँचा हुआ, समझ मे आने योग्य रूप मे आया हुआ, अर्थ ही होता है। अयोग्य और अनुपपन्न वाच्यार्थ ही लक्षणा या व्यजना द्वारा योग्य और बुद्धिग्राह्य रूप मे बहुत परिणत होकर हमारे सामने आता है।[२]" इस प्रकार अभिधाशक्ति का काव्य में बहुत महत्व है, इसमें दो मत नही हो सकते, किन्तु यह कहना कि अभिधात्मक काव्य ही सर्वोत्तम काव्य है, उचित नही प्रतीत होता।

---

(१) शब्दार्थशासन ज्ञानमात्रेणैव न वेद्यते।
वेद्यते सतु काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव केवलम् ॥१।७॥

सोऽर्थो यस्मात् केवल काव्यार्थतत्त्वज्ञैरेव ज्ञायते। यदि च वाच्यरूप एवासावर्थ: स्यात्, तद वाच्यवाचकस्वरूपपरिज्ञानादेवतत्प्रतीति: स्यात्। अथ च वाच्यवाचक-लक्षणमात्रकृतश्रमाणां काव्यतत्त्वार्थभावनाविमुखाना स्वरश्रुत्यादिलक्षणमिवाप्रगीताना गान्धर्वलक्षणविदामगोचर एवासावर्थ: ॥७॥

—ध्वन्यालोक।

(२) चिन्तामणि, भाग द्वितीय, पृष्ठ १७८।

आधुनिक-हिन्दी-कविता में यथार्थवादी और प्रगतिवादी कवियों, जैसे—बच्चन, दिनकर, नरेन्द्र, नेपाली, सुमन, केदारनाथ आदि—ने अधिकतर अभिधात्मक शैली मे ही काव्य रचना की है। उदाहरणार्थ—

दोनो चित्र सामने मेरे!
सिर पर बाल घने घुघराले काले, कडे, बडे, बिखरे से,
मस्ती, आजादी, बेफिक्री, बेदर्री के है सदेश!
माथा उठा हुआ ऊपर को, भौहो मे कुछ टेढापन है,
दुनियाँ को है एक चुनौती, कभी नही झुकने का प्रण है!
सिर पर बाल कडे कघी से, तरतीबी से चिकने, काले,
जग की रूढ-रीति ने जैसे मेरे ऊपर फदे डाले!
भौहे झुकी हुई नीचे को, माथे के ऊपर है रेखा,
अकित किया जगत ने जैसे, मुझ पर अपनी जय का लेखा।।

—आकुल अतर : बच्चन

इस उद्धरण मे लगभग सभी वाक्य सीधे-सीधे और मुख्यार्थ का सकेत करते है।

द्विवेदी युग की कविता इतिवृत्त प्रधान अभिधामूलक है और तत्पश्चात्-कालीन कविता लक्षणा-व्यजना प्रधान है। "द्विवेदी युग के इतिवृत्त काव्य की भीषण प्रतिक्रिया रूप छायावाद का जन्म हुआ। द्विवेदी-कविता की इतिवृत्त शैली के विपरीत छायावाद का जन्म हुआ। द्विवेदी-कविता की इतिवृत्त शैली के विपरीत छायावाद की शैली अतिशय व्यजनापूर्ण है। द्विवेदी युग का कवि जहाँ व्यजना के रहस्य-सौदर्य से अपरिचित रहा, वहा छायावाद मे लक्षणा-व्यजना का का आकषण इतना अधिक बढ गया कि अभिधा की एक प्रकार से उपेक्षा हो गई। छायावाद के प्रवर्त्तक प्रसाद ने छायावाद के व्युत्पत्ति-अर्थ के मूल मे ही व्यजना का आधार माना। जिस प्रकार मोती मे वास्तविक सौदर्य उसकी छाया है जो दाने की सारभूत छवि के रूप मे पृथक् ही झलकती है, इसी प्रकार काव्य मे वास्तविक सौदर्य उसकी ध्वनि है जो शब्दो के वाच्यार्थ से पृथक् ही व्यजित होतो है। इसकी प्रेरणा प्रसाद जी ने स्पष्टत: सस्कृत के ध्वनिवादी आचार्यों से प्राप्त की है।[१]" द्विवेदी युग के पश्चात्कालीन कवियो द्वारा अभिधा शक्ति मे अधिक काम न लेने का कारण यह है कि इससे साक्षात् साकेतिक अथ का ही बोध होता है, अप्रत्यक्ष, सूक्ष्म और आभ्यतर अर्थो को व्यक्त करने की इसमे क्षमता नही होती, इस व्यापार मे तो लक्षण और व्यजना शक्तियाँ ही सक्षम है।

१ डा० नगेन्द्र—ध्वन्यालोक की भूमिका पृष्ठ—६७।

सर्वप्रथम हम आधुनिक अलंकृत उक्तियों में लक्षणा शक्तियो के विकास पर विचार करेगे। कभी-कभी साहित्याध्ययन मे किसी विशेष स्थल मे वाच्यार्थ की संगति नही बैठती। ऐसे समय मे वाच्यार्थ से सम्बन्धित अन्य अर्थ का ग्रहण किया जाता है। इस ढंग के अर्थ-ग्रहण मे या तो कोई लोक-व्यवहार (रूढि) कारण होता है या वक्ता की किसी बात को व्यजित करने की इच्छा (प्रयोजन)। इस प्रकार प्रतीत अर्थ किसी शब्द का लक्ष्यार्थ होता है। इस अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति लक्षणा कहलाती है और इसका शब्द लाक्षणिक। लक्षणा के लिये तीन तत्वों की आवश्यकता होती है, जिनके अभाव में लाक्षणिकता असम्भव है, वे तत्त्व है—वाच्यार्थ का बोध, वाच्यार्थ का योग और रूढि का प्रयोजन। इसी बात को मम्मटाचार्य ने इस प्रकार कहा है कि "वाच्यार्थ के बोध होने पर, लक्ष्यार्थ के उससे सम्बद्ध होने पर तथा रूढि या प्रयोजन के कारण जहाँ अन्य अर्थात् वाच्यार्थ से भिन्न अर्थ की प्रतीति हो, वहा आरोपित क्रियारूप लक्षण होती है।[१]" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि लक्ष्यार्थ शब्द का वास्तविक अर्थ न होकर आरोपित अर्थ है। लक्ष्यार्थ की उत्पत्ति के दो कारण हैं–रूढि और प्रयोजन। एतदर्थ इन्ही के अनुसार दो प्रकार की लक्षणा मानी गई है–रूढि और प्रयोजनवती लक्षणा। इसी प्रकार उपादान और उपलक्षण की दृष्टि से उसके दो भेद है—उपादान लक्षण और लक्षण लक्षणा। फिर प्रस्तुत–अप्रस्तुत के आरोप या अध्यवसाना के आधार पर सारोपा और साध्यवसाना ये दो लक्षणाएँ मानी गई हैं। सादृश्य और सादृश्येतर आधार पर खडी होने से उसके गौणी तथा शुद्धा दो और रूप हो जाते है। ये सब आपस मे मिलकर अनेक प्रकार की लक्षणाओ को उत्पन्न करते है, जैसे प्रयोजन के साथ सादृश्य उपदान और अध्यवसाना का योग होने पर प्रयोजनवती शुद्ध उपादन साध्यवसाना लक्षणा होती है। गूढ और अगूढ अर्थानुसार प्रयोजनवती लक्षणा के भी दो भेद हो जाते हैं। पदगत और वाक्यगत होने से रूढ़ि लक्षणा के कुल सोलह भेद और प्रयोजनवती के धर्म-भेद तथा धर्मि-भेद एवं पदगत और वाक्यपद होने से कुल चौसठ भेद हो जाते है। इस प्रकार कुल मिलाकर अस्सी लक्षणाएँ हो जाती हैं। लेकिन इन सबके सोदाहरण विवेचन के लिये यहाँ स्थान और अवकाश नहीं है, क्योंकि इस प्रकार का विस्तृत विवेचन एक पृथक् ग्रन्थ का विषय है। यहाँ तो हम केवल

---

१ मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथ प्रयोजनात् ।
अन्योऽर्थो लक्ष्यते यत्सा लक्षणारोपिताक्रिया ।। २९ ।।
—काव्यप्रकाश ।

इसी प्रकार— मुख्यार्थबाधे तदयुक्तो यथान्योर्थः प्रतीयते ।
रूढे. प्रयोजनद्वासौ लक्षणा शक्तिरर्पिता ।। २। ५ ।।
—साहित्यदर्पण ।

आधुनिक अलकृत उक्तियो मे उन्ही लक्षणों पर विचार करेंगे जो स्पष्ट और अधिक दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ—

१ बीती विभावरी जाग री !
अम्बर-पनघट मे डुबो रही तारा-घट ऊषा-नागरी।
—लहर : प्रसाद।

२ इस हृदय-कमल का घिरना अलि-अलको की उलझन मे।
आँसू-मरन्द का गिरना मिलना निश्वास-पवन में ॥
—आँसू : प्रसाद।

३ स्वर्ण-किरण-कल्लोलो पर बहता रे यह बालक मन।
—निराला।

४ अ— पलक-यवनिका के भीतर छिप हृदय-मञ्च पर आ छविमय।
ब— निश्चल जल के शुचि दर्पण।
स— सिक्ता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर।
—पल्लविनी : सुमित्रानन्दन पंत।

५ तेरा मुख सहास अरुणोदय, परछाईं रजनी विषादमय।
—यामा . महादेवी वर्मा।

६ नयन के निलय नील अश्रु उड्गन।
—शैवालिनी · हृदय नारायण पाण्डेय 'हृदयेश'

७ व्योम-सर मे हो उठा विकसित अरुण आलोक शतदल।
—चक्रवाल . दिनकर।

८ एक बस मेरे मन—विवर मे दुबकी कलौस को।
—बावरा अहेरी अज्ञेय।

इन उदाहरणो के अम्बर-पनघट, तारा-घट, ऊषा-नागरी, आँसू-मरन्द, हृदय-कमल, अलि-अलको, पलक-यवनिका, निश्चल जल के शुचि दर्पण, सिकता की सस्मित सीपी, अश्रु उड्गन, व्योम-सर, मन-विवर आदि पदो मे अभेद रूपक है। इन पदो मे प्रस्तुत-अप्रस्तुत का अभेद-भाव होते हुए भी उपमेय के बने रहने के कारण सारोपा लक्षण है। उपमेय का महत्व और सौदर्य-वृद्धि के प्रयोजन से ऐसा किया गया है। अत यह प्रयोजनवती और वाच्यार्थ के लक्ष्यार्थ का उपलक्षणमात्र होने से लक्षण-लक्षणा हुई। उपमेय-उपमान मे सादृश्य-सम्बन्ध होने के कारण यहाँ गौणी लक्षणा है। इस प्रकार यहाँ प्रयोजनवती गौणी सारोपा लक्षण लक्षणा है। इसी प्रकार एक और उदाहरण देखिये—

जब कामना सिन्धु तट आई ले सध्या का तारा-दीप।
फाड सुनहली साड़ी उसकी तू क्यो हँसती अरी प्रतीप ॥
—कामायनी।

इसमें 'संध्या का तारा-दीप' तथा 'सुनहली साडी उसकी' में साधर्म्यगत लाक्षणिकता है। प्रथम मे सध्या के साथ तारे का वही सम्बन्ध है जो प्रिय की कुशलकामना के लिये सागरतट पर पूजा-दीप को बहाने आती हुई नायिका से दीपक का। साथ ही उसी नायिका से सुनहली साड़ी का ठीक वही सबंध है, जैसे संध्या से उस अरुणिमा का। अत: यहाँ रूपक अलंकार तो है ही, साथ ही इस अलंकार के मूल मे कार्य करने वाली शब्द-शक्ति प्रयोजनवती गौणी सारोपा लक्षण-लक्षणा है। अब प्रयोजनवती शुद्धा सारोपा लक्षण-लक्षणा का उदाहरण देखिये—

भावुकता अंगूर लता से खीच कल्पना की हाला,
कवि बनकर है साकी आया भरकर कविता का प्याला
पाठकगण है पीनेवाले पुस्तक है मेरी मधुशाला ॥

---मधुशाला : बच्चन

इस उदाहरण के उपमेय-उपमान मे सादृश्येतर सम्बन्ध होने से शुद्धालक्षणा है। इसी प्रकार निराला जी की 'नव अपाग-शर-हत ब्याकुल उर' उक्ति में भी यही लक्षणा कार्य कर रही है।

साध्यवसाना लक्षण मे प्रस्तुत का अप्रस्तुत में अध्यवसान होने से ऐसा अभेदभाव उत्पन्न होता है कि प्रस्तुत आच्छादित हो जाता है अर्थात् प्रस्तुत शब्दतत: प्रकट नहीं होता अपितु अप्रस्तुत द्वारा ही उसका ज्ञान होता है। अधोलिखित छन्द मे साध्यवसाना गौणी लक्षणा का बड़ा भव्य प्रयोग हुआ है। इसमे 'पगली' शब्द रात्रि के लिये, 'अंचल' आकाश के लिये और 'मणिराजी' ताराओं के लिए प्रयुक्त हुआ है—

पगली हाँ सम्हाल ले कैसे,
छूट पड़ा तेरा अचल।
देख बिखरती है मणिराजी
अरी उठा बेसुध चंचल ॥

—कामायनी

उपर्युक्त उद्धरण में केवल अप्रस्तुतों द्वारा ही प्रस्तुत का संकेत किया गया है। प्रस्तुत का यह अध्यवसान गुण-साधर्म्य के कारण है। इस प्रकार रूपकातिशयोक्ति मे साध्यवसाना पाई जाती है। इस लक्षणा द्वारा चमत्कार की सृष्टि अधिक होती है। यह लक्षणा तो रूपकातिशयोक्ति का बीज है। इसका एक उदाहरण और देखिये—

बाँधा है विधु को किसने इन काली जंजीरों से,
मणिवाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?

विद्रुम सीपी सम्पुट मे मोती के दाने कैसे,
है हस न, शुक यह फिर चुगने को मुक्ता कैसे ?

—आँसू . प्रसाद

इन पक्तियो मे विधु, काली जजीरे, सीपी सम्पुट, मोती के दाने आदि उपमानो मे उपमेयो का अध्यवसान किया गया है जिससे उपमानो के वाच्यार्थ बाधित होने पर लक्ष्यार्थ उपमेयों का ज्ञान होता है। अत. यहाँ प्रयोजनवती गौणी साध्यवसाना लक्षण लक्षणा है। इसी प्रकार थोडे अन्तर से प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षण-लक्षणा होती है। इसका उदाहरण निम्नाकित है—

झझा झकोर गर्जन है या, बिजली थी नीरदमाला।
पाकर इस शून्य हृदय को किसने आ डेरा डाला ॥

—आँसू : प्रसाद

उक्त उदाहरण मे उपमान मे उपमेय का अध्यवसान होने तथा मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ मे सादृश्येतर सम्बन्ध होने से शुद्धा साध्यावसाना लक्षणा है। अप्रस्तुत योजना के साभिप्राय होने और मुख्यार्थ का लक्ष्यार्थ के उपलक्षणमात्र होने से यह प्रयोजनवती लक्षणलक्षणा भी है।

यूरोपीय काव्यशास्त्र के प्राय सभी (साधर्म्यगत) अलकार साधर्म्यगत लाक्षणिकता के अन्तर्गत आते है।[1] उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति आदि सभी अलकार जो साधर्म्य को लेकर चलते है, इसी कोटि मे आते हैं। उपमा (Simile) के विषय मे अरस्तू का कहना है कि उपमा लाक्षणिक प्रयोग ही है, क्योकि उपमा मे रूपक के समान दो प्रकार के वाचक पाये जाते है।[2] अतिशयोक्ति (Hyperbole) भी इसी साधर्म्यगत लाक्षिणिकता की कोटि मे आती है।[3] यही नही मानवीकरण (Personification) मे इसी साधर्म्यगततत्त्व का विशेष हाथ होता है। अरस्तू

---

१. अँग्रेजी मे लक्षणा या लाक्षणिकता के लिये 'मेटाफर' (Metaphor) शब्द प्रयुक्त होता है। यह ग्रीक शब्द 'मेताफोरोइ' (Mataphoroi) का ही परिवर्तित रूप है।

2. Similies also, are in some way approved metaphors, for they. always are expressed in two terms like the analogical metaphor
—Rhetoric, Book iii chap. xi.

3. Again, hyperboles, which are recoginsed as metaphors, as that about a person with a black eye, "you would have thought him a basket of mulberries.'
—Rhetoric, Book iii chap xi.

ने कहा है कि "अचेतन मे चेतन का आरोप इसी कोटि के अन्तर्गत है। होमर ने अनेक स्थानों पर लाक्षणिक प्रयोगो के द्वारा अचेतन वस्तुओं को चेतन के रूप मे चित्रित किया है।" अरस्तू की दृष्टि से लाक्षणिकता के लिए चार अत्यंतावश्यक गुण है—(१) लाक्षणिक प्रयोग सर्वथा उपयुक्त हो। (२) यदि किसी का उत्कर्ष सूचित करना हो, तो उसका ग्रहण उन्नत मूल से किया जाना चाहिए और यदि अपकर्ष का बोध कराना हो तो निम्न मूल से। (३) ध्वनि-माधुर्य का भी ध्यान परमावश्यक है। (४) लाक्षणिक प्रयोग दूरारूढ न हों।[१] इन चारो प्रकारो मे अरस्तू ने साधर्म्यगत को ही सर्वसुन्दर और चमत्कारपूर्ण बतलाया है। उसने कहा है कि "चार प्रकार के लाक्षणिक प्रयोगों में वह प्रकार-भेद उच्चतम कोटि का है जिसका आधार समानुपात (साधर्म्य) है। जैसे पेरेक्लीज ने कहा था कि जिस प्रकार वर्ष से बसंत छीन लिया गया हो, उसी प्रकार युद्ध मे मारे हुए नवयुवक नगर से विलीन हो गये।"[२] अरस्तू के मतानुसार अधोलिखित उद्धरण लाक्षणिकता का सर्वोत्तम प्रयोग होगा—

उषा सुनहले तीर बरसती,
जयलक्ष्मी–सी उदित हुई।
उधर पराजित कालरात्रि भी,
जल मे अन्तर्निहित हुई॥
वह विवर्णमुख त्रस्त प्रकृति का,
आज लगा हँसने फिर से।
वर्षा बीती हुई सृष्टि मे,
शरद–विकास नये सिर से॥

—कामायनी

उपर्युक्त सम्पूर्ण पद्य मे भारतीय अलकारशास्त्र की दृष्टि से समासोक्ति

---

1. The four essentials of metaphor—(1) Must be appropriate, (2) From a better class if to embelish, from a lower if to debase, (3) The emphony must be attended to, (4) Must not be far-fetched.

—Rhetoric, Book III, Chap. II.

(2) But of metaphor, which is fourfold that species is in the highest degree approved which is constructed on similar ratios; Just as Pericles said, "that the youth which had perished in the war, had so vanished from the city, as if one were to take the spring from the year."

—Rhetoric, Book II, Chap. X.

अलंकार है और यूरोपीय अलंकार शास्त्रानुसार मानवीकरण अलंकार है। जिस प्रकार कोई राजा अपने शत्रु को पराजित कर देता है और उस विजयी राजा की जयलक्ष्मी बाणो की वृष्टि करती हुई पराजित राजा को नष्ट कर देती है; वैसे ही प्रलय-निशा को विनष्ट करती हुई उषा अपनी स्वर्णिम किरणे बरसाती हुई प्रकट हुई। पराजित राजा अपनी रक्षार्थ कही जाकर छिप जाता है, उसी प्रकार काल-रात्रि भी समुद्र के जल मे छिप गई। जब दुर्जन राजा की पराजय हो जाती है और सज्जन राजा विजयी होता है, तो वह प्रकृति (मत्री, प्रजा आदि) जो दुर्जन राजा के अत्याचार से म्लानमुख थी, फिर प्रसन्न हो जाती है, ठीक इसी प्रकार प्रलय-निशा मे ध्वस्त प्रकृति अब उल्लासमय हो गई। शोक का अत हुआ तथा उल्लास का सचार हो गया। ससार मे वर्षा का अन्त हो गया, नये सिरे से शरदागमन हुआ। यहाँ 'वर्षा' शोक तथा मलिनता की द्योतक है, 'शरद विकास' उल्लास तथा निर्मलता का। यहाँ विजयी राजा से पराजित राजा, बाण तथा मत्रियो का ठीक वही सबध है, जो उषा से रात्रि, किरणे तथा प्रकृति का। इसी प्रकार उषा से रात्रि का वही सम्बन्ध है, जो शरत् से वर्षा का। ये समस्त प्रयोग मनु के मन से चिन्ता के मालिन्य नष्ट होने तथा वहाँ आशोल्लास के संचार होने की व्यंजना करते है।

विशेषण-विपर्यय (Transferred Epithet) आदि पाश्चात्य अलंकारो द्वारा आधुनिक हिन्दी-कविता मे नये-नये लाक्षणिक प्रयोग किये जा रहे है। ऐसे स्थलो मे प्राय साध्यवसाना लक्षणा कार्य करती है। सर्वप्रथम हम विशेषण-विपर्यय का ही उदाहरण लेते है। कभी-कभी किसी कथन को विशेष अर्थ-गर्भित करने के लिये विशेषण का विपर्यय कर दिया जाता है। अभिधाशक्ति से विशेषण का जो स्थान है, वहाँ से हटाकर लक्षणा द्वारा उसे अन्य स्थान पर प्रतिष्ठित कर देने से काव्य-सौंदर्य कभी-कभी द्विगुणित हो उठता है। काव्य मे इस प्रकार के प्रयोग का नाम आग्ल-अलकार शास्त्र मे विशेषण विपर्यय है। यथा—

थके हुए दिन के निराश भरे जीवन की। —लहर प्रसाद।
तब शिथिल सुरभि से धरणी मे।

बिछलन न हुई थी सच कहना॥ —कामायनी : प्रसाद

बता कहां अब वह वंशीवट,
कहा गये नटनागर श्याम।
चल चरणो का व्याकुल पनघट,
कहाँ आज वह वृन्दाधाम॥

— —परिमल : निराला।

किस विनोद की तृषित गोद में,
आज पोंछती वे दृग—नीर।

कहाँ छलकते अब वैसे ही,
ब्रज-नागरियो के गागर ॥
—परिमल निराला

सुरीले ढीले अधरो बीच,
अधूरा उसका लचका गान।
—पल्लव पंत।

बच्चो के तुतले भय सी। —पल्लव . पंत।
वदना के ही सुरीले हाथ से। —ग्रन्थि : पंत।

इन उदाहरणों मे थका, शिथिल, व्याकुल, तृषित, सुरीले ढीले, लचक, तुतले और सुरीले विशेषण क्रमश दिन, सुरभि, पनघट, गोद, अधरों, भय और हाथ के लिये प्रयुक्त हुये है, जब कि ये अन्य वस्तुओं के विशेषण के रूप मे प्रयुक्त होते है। विशेषण-विपर्यय के कारण शब्द के अर्थ मे विशिष्ट चमत्कार आगया है। इस प्रकार के प्रयोगो से काव्य-सौदर्य और मार्मिकता मे वृद्धि होती है। इसी तरह करुण-भौहे, तरल आकाक्षा, भीगीतान, गीलागान आदि मे विशेपण-विपर्यय अलकार है। इसके मूल में साध्यवसाना लक्षरा का ही चमत्कार है।

पाश्चात्य अलंकारशास्त्र मे एक उपलक्ष (Synecdoche) अलंकार होता है जिसमे अश के लिये पूर्ण तथा पूर्ण के लिए अश का प्रयोग होता है। जैसे—

(१) है कुपथ पर पाँव मेरे आज दुनिया की नजर मे। —सोपान बच्चन।
(२) जिसे चूम हँसती है दुनियाँ उसे देख मै रोती हू। चक्रवाल : दिनकर।

(३) हाथ जो
चट्टान को
तोड़े नही
वह टूट जाये।
—युग की गंगा : केदारनाथ अग्रवाल

प्रथम दो उदाहरणों मे 'दुनिया की नजर' और 'दुनिया हँसती है' ऐसा बोलने की रूढि है। आधाराधेय भाव-सबध द्वारा लक्षण से 'दुनियाँ का' अर्थ होता है दुनियाँ में रहने वाले। इस तरह इसकी अर्थ-बाधा मिट जाती है। इसी प्रकार तृतीय उदाहरण में हाथ चट्टान तोडने वाले व्यक्ति के लिये प्रयुक्त हुआ है। व्यक्ति के लिये हाथ का प्रयोग है। अत: इन तीनो उदाहरणो मे रूढि लक्षणा है। रूढि लक्षणा में रूढ़ि के कारण मुख्यार्थ को छोडकर उससे सबध रखने वाला अन्य अर्थ ग्रहण किया जाता है। जैसे 'पजाब लड़ाका है।' पजाब अर्थात् पंजाब प्रान्त लडाका नही हो सकता इसमें मुख्यार्थ की बाधा है। इसमे इसका लक्ष्यार्थ पंजाब प्रदेशवासी होता है; क्योकि पंजाब से उसके निवासी का आधाराधेय-भाव-

सम्बन्ध है। यहाँ पंजाबियो के लिये पंजाब कहना रूढ़ि है। इसी प्रकार दुनियाँवालों के लिये दुनियाँ और व्यक्ति के लिये हाथ कहना रूढि है।

ऑंग्ल-साहित्यशास्त्र मे उपलक्ष (सिनेकडाकी) अलंकार से मिलता-जुलता एक अन्य अलकार Metonymy (अर्थ के लिये धर्मो का प्रयोग) है जो लक्षणाश्रित है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे इस प्रकार बहुत से प्रयोग प्राप्त होते है। इनमे धर्म के स्थान पर धर्मी के प्रयोग से लाक्षणिक प्रयोग के चमत्कार के कारण काव्य-सौदर्य बढ जाता है। ऐसे प्रयोगों मे एक बात का ध्यान परमावश्यक है कि जिस धर्म या गुण के लिये जिस वस्तु का उल्लेख किया जाय, वह उसी धर्म व गुण के लिये प्रसिद्ध हो। ऐसा न होने से न तो गुण-धर्म की विशिष्टता ही व्यक्त होगी और न काव्य ही चमत्कृत होगा। इस प्रयोग मे जितनी ही मार्मिकता से काम लिया जायेगा उतना ही उसका सफल प्रयोग समझा जायेगा। यथा—

उषा का था उर मे आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास।
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस॥
—पल्लव : पत।

उपर्युक्त उदाहरण का प्रथमचरण हृदय में हर्षातिरेक के लिये, द्वितीय सुदर स्मित के लिये, तृतीय स्वभाव की निश्छलता के लिये और चतुर्थ विचारों की सरलता के लिये प्रयुक्त हुआ है। इनमे गुण या धर्म का उल्लेख न करके वस्तुओं का ही उल्लेख कर दिया गया है जो अपनी लाक्षणिकता से पूर्ण अर्थ बोध-कराते है। इस प्रकार के प्रयोगों के लिये थोड़ा कल्पना से काम लेना पड़ता है, किन्तु दुरूहता का सामना नही करना पड़ता।

कहीं-कही पर अवश्य आधुनिक हिन्दी-कविता की लाक्षणिकता मे दुरूहता आ गई है। जैसे प्रसाद जी की 'अभिलाषाओं की करवट फिर सुप्त व्यथा का जगना' मे सुप्त व्यथाओं के जगने के समान अभिलाषाओं के जगने तक तो हम लक्ष्यार्थ को बोधगम्य बना सकते है और गुप्त जी की पक्ति 'कैसी हिलती-डुलती है, कली तुम्हें खिलने की' मे लक्ष्यार्थ से अभिलाषा के उठने तक का अभिप्राय समझा जा सकता है, किन्तु 'अभिलाषा का करवट बदलना' तो अत्यन्त दुरूह है। यह तो एक प्रकार की लक्षणा पर लक्षणा है, क्योकि जगना तो एक लक्षणा है ही और दूसरी लक्षणा है करवट बदलना जो जगने का पूर्वलक्षण है। इस पर प्रकार की जटिल लक्षणाओं से कविता दुर्बोध हो जाती है। कभी-कभी इस प्रकार के लाक्षणिक प्रयोग असम्बद्ध प्रलाप प्रतीत होते है। आधुनिक हिन्दी-कविता की लाक्षणिकता पर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि "खडी बोली की कविता मे उपमा, रूपक आदि के ढाँचे तो रहते थे; पर लाक्षणिक मूर्तिमत्ता और भाषा की

विमुक्त स्वच्छन्द गति नहीं दिखायी पड़ती थी। अभिव्यंजनावाद के कारण योरोप के काव्यक्षेत्र की उत्पन्न वक्रोक्ति या वैचित्र्य की प्रवृत्ति, जो हिन्दी के वर्तमान काव्यक्षेत्र में आयी उससे खड़ी बोली की कविता की व्यंजना-प्रणाली मे बहुत कुछ सजीवता तथा स्वच्छन्दता आयी। लक्षणाओ के अधिक प्रचार से काव्य-भाषा की व्यंजकता अवश्य बढ रही है।"

काव्य मे मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ से इतर एक प्रमुख अर्थ को प्रकट करने वाली व्यापार व्यंजना-शक्ति है। कविराज विश्वनाथ ने कहा है कि अपना-अपना अर्थ-बोधन करके अभिधादिक वृत्तियों के शांत होने पर जिससे अन्य अर्थ का बोधन होता है, वह शब्द मे तथा आर्थादिक मे रहने वाली वृत्ति (शक्ति) व्यंजना कहलाती है।[1] मम्मटाचार्य ने व्यंजना की कोई निश्चित परिभाषा नही प्रस्तुत की है। वे व्यंजना के अभिधामूला तथा लक्षणामूला इन दो भेदों को अलग-अलग लेकर उनका स्वरूप निबद्ध किया है। अभिधामूला के विषय में आचार्य मम्मट का कहना है कि जहाँ संयोगादि अर्थ नियामकों के द्वारा शब्द की अभिधाशक्ति एक स्थल मे नियन्त्रित हो जाती है, पर फिर भी किसी मुख्यार्थ की प्रतीति हो ही जाती है, वहाँ अभिधामूला व्यंजना होती है।[3] लक्षणा के प्रयोजन के विषय में बतलाया है कि इस प्रयोजन की प्रतीति कराने मे व्यंजना-व्यापार ही साधन होता है। जिस प्रयोजन या फल की प्रतीति के लिये प्रयोजनवती लक्षणा का प्रयोग किया जाता है, वहाँ व्यंजना से भिन्न और कोई शक्ति नही है, क्योकि फल (प्रयोजन) की प्रतीति लक्ष्यार्थ के लिये प्रयुक्त शब्द से ही होती है[2]। इस प्रकार इन दोनो से व्यंजना का एक निश्चित रूप स्पष्ट हो जाता है। इनमे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना के पन्द्रह, लक्षणामूला के बत्तीस और आर्थीव्यंजना के तीस भेद माने गये है।

व्यंजना ध्वनि का प्राण है। ध्वनिवादी रस-अलंकार आदि को भी ध्वनि के अन्तर्गत ही मानते हैं। अत. वस्तु, अलकार और रस तीनो मे ध्वनि होती है।

---

१ विरतास्वमिधाद्यासु मयार्थो बोध्यते पर: ।
सा वृत्तिर्व्यञ्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्यच ॥२।१२॥
—साहित्यदर्पण।

२ ... यत्र व्यापारो व्यञ्जनात्मक. ।
यस्य प्रतीतिमाधातु लक्षणा समुपास्यते ।
फल शब्दैक गम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापराक्रिया ॥२।
—काव्यप्रकाश।

३ अनेकार्थस्यशब्दस्य वाचकत्वे नियन्त्रिते ।
संयोगाद्यैरवाच्यार्थधीकृद् व्यापृतिरञ्जनम् ॥२।
—काव्यप्रकाश।

उनके अनुसार तीन भेद होते हैं—१. वस्तु-ध्वनि, २. अलंकार-ध्वनि, ३. रसादि-ध्वनि। इनमे से वस्तु-ध्वनि और अलकार-ध्वनि शब्द-शक्ति से उद्भूत ध्वनि हैं। रसादि-ध्वनि कभी शब्द या अर्थ की शक्ति से नही उत्पन्न होती, क्योंकि रस, भाव, रसाभास, भावाभास आदि स्वयं किसी भी शब्द या अर्थ से वाच्य नही होते, वे तो विभावादिको से व्यक्त होते है। अत रसादि ध्वनि सभी रसात्मक काव्य में अनिवार्यत. प्राप्त होती है। वस्तु-ध्वनि में अलंकार-रहित वस्तुध्वनित होती है और अलकार ध्वनि वहाँ होती है जहा अलकार शब्द या अर्थ मे वाच्य नही प्रत्युत् व्यंग्य होते है अर्थात् वे वस्तु से ध्वनित होते है। वस्तु या अलकार से जब व्यग्यार्थ अधिक चमत्कारपूर्ण होता है, तभी अलकार-ध्वनि उत्पन्न होती है। उदाहरणार्थ—

नीरव थी प्राणो की पुकार,
मूर्छित जीवन सर निस्तरग नीहार घिर रहा था अपार।
नि.स्तब्ध अलस बनकर सोयी चलती न रही चचल बयार।।
पीता मन मुकुलित कञ्ज आप अपनी मधु बूंदे मधुर मौन।
निस्वन दिगन्त मे रहे रुद्ध सहसा बोले मनु अरे कौन।।
—कामायनी।

यहाँ इडा को देखकर मनु की निस्तब्धता का वर्णन व्यंग्य द्वारा ही हुआ है। इस वर्णन मे व्यग्य द्वारा रूपक अलकार की ध्वनि है। मनु के हृदयरूपी कमल के भीतर उनका मनरूपी मधुकर मकरन्द-रूपी भावनाओ का आनन्द ले रहा है। अलंकार-व्यजना का इसी प्रकार का एक उदाहरण और देखिए—

अति मधुर गंधवह बहता,
परिमल बूंदों से सिंचित।
सुख स्पर्श कमल केशर का,
कर आया रज से रजित।।
जैसे असख्य मुकुलों का,
मादन विकास कर आया।
उनके अछूत अधरो का,
कितना चुम्बन भरलाया।।
—कामायनी।

यहाँ 'जैसे असंख्य मुकुलों का मादन विकास कर आया' इसमे उत्प्रेक्षा अलकार वाच्यरूप मे कहा गया है। यही उत्प्रेक्षालकार पवन के ऊपर कामी नायक के व्यवहार के आरोप की व्यंजना कराता है। अत: यहाँ समासोक्ति अलंकार व्यग्य है। इसी प्रकार अधोलिखित पद्य मे शब्द शक्ति मूलाव्यजना के द्वारा प्रस्तुत 'डाल' के साथ ही अप्रस्तुत 'पार्वती' की व्यजना तथा उनका उपमानोपमेय भाव व्यक्त हो रहा है—

देख खड़ी करती तप अपलक,
हीरक-सी समीर-माला जप,
शैल-सुता अर्पण-अशना,
पल्लव वसना बनेगी,
वसन बासती लेगी,
रूख री यह डाल, वसन बासंती लेगी ।।
—गीतिका : निराला ।

अत्यन्त तिरस्कृत अविवक्षित ध्वनि में मुख्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार हो जाता है । इसके मूल मे लक्षणलक्षणा होती है । जैसे—

बाँधा है विधु को किसने इन काली जंजीरों से ?
मणि वाले फणियों का मुख क्यों भरा हुआ हीरों से ?
—आँसू : प्रसाद ।

उपर्युक्त उद्धरण मे विधु का अर्थ मुख और जंजीरों का लटें है । इन शब्दो का मुख्यार्थ सर्वथा तिरस्कृत है, यहाँ गुण या लक्षण-साम्य के कारण अन्य अर्थ ध्वनित होता है । अत: यहाँ पदगत अत्यन्त तिरस्कृत अविवक्षित काव्यध्वनि के साथ ही रूपातिशयोक्ति अलकार भी है ।

जहाँ ऐसे शब्दो का प्रयोग हो कि उस स्थान पर उनके अतिरिक्त अन्य पर्यायवाची शब्दो से व्यंग्यार्थ का बोधन हो वहाँ शब्दशक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यग्य ध्वनि होती है । यथा—

क्या कहती हो ठहरो नारी,
संकल्प—अश्रु जल से अपने ।
तुम दान कर चुकी पहले ही,
जीवन के सोने से सपने ।।
नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रजत—नग—पग तरु में ।
पीयूस—स्रोत सी बहा करो,
जीवन के सुदर समतल मे ।।
—कामायनी ।

इसमे नारी, सकल्प, दान आदि शब्दों से व्यग्यार्थ ध्वनित होता है; उनके पर्यायवाची शब्द स्त्री, विश्वास, देने आदि से ध्वनि नही निकल सकती; क्योकि दान मे सकल्प करने के समान ही नर की सहधर्मिणी नारी का आत्मसमर्पण-कार्य होता है । पर्यायवाची शब्दो से यह अर्थ—चमत्कार नही उत्पन्न हो सकता था । इसी उदाहरण मे रूपक और उपमा व्यग्य है जो नारी के आत्मोत्सर्ग, विश्वास, जीवन-दायिनी शक्ति आदि गुणों के महत्व को ध्वनित करते है । लज्जा कामायनी से कह

रही है कि तुमने पुरुष के सम्मुख द्रवित होकर आत्मोत्सर्ग तो पहले ही कर दिया है, अब उसके जीवन को सुख-शांति और आनन्द से पूर्ण बनाओ, यही तुम्हारे जीवन की सार्थकता है ।

जहाँ वाच्यार्थ का बोध हो जाने पर किसी पद की शक्ति द्वारा अलकार का व्यग्यार्थरूप मे बोध होता हो, वहाँ पदगत शब्दशक्तिमूलक सलक्ष्यक्रम अलकार ध्वनि होती है । यथा—

चढ़ मृत्यु–तरणि पर तूर्ण चरण
कह पित: पूर्ण आलोक वरण
करती हूँ मै, यह नही मरण
'सरोज' का ज्योति. शरण–तरण ।
—निराला ।

सरोज नामक लडकी क्षिप्र चरणो से मृत्यु की तरणि पर चढकर यह कहती हुई अपने जीवन का अवसान करती है कि—हे ! पिता, मेरा यह मरण नही है; अपितु पूर्ण प्रकाश का वरण है । यह 'सरोज का ज्योति (प्रकाशपूर्ण ब्रह्म) की शरणागत होना है—यह तो मेरा तरण है, मरण नही । प्रस्तुत उद्धरण मे 'सरोज' शब्द द्वारा यह व्यंग्यार्थ–बोध होता है कि सूर्य की किरणो से जीनेवाला सरोज (कमल) उस जीवन-दायिनी महाकिरणो मे मिल जाय तो उसका यह मरण नही समझना चाहिये । उसी प्रकार परब्रह्म से उत्पन्न यह जीवात्मा उसी परम प्रकाशपूर्ण अपने ब्रह्म मे विलीन हो गयी है । यहाँ व्यग्यार्थ अपने वाच्यार्थ द्वारा दृष्टात अलकार के रूप मे व्यक्त हो रहा है । इस दृष्टात अलकार का सूचक शब्द सरोज है । इस प्रकार उक्त उदाहरण मे शब्द–शक्तिमूलक सलक्ष्यक्रम दृष्टान्तालकार ध्वनि है ।

जहाँ किसी शब्द के पर्यायवाची रख देने पर भी अर्थ के कारण व्यग्य होता है, वहाँ अर्थशक्त्युद्भव सलक्ष्यक्रम व्यंग्य ध्वनि होती है । इसके तीन भेद होते है–स्वत·सम्भवी, कवि प्रौढोक्तिमात्रसिद्धि और कविनिबद्ध पात्रप्रौढोक्तिमात्रसिद्धि । इन तीनों भेदों मे कही वाच्यार्थ और व्यग्यार्थ, दोनों ही वस्तुरूप या अलंकार रूप मे होते है और कही दोनों मे एक वस्तुरूप मे होता है । इसलिये प्रत्येक के–वस्तुरूप से ध्वनि, वस्तु से अलाकार–ध्वनि, अलकार से वस्तुध्वनि और अलंकार से अलाकार–ध्वनि–चार–चार भेद होते है तथा चारो प्रबन्धगत, वाक्यगत और पदगत के भेद से बारह–बारह हो जाते है । अधोलिखित अश मे प्रबन्धगत स्वत: सम्भवी अर्थशक्तिमूलक वस्तु अलकार–ध्वनि देखिये—

रहिये–रहिये उचित नही उत्थान यह
देते है श्रीमान् किसे बहुमान यह !
मै अनुगत हूँ, भूल पडे कहिये कहाँ ?
अपना मृगयावास समझ रहिये यहाँ ।
कुशलमूल इस मधुर हास पर भूल सब,

वारूँ मैं निज नील-विपिन के फूल सब।
सहसा ऐसे अतिथि मिलेंगे कब किसे,
क्यों न कहूँ तो अहोभाग्य अपना इसे।
पाकर यह आनन्द-सम्मिलन-लीनता,
भूल रही है आज मुझे निज हीनता॥

—साकेत : मैथिलीशरण गुप्त।

भगवान राम का बन में आगमन सुनकर भक्तनिषाद उनके सम्मान मे बहुत से उपहार लेकर मिलने आया। उसको आता हुआ देखकर भगवान राम ने स्वय उठकर उसका सत्कार किया। इस पर निषाद कहता है कि भगवान आपका मेरे लिये उठना उचित नही है। आप यह बहुमान किसे प्रदान कर रहे है। आपके दर्शन प्राप्त कर मै धन्य हो गया हूँ। आपके आगमन से जो परमानन्दोपलब्धि हुई है, उसमे मै अपनी हीनता को आज भूल गया हूँ। यह स्वत सम्भवी वस्तुरूप वाच्यार्थ है। इस वस्तुरूप वाच्यार्थ से यहाँ विषमालंकार व्यग्य है। कहाँ मर्यादपुरुषोत्तम राम की महानता और कहाँ निषाद की तुच्छता। संपूर्ण प्रबन्ध से निषाद का यही भाव प्रकट हो रहा है कि दोनो का सम्मेलन सर्वथा विषम है। अत: यहाँ प्रबन्धगत स्वत.सम्भवी अर्थशक्तिमूलक वस्तु से विषमालकार-ध्वनि है, यद्यपि कही भी शब्द या वाक्य से विषमालकार व्यक्त नही है। इसी प्रकार निम्नाकित उद्धरण मे प्रबन्धगत स्वत.सम्भवी अर्थशक्तिमूलक अलकार से वस्तुव्यंग्य है—

बोली वह—'किंतु क्या यही है धर्म ?
पीड़ियो का पीड़न यही है कर्म ?
राक्षसों के गेह रही बद्ध श्री जनकजा,
तो भी नही राम ने उसे तजा'
उत्तर मिला—'आदि शक्ति' जानकी थी आप,
कैसे उन्हे छूता पाप ?
आग मे आँच उन्हे नेक नही आई थी;

वन्हि ने विशुद्धता बताई थी।'
सहसा सुभद्रा के प्रदीप्त नेत्र जल के
हो गए प्रपूरित अनल से!
सजला घटा मे उठी विद्युदग्नि एक संग,
करके तिमिर भंग!
देख सके किन्तु न वे स्पष्ट उस अग्नि ओर,
दोषी चोर—

तुल्य निज नेत्र नत करके !
बोली यह वाणी मे ज्वलंत रोष भरके—
अच्छी बात ! वैसी ही परीक्षा अभी दूंगी मै,
पीछे नही हूँगी मै—
मुझ पर जैसा क्रूर तुमने प्रहार किया,
नारकियों ने भी नही वैसा घोर प्रहार किया !
—अग्नि-परीक्षा : सियारामशरण गुप्त ।

इसमे दृष्टान्तालकार है । इससे सुभद्रा का सतीत्व, सहिष्णुता और दीप्ति आदि गुण ध्वनित है जो स्वत.सम्भवी एवं वस्तुरूप है ।

झर पड़ता जीवन-डाली से,
मैं पतझड़ का-सा जीर्ण प्रात ।
केवल-केवल जग—आँगन मे,
लाने फिर से मधु का प्रभात ।।
—उत्तरा : पंत ।

इसमें उपमा और रूपक की संसृष्टि द्वारा—मरण नवजीवन जाता है, क्योकि पुनर्जन्म होता है—यह वस्तुरूप व्यंग्य वाक्य से निकलता है । अत यहाँ वाक्यगत स्वत.सम्भवी अर्थशक्तिमूलक अलकार से वस्तुव्यंग्य है । इसी प्रकार—

प्रिय तुम भूले मै क्या गाऊँ !
जुही सुरभि की एक लहर से निशा बह गयी, डूबे तारे ।
अश्रु-विन्दु मे डूब-डूब कर दृग-तारे ये कभी न हारे ।।
—आधुनिक कवि : डा० रामकुमार वर्मा

इसमें व्यतिरेक अलकार है; क्योंकि उपमानभूत आकाश के तारों से दृग के उपमेयभूत तारो में विशेषगुण का कथन है । इस अलकार से यहाँ आराधक की वियोग-दशा तथा प्रेम का अतिरेकरूप वस्तु ध्वनित होती है । यह अलंकार-उद्भूत वस्तु-ध्वनन किसी एक पद द्वारा नही, अपितु सम्पूर्ण वाक्य द्वारा होता है । साथ ही आँसुओ मे निरन्तर डूबते रहना और कभी हारना नही यह स्वाभाविक और लौकिक है । इसी तरह यहाँ वस्तु ध्वनन अर्थ-शक्ति से ही होता है, शब्द-शक्ति से नही । अत: यहाँ भी वाक्यगत अलकार से वस्तुव्यग्य है । इसी प्रकार पदगत अलंकार से वस्तु-ध्वनि का प्रयोग देखिये—

"किस तापस की तपती हो तुम कन्या ?
मदन भस्म से रचित कौन हो धन्या ?
होम-शिखा-सम उजली कौन अनन्या ?"
—इलाचन्द्र जोशी ।

यह पद्य वाणभट्ट रचित पद्य-काव्य 'कादम्बरी' की एक नायिका 'महाश्वेता' शीर्षक कविता का है। यहाँ होमशिखासम पदगत जो 'महाश्वेता' की उपमा है, उससे अग्नि-परितप्त-विशुद्धता, तेजोमयता, पवित्रता आदि वस्तुरूप व्यंग्य है।" अत: यह पदगत अलंकार से वस्तुध्वनि का उदाहरण है।

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव मे लीन,
वह क्रूर-काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।

—परिमल : निराला।

प्रस्तुत पद्य में अनेक उपमाएँ है। सभी एक पदगत या अनेक पदगत हैं। प्रत्येक पदगत उपमा से पृथक-पृथक भारतीय विधवा की तेजस्विता, पवित्रता, दयनीयदशा रूप वस्तु की ध्वनि होती है। अत: इसमे कविप्रौढोक्तिसिद्ध अलकार से वस्तुध्वनि है। इसी प्रकार निम्नांकित कविता मे प्रबन्धगत कविप्रौढोक्तिमात्रसिद्ध अलकार से वस्तुव्यंग्य दर्शनीय है—

सँसृति के विशाल मण्डप मे यह भीषण विराट आयोजन,
समाधि वने है, आज राष्ट्र ये हिसा का जल रहा हुताशन !
वसुन्धरा की महावेदिका धधक उठी है हवनकुड बन !
पहन प्रौढ दुर्भेद्य लौह के वसन रक्तरजित दानवगण !
मानव के शोणित का घृत ले नरमुण्डों के ले अक्षतकण !
विध्वंसों पर अट्टहास भर-भर कर-कर स्वाहा उच्चारण !
होम कर रहे लक्षकरों में लिये श्रुवा शस्त्रो के भीषण !
करता है साम्राज्यवाद का विजयघोष अम्बर मे गर्जन !
तुमुल नादकारी विस्फोटक करते साम मन्त्र का गायन !
अग्नेयों का धूम पुञ्ज कर रहा निरन्तर गगन-विकम्पन !
अवभृथ इन्हे कराने आये क्यो न प्रलय हो सिन्धु लहरबन !

—राजसूययज्ञ : जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द'

इस प्रबन्ध के साङ्गरूपक अलकार से विश्वव्यापी महायुद्ध की भयकरता और योद्धाओं की तन्मयता वस्तु व्यग्य है।

---

१. पं० रामदहिन मिश्र : काव्यालोक, पृ० २९७।

हँस देता जब प्रात सुनहरे अञ्चल मे बिखरा रोली,
लहरो की बिछलन पर जब मचली पड़ती किरणें भोली।
तब कलियाँ चुपचाप उठाकर पल्लव के घूँघट सुकुमार,
छलकी पलको से कहती है—कितना मादक है संसार ॥
—यामा : महादेवी वर्मा।

इसमे प्रात:काल में कलियों का अपने कोमल घूँघट उठाकर खुली पलकों से ससार की मादकता आदि देखना कविनिबद्धपात्रप्रौढोक्तिमात्र और वस्तुरूप वाच्य है; क्योकि जब कलियाँ प्रभात को हँसते और सुनहरे अञ्चल मे रोली बिखराते हुए भोली किरणो को लहरो पर मचलती देखती है तो अपनी शालीनता को त्याग कर तुरन्त कह उठती है कि ससार कितना मादक है ? इसमे कोई अलकार नही वस्तु-कथन है, लेकिन वाच्यार्थ से काव्यलिंग अलंकार ध्वनित होता है, क्योंकि स्पष्ट-रूपेण प्रभात का हँसकर रोली बिखराना और किरणों का मचलन ससार की माद-कता का ज्ञापन नहीं करता। अत: यहाँ वाक्यगत कविनिबद्धप्रौढोक्तिसिद्धवस्तु से अलकार व्यग्य है। इसी प्रकार यशोधरा कहती है कि—

उनकी यह कुज-कुटीर वही झड़ता उड़ अशु-अबीर जहाँ,
अलि,कोकिल,कीर,शिखी सब है सुन चातक की रट पीय कहाँ।
अब भी सब साज-समाज वही, तब भी सब आज अनाथ यहाँ
सखि ! जा पहुँचे सुध-सग कही यह अध सुगध समीर वहाँ ॥
यशोधरा : मैथिलीशरण गुप्त।

यद्यपि सब साज-समाज वही है, तथापि आज सब अनाथ हैं। यहाँ बिना शब्द के न रहने पर भी वस्तु से (स्वामी के बिना) विनोक्ति अलंकार-ध्वनि है।

अब कठोर हो वज्रादपि ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी ॥
—यशोधरा : मैथिलीशरण गुप्त।

इसमे 'कुसुमादपि सुकुमारी' और 'वज्रादपि कठोर' दोनो प्रौढ उक्तियाँ कवि-निबद्ध-पात्र यशोधरा की है। उक्ति दोनों ही वस्तुरूप है। प्रौढोक्ति इसलिये है कि फूल से भी सुकुमार और वज्र से भी कठोर होना असम्भव है। अत. यहाँ पदगत कवि-निबद्ध-पात्र प्रौढोक्तिमात्र सिद्ध वस्तु से अतिशयोक्ति अलकार व्यग्य है। अब पदगत कवि-निवद्धपात्र-प्रौढ़ोक्तिमात्र सिद्ध अलकार से वस्तुध्वनि देखिये—

जीवन-निशीथ का अंधकार
भग रहा क्षितिज के अचल मे मुख आवृत कर तुमको निहार ॥
—कामायनी।

यह इड़ा के प्रति मनु की उक्ति है। 'जीवन-निशीथ' के अधकार का क्षितिज

में भागना कवि-निबद्ध-पात्र 'मनु' की प्रौढोक्ति है। तुम्हारे (इड़ा) के दर्शन से जीवन-निशीथ का अंधकार अपना मुख ढककर क्षोभ के कारण भागा जा रहा है। इस वाच्यार्थ के मुख्य अंश 'जीवन-निशीथ पद मे रूपक अलकार है। इस रूपक द्वारा तुम्हारे दर्शन (ज्ञान-प्रसार) से हमारे अन्दर का घोर अंधकार (अज्ञानादि) भाग रहा है अर्थात् जीवन में कर्मण्यता आ रही है, यह वस्तु व्यग्य से प्राप्त होती है। इसलिए यहाँ पदगत अलंकार से वस्तु व्यंग्य है।

मैं नीरभरी दुख की बदली।
विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना इतिहास यहाँ,
उमड़ीकल थी मिट आज चली।
मैं नीर-भरी दुख की बदली॥

—यामा : महादेवी वर्मा।

मैं नीर-भरी दुख की बदली तो हूँ, किन्तु बदली सदृश मेरा भाग्य नही है। बदली को विस्तृत नभ में छा जाने का अवसर भी प्राप्त होता है, लेकिन मुझे तो इस घर के कोने में ही बैठकर अपने दुख के दिन व्यतीत करने पड़ते हैं। इस प्रकार उपमान से उपमेय की न्यूनता बतलाने से व्यतिरेक अलकार स्पष्ट है। यहाँ बदली और विरहिणी की समानता न वाच्य है न लक्ष्य, अपितु व्यंग्य है। बदली आज उमड़ती और कल मिटती है, नीरभरी तो है ही; लेकिन विरहिणी जैसी नही। भले ही वह क्षणभर के लिये प्रसन्न होकर पुन: उदासीन हो जाती हो और आँसुओं से डबडबायी रहती हो। अत: समता की व्यंजना ही है जो संलक्ष्यक्रम है। इसी प्रकार समस्त गीत के वाच्यार्थ से करुण रस की भी व्यजना होती है जो असंलक्ष्यक्रम है। अत: यहाँ एक व्यजकानुप्रवेश संकर है। इसमें एक से अधिक ध्वनियाँ एक ही पद या वाक्य में होती हैं। इसका एक अन्य उदाहरण अधोलिखित है—

कहता जग दुख को प्यार न कर।
अनबिंधे मोती यह दृग के बँध पाये बंधन में किसके ?
पल-पल बिनते पल-पल मिटते तू निष्फल गुँथ-गुँथ हार न कर।
कहता जग दुख को प्यार न कर,

—यामा : महादेवी वर्मा।

प्रियतम के वियोग में दुखमय जीवन व्यतीत करने वाले प्रेमी की तन्मय आराधना का मर्म न समझने वाला कहता है कि तू दु:ख को प्यार न कर। तू चाहता है कि अनबिंधे दृग के मोतियों का हार बनाकर प्रियतम के मिलने पर अपनी विरह-व्यथा का उपहार-रूप यह हार उनके गले मे डाले, किन्तु तेरा यह व्यवहार नितांत

निरर्थक है, क्योंकि आँसुओं का हार बनाना असम्भव है, एतदर्थ व्यर्थ प्रयास है। उद्धरण के 'जग कहता है' इस वाक्य में जग का लक्ष्यार्थ होता है केवल आदान-प्रदान के व्यापार में लिप्त, प्रेमकला से अनभिज्ञ, हृदयहीन आदि। इससे प्रेमी की दृष्टि में जग की बातों का कोई मूल्य नहीं है। इस प्रकार यहाँ जग का यह व्यंग्यार्थ अत्यन्त तिरस्कृतवाच्यध्वनि है। इस वर्णन से व्यतिरेकालंकार व्यंग्य है; क्योंकि यहाँ उपमेय आँसुओं के यथार्थ वर्णन से उनके हाररूप मे बन जाने की असंभाव्यता और उपमान मोतियों की संभाव्यता द्योतित होने से उपमेय की अपेक्षा उपमान का ही उत्कर्ष ध्वनित है। फिर जिस वाक्य से व्यतिरेकालंकार का व्यंग्यबोध होता है, उसी से अत्यन्त दुख-सहिष्णुता और सततअश्रुवर्षणशीलता की भी व्यंजना है। इससे असंलक्ष्य-क्रम स्पष्ट होता है। फिर समस्त वाक्य से संलक्ष्यक्रमध्वनि द्वारा अर्थ से यह भी व्यंग्य होता है कि इस दुख के आराधक को निरन्तर दुख का जीवन व्यतीत करते-करते उसी में अपने को डुबोये रखना अतिप्रिय हो गया है। अतः वह 'जग' की कही बातों को उपहासास्पद अपने कार्य को उचित तथा आवश्यक समझता है। अतः यहाँ असंलक्ष्यक्रम, संलक्ष्यक्रम, व्यतिरेक अलकार आदि कई व्यंग्य एक साथ व्यक्त हैं। इससे यहाँ भी एकव्यंजकानुप्रवेश संकर है।

वाच्य की अपेक्षा गौण व्यंग्य को गुणीभूत व्यंग्य कहते हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि जहाँ व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम न हो अर्थात् वाच्यार्थ के समान ही ही या न्यून हो उसे गुणीभूत व्यंग्य कहते है। इसमे व्यंग्य गुणीभूत अर्थात् अप्रधान होता है।[1] मुख्य रूप से काव्य दो प्रकार का होता है—ध्वनि और गुणीभूत व्यंग्य।[2] ध्वनि उत्तमकोटि का काव्य होता है और गुणीभूत व्यंग्य मध्यम काव्य है। आचार्यों ने गुणीभूत होने के आठ कारण बतलाये है।[3] उदाहरणार्थ—

बीती विभावरी जाग री,
अम्बर-पनघट में डुबो रही।
तारा घट ऊषा-नागरी॥

---

१. अपरं तु गुणीभूतव्यंग्यं वाच्यादनुत्तमे व्यंग्ये॥
—साहित्यदर्पण, चतुर्थ परिच्छेद।

२. काव्यं ध्वनिर्गुणीभूत व्यग्यं चेति द्विधामतम्॥
—साहित्यदर्पण, चतुर्थ परिच्छेद।

३. तत्रस्यादितराङ्गं काक्वाक्षिप्तच वाच्य सिद्ध्यङ्गम्॥ ४। १३॥
संदिग्धप्राधान्यं तुल्यप्राधान्यमस्फुटमगूढम्।
व्यंग्यंमसुन्दरमेवं भेदास्तस्योहिता अष्टौ॥ ४। १४॥
—साहित्यदर्पण।

खगकुल कुलकुल-सा बोल रहा,
किसलय का अंचल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भरलायी—
मधु मुकुल नवल रस-गागरी ।।

—लहर : प्रसाद ।

उपर्युक्त पद्य की द्वितीय तथा तृतीय पंक्तियों मे रूपकालंकार है। ऊषा के द्वारा आकाशरूपी पनघट में ताराओं रूपी घड़ों का डुबाना वाच्यार्थ है। लक्ष्यार्थहोता है—ऊषा के आगमन से आकाश के तारों का लुप्त होते जाना और इसका जो व्यंग्यार्थ 'रात्रि का बीत जाना' है यह 'ऊषा' और उसके व्यापार से स्पष्ट है। 'बीती विभावरी' से तो वह और भी स्पष्ट हो जाता है। अत: यहाँ लक्षणामूलक अगूढव्यंग्य है। अतिम दो पक्तियो का वाच्यार्थ है—लतिका भी मुकुल की गागरी मे मधु-रूप नवल रस भर लायी। यहाँ लतिका के द्वारा मुकुलों की गागरी मे रस भर लाना नितान्त असम्भव होने के कारण वाच्यार्थ का सर्वथा तिरस्कार है। लक्ष्यार्थ होता है कलियों का खिलना और मकरन्द से परिपूर्ण होना। फिर इससे वस्तुरूप इस व्यग्यार्थ का बोध होता है कि प्रभात हो गया। इसलिये यहाँ अत्यन्त-तिरस्कृत-वाच्य गुणीभूत व्यंग्य है। अगूढ व्यंग्य होने का कारण यह है कि 'प्रभात हो गया' यह वस्तुरूप व्यंग्य पद्य की प्रथम पंक्ति से ही ज्ञात हो जाता है। निम्नलिखित पद्य भी गुणीभूत व्यग्य का एक सुन्दर उदाहरण है—

जिस पर पाले का एक पर्त-सा छाया,
हत जिसकी पंकज-पंक्ति अचल-सी काया।
उस सरसी-सी आभरण-रहित सित-वसना,
सिहरे प्रभु माँ को देख, हुई जड़ रसना ।।

—साकेत : मैथिलीशरण गुप्त ।

प्रस्तुत पद्यांश की प्रथम तीन पंक्तियों द्वारा जो कौशल्या का वैधव्य अभिव्यंजित होता है, उसमें कोई सौदर्य नही है, अपितु समस्त पद्य का अर्थचित्र उसमें अधिक सुन्दर है। अन्तिम पंक्ति के 'सिहरे' और 'जड़ रसना' के वाच्यार्थ में कौशल्या के वैधव्य का जो अतुल हाहाकार निहित है, वह तो बहुत ही सुन्दर है; क्योंकि उसके कारण भगवान राम जसे महापुरुष की रसना का जड़ हो जाना और शरीर का सिहर उठना साधारण बात नही है। अत: यहाँ गुणीभूत व्यंग्य तो है ही साथ ही कौशल्या की अवस्था की तुलना तुषार द्वारा हत श्री कमलिनीवाली सरसी से की गयी है। इसलिये व्यंग्य का अंग यहाँ उपमालंकार है। एतदर्थ यहाँ गुणीभूत व्यंग्य और उपमालंकार का मिश्रण है। इसी प्रकार—

निशा को धो देता राकेश,
चाँदनी मे जब अलकें खोल।
कली से कहता था मधुमास,
बता दो मधुमदिरा का मोल।।
—कामायनी।

इसमे प्रस्तुत राकेश-निशा तथा मधुमास-कली पर नायक-नायिकावाले अप्रस्तुत का व्यवहार समारोपण प्रतीत होता है। अत: यहाँ समासोक्ति अलकार तथा गुणीभूत व्यग्य है। यहाँ विशेष चमत्कार वाच्यार्थ मे ही है।

पाश्चात्य साहित्यशास्त्र में व्यंजना का भारतीय शैली में कोई पृथक् विवेचन तो नही मिलता, किन्तु यत्र-तत्र ग्रथों मे इस सम्बन्ध मे विचार अवश्य प्राप्त होते है।[1] इंगलैण्ड के विख्यात मेधावी आलोचक रिचर्ड्स ने अपने 'प्रिंसिपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म' (काव्यालोचन के सिद्धान्त), 'मीनिंग आफ मीनिंग' (अर्थ का अर्थ), और 'प्रेक्टिकल क्रिटिसिज्म' (व्यावहारिक आलोचना) नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थों में व्यंजनाशक्ति के विषय में बहुत ही महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किये है। रिचर्ड्स महोदय ने काव्य तथा विज्ञान का अन्तर स्पष्ट करते हुए भाषा के दो प्रकार के प्रयोग स्वीकार किये है। इन्ही दो प्रयोगो को वैज्ञानिक तथा भावात्मक श्रेणियों मे विभाजित करते हुए बतलाया है कि भाषा का वैज्ञानिक प्रयोग किसी सत्य अथवा असत्य सबध का ज्ञान कराने के लिये किया जाता है, जिसे वह उत्पन्न करता है। भावात्मक प्रयोग उस संबंध से किसी मानसिक भाव की उद्भावना कराने के लिये होता है।"अनेक शब्दों का विधान, सम्बन्ध की आवश्यकता के बिना ही स्फूर्ति उत्पन्न करता है। ये शब्द संगीतात्मक शब्द-समूहों के सदृश कार्य करते हैं। लेकिन प्राय: ये सम्बन्ध, किसी विशेष प्रवृत्ति के विकास में परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं का कार्य करते है, फिर भी वह विशेष प्रकृति ही (उस प्रयोग में) महत्वपूर्ण है, ये संबंध नही। इस विषय में संबंध सत्य है या मिथ्या, इस ओर विशेष ध्यान नही दिया जाता। इसका एक मात्र कार्य उन प्रवृत्तियों को उत्पन्न करना तथा उनकी सहायता करना ही है। ये ही उसके अंतिम प्रतिपाद्य हैं।"[2] यहाँ रिचर्ड्स के मतानुसार काव्य में शब्द तथा अर्थ की इतनी महत्ता नही है,

---

१ व्यजना को अंग्रेजी में 'सजेस्टिवनेस' (Suggestiveness) कहते है।

2 Many arrangements of words evoke attitudes without any reference required in route. They operate like musical phrases. But usually references are involved as conditions for or stages in, the ensuing development of attitudes, yet it is still the attitudes, not the references which are important. It matters not at all in such cases

जितनी शब्द तथा अर्थ द्वारा व्यंजित प्रवृत्ति (भावात्मक व्यंजना) की। उदाहरणार्थ 'यदि तुम किसी व्यक्ति को सुअर कहते हो, तो यह प्रयोग इसलिये हो सकता है कि उस व्यक्ति की प्रवृत्तियाँ सुअर सदृश हैं। यह इसलिये है कि उस व्यक्ति के प्रति तुम्हारी भावना ठीक वैसी ही है, जैसे सुअर के प्रति अथवा तुम यथा संभव अपनी भावनाओ को उद्दीप्त करने के लिये ऐसा प्रयोग करते हो।'[1] इस कथन से स्पष्ट है कि लाक्षणिक प्रयोग का स्वयं इतना महत्व नही है जितना कि उन भावनाओं की व्यंजना का जो लाक्षणिक प्रयोग लक्ष्य है। लाक्षणिक प्रयोग तो भाव-व्यजना का साधन मात्र है। इस प्रकार रिचर्ड्स ने काव्य के प्रतीयमान अर्थ अर्थात् ध्वनि (व्यंजना) की सत्ता-महत्ता की ओर संकेत किया है।

अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि-आलोचक एबरक्राम्बी ने तो व्यंजना का सीधा प्रतिपादन किया है जो बिल्कुल भारतीय ढंग का है। उनका कहना है कि "साहित्य का कार्य है अनुभूति का प्रेषण—परन्तु अनुभूति भाषा में तो घटित होती नही। (अतएव) कवि की अनुभूति इस प्रकार की प्रतीक भाषा में अनूदित होनी चाहिए जिसका सहृदय फिर अपनी अनुभूति में अनुवाद कर सकें—दोनों अवस्थाओं मे ही अनुभूति भावित तो होगी। × × × ×

× × इस प्रकार, अनुभूति जैसी अत्यंत तरल (परिवर्तनशील) वस्तु का अनुवाद भाषा में करना पड़ता है जिसकी शक्ति स्वभाव से ही अत्यंत सीमित है। अतएव काव्य-कला सदा ही किसी न किसी अश, में ध्वनि-रूप होती है और काव्य कला का चरम उत्कर्ष है भाषा की इस व्यंजना शक्ति को अधिक से अधिक व्यापक, प्रभावपूर्ण, प्रत्यक्ष, स्पष्ट तथा सूक्ष्म बनाना। यह व्यंजना शक्ति भाषा की साधारण अर्थ-विधायिनी (अमिधा) शक्ति की सहायक होती है।

भाषा की इसी शक्ति का परिज्ञान कवि को सामान्य व्यक्ति से पृथक करता है। इसी व्यंजनावृत्ति के प्रति संवेदनशीलता सहृदय की पहचान है। (अतएव) कर्त्ता मे प्रेरक, और भोक्ता में ग्राहक रूप से वर्तमान यही वह विशेषगुण है जिसे कि काव्य की आत्मा मानना चाहिए।'[2] पाश्चात्य काव्य-शास्त्र के अलंकार—

---

whether the references are true or false. Thei sole function is to bring about and support the attitudes which are further response.

—Principles of Literary Criticism ch. X X X IV, P. 267—8.

1 If you call a man a swine, for example, it may be because his features resemble those of a pig, but it may be because you have towards him something of the feeling you conventionally have towards pigs, or because you propose, if possible, to excite those feelings.

—Practical Criticism.

२ डा० नगेन्द्र— 'ध्वन्यालोक' की भूमिका में उद्धृत, पृष्ठ बावन।

विधान मे ध्वनि की स्वीकृति और भी प्रत्यक्ष है। हमारे यहाँ लक्षणा–व्यजना को शब्द की शक्तियाँ मानकर उनके चमत्कार का पृथक् विवेचन किया गया है, परन्तु पश्चिम मे उनके चमत्कार अलकार रूप मे ग्रहण किये गये है। उदाहरण के लिये वक्रतामूलक इनुएडों और आयरनी में व्यजना का प्रत्यक्ष आधार है। भारतीय काव्य-शास्त्र के अनुसार उनका समावेश अलंकारों के अन्तर्गत नही किया जा सकता क्योंकि उनमे वाच्यार्थ का चमत्कार होता है। यू फ्यूमिज्म मे कटुता को बचाने के लिये अप्रिय बात को प्रिय शब्दों मे लपेटकर कहा जाता है—संस्कृत के पर्याय की भाँति उसका भी आधार निश्चय ही व्यंजना है।"[1]

किसी भी देश के सांस्कृतिक एव साहित्यक विकास के साथ-साथ अर्थ मे भी विकास होता रहता है। किसी देश के युग विशेष के साहित्य में जो शब्द उस समय व्यजनापूर्ण थे, वे ही शब्द आगे आनेवाले साहित्यकार के लिये व्यजना-वैभवहीन सिद्ध होते और तब नवीन साहित्यकार नये शब्दों को अभिनव अर्थवत्ता प्रदान करता है। इस प्रकार शब्द सर्वदा अपने प्राचीन व्यंग्यार्थ–वैभव को खोकर वाचक बनता रहता है, 'अज्ञेय' ने द्वितीय 'तारसप्तक' की भूमिका मे इसी बात की ओर संकेत करते हुए लिखा है कि "यह क्रिया भाषा में निरंतर होती रहती है और भाषा विकास की एक अनिवार्य क्रिया है। चमत्कार मरता रहता है और चमत्कारिक अर्थ अभिधेय बनता जाता है। यों कहे कि कविता की भाषा निरंतर गद्य की भाषा होती जाती है। इस प्रकार कवि के सामने हमेशा चमत्कार की सृष्टि की समस्या बनी रहती है। वह शब्दों को निरतर नया सस्कार देता चलता है और व सस्कार क्रमश: सार्वजनिक मानस मे बैठ कर फिर ऐसे हो जाते है कि उस रूप में–कवि के काम के नही रहते। 'बासन को अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।'[2] × × × जब चमत्कारिक अर्थ मर जाता है और अभिधेयक बन जाता है तब उस शब्द की रागोत्तेजक शक्ति भी क्षीण हो जाती है। उस अर्थ से रागात्मक संबंध नहीं स्थापित होता। कवि तब उस अर्थ की प्रतिपत्ति करता है जिससे पुन: राग का संचार हो, पुन रागात्मक संबध स्थापित हो।"[2] उदाहरणार्थ द्विवेदी युगीन कविता की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रियास्वरूप छायावाद का उद्‌भव हुआ। द्विवेदी–युग की कविता–शैली के विपरीत छायावादी कविता–शैली बहुत व्यजनापूर्ण है। लेकिन 'छायावाद से आगे की नयी प्रयोगवादी कविता मे व्यंजना का आधार और भी अनिवार्य हो गया है। प्रयोगवादी कवि ने जब शब्द मे साधारण अर्थ से अधिक अर्थ भरना चाहा तो स्वभावत: ही उसे व्यजना का आश्रय लेना पडा। वास्तव मे इस नयी कविता की भाषा अत्यधिक साकेतिक तथा प्रतीकात्मक है। यहाँ शब्द में इतना अधिक अर्थ भरने का प्रयत्न किया गया है कि उसकी व्यजना–शक्ति जवाब दे जाती है—यह व्यजना के साथ बलात्कार है।"[3]

---

१. डा० नगेन्द्र–'ध्वन्या लोक' की भूमिका, पृष्ठ तिरपन।
२. द्वितीय तारसप्तक (भूमिका) पृ० ११–१२।
३. डा० नगेन्द्र : हिन्दी ध्वन्यालोक की भूमिका पृ० ६८–६९।

९

आधुनिक अलंकृत उक्तियों में भाव और वस्तु-व्यंजना

काव्य मे अलंकारों की स्थिति पर विचार करते हुए आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओ के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने मे कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।"[१] इसके अंतर्गत अभिव्यक्ति की प्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता दोनों ही विशेषताएँ आ जाती है। इस प्रकार अलंकार के दो कार्य हुए—भावोत्कर्ष-व्यजना तथा वस्तुओ की रूपानुभूति, गुणानुभूति और क्रियानुभूति को तीव्र करना। प्राचीन आलकारिकों ने अलंकारो को सामान्य भापा से लोकोत्तर और विचित्र उक्ति माना है अर्थात् उन्होंने स्वाभाविक अलकारों की अपेक्षा कृत्रिम अलंकारो को ही अधिक महत्त्व प्रदान किया है, लेकिन जिस प्रकार अत्यधिक वस्त्राभूषणों द्वारा शरीर का स्वाभाविक सौंदर्य आवृत्त हो जाता है, उसी प्रकार अस्वाभाविक और अनावश्यक अलकारों की अतिशयता से भी भाषा एवं भावों का सहज सौंदर्य आच्छादित हो जाता है अर्थात् उसमे अलकारों का प्राधान्य हो जाता है और अलकार्य गौण, फलत: काव्य क्षीण हो जाता है। इसीलिये आचार्य विश्वनाथ ने अलंकारों को काव्य की आत्मा नहीं अपितु शब्द और अर्थ की शोभा मे वृद्धि करनेवाला, उनका अस्थिर धर्म और रस, भावादि का उपकारक माना है।[२] और यह उचित भी है, क्योकि काव्य मे प्रधानता प्रस्तुत

---

१ गोस्वामी तुलसीदास, 'अलंकार–विधान' पृ० १४७।

२ शब्दार्थयोरस्थिरा ये धर्मा: शोभातिशायिन: ।
रसादीनुपकुर्वन्तोऽलंकारास्तेऽङ्गदादिवत् ॥ साहित्यदर्पण–दशम्-परिच्छेद ॥१॥

की होती है, अप्रस्तुत की नहीं। मनुष्य शरीर और आत्मा से युक्त है। वह अपने शरीर को वस्त्रालंकारों से सुसज्जित करता है, किन्तु वस्त्रालंकार शरीर के बाह्य उपादान हैं। वस्त्रालंकारों के अभाव में जीवन सम्भव है, लेकिन शरीर के बिना चेतना और चेतना के बिना शरीर की स्थिति नही सम्भव है। इसी प्रकार अलंकारों के बिना भी काव्य-रचना हो सकती है, लेकिन शब्द और अर्थ के संयोगाभाव में काव्य का अस्तित्व असम्भव है। इस दृष्टि से काव्य की आत्मा (भाव) और शरीर (शब्द) दोनों ही आवश्यक तथा अन्योन्याश्रित दृष्टिगत होते हैं एवं अलंकार अनिवार्य नहीं, ऐच्छिक प्रतीत होते हैं, अर्थात् अलंकार काव्य के साधन हैं, साध्य नहीं।

आधुनिक कवि उक्त विचारधारा से पूर्णतः अवगत थे। उन्होंने अलंकारों का पर्याप्त प्रयोग किया है, किन्तु उनके अलंकार काव्य की प्रेषणीयता और प्रभविष्णुता में साधक है, बाधक नही। वे यह स्वीकार करते है कि भाव और भाषा की तरह अलंकारों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। विभिन्न भावों की अभिव्यक्ति में अलंकारों का परम्परामुक्त नियम-पालन और उनका शुकवत् व्यवहार अवांछनीय अशोभनीय और अस्वाभाविक प्रतीत होता है। रीतिकालीन कविता की स्थूल अलंकार-प्रियता और एक ही प्रकार के प्रयोगों की अशोभन उद्धरणी के विरोध-स्वरूप छायावादी कविता का प्रादुर्भाव हुआ। पत जी ने कहा है कि "और इनकी भाषालंकारिता? जिसकी रंगीन डोरियो में वह कविता का हैंगिंग-गार्डेन—वह विश्व-वैचित्र्य झूलता है, जिसके हृत्पट पर वह चित्रित है?—इन साहित्य के मालियों में से जिसकी विलास-बाटिका में भी आप प्रवेश करें, सब में वही अधिकतर कदली के स्तम्भ, कमल-नाल, दाड़िम के बीज, शुक, पिक, खन्जन, शंख, पद्म, सूर्य, सिंह, मृग चन्द्र, चार आँखें होना, कटाक्ष करना, आह छोडना, रोमांचित होना, दूत भेजना, कराहना, मूर्छित होना, स्वप्न देखना, अभिसार करना;—बस इनके सिवा और कुछ नहीं! भाव और भाषा का शुक-प्रयोग, राग और छन्दों की ऐसी एक स्वर रिम-झिम, उपमा तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की ऐसी आश्रान्त उपल-वृष्टि क्या संसार के और किसी साहित्य में मिल सकती है? घन की घहर, भेकी की भहर, झिल्ली की झहर, बिजली की बहर और मोर की कहर, समस्त संगीत तुक की एक ही नहर मे बहा दिया। और बेचारे औपकायन की बेटी उपमा को तो बाँध ही दिया!—आँख की उपमा? खन्जन, मृग, कन्ज, मीन इत्यादि; होठों की? किसलय, प्रवाल, लाल, लाख इत्यादि और इन धुरन्धर साहित्याचार्यों की! शुक, दादुर, ग्रामोफोन इत्यादि। ब्रजभाषा के उन्नत भाल में इन कविवरो की लालसा के साप, इनकी उपमाओं के शाप-भ्रष्टनहुष, उसके कोमल पक्ष मे इनके अत्याचार के नख क्षत, उसके सुकुमार अंगों में इनकी वासना का, विरहाग्नि का असह्य ताप सदा के लिये बना ही रहेगा! उसकी उदार छाती पर इन्होंने पहाड़ रख दिया! ऐसा किमाकार-रूप उस युग के आदर्श ने ग्रहण किया कि यदि काल ही अगस्त्य की तरह उसका शिखर भू-लुण्ठित न कर देता तो उस

युग की उच्छृंखलता के विन्ध्य ने, मेरु का स्वरूप धारण करने की चेष्टा में हमारे 'सूर' 'शशि' की प्रभा को भी पास आने से रोक लिया होता ! ... ..यह लिखने की आवश्यकता नही कि उस युग की वाणी में जो कुछ सुन्दर, सत्य तथा शाश्वत है उसका जीर्णोद्धार कर उस पर प्रकाश डाल, तथा उसे हिन्दी प्रेमियों के लिए सुलभ तथा सुगम बना, उसका घर-घर प्रचार करना चाहिये। जो ज्ञान-वृद्धि वयोवृद्ध, काव्यमर्मज्ञ उस ओर झुके है उनके ऋण से हिन्दी कभी मुक्त न हो सकेगी।"[1] बँधे-बँधाये अलंकारो के प्रति विरोध की यह प्रवृत्ति सभी आधुनिक कवियों से परिलक्षित होती है।

भाषा में भावाभिव्यक्ति की क्षमता का आगमन तभी होता है, जब उसमे अनेक प्रकार के अलकार मिल कर उसके अंग बन जाते है। इस प्रकार भावनाओं की सूक्ष्मता और सश्लिष्टता के साथ भाषा भी स्वत: अलकृत और सश्लिष्ट हो जाती है। यही बात आधुनिक कविता विशेषरूप से छायावाद मे दिखलाई पडती है। छायावादी कवियो ने एक नवीन भाषा का निर्माण किया है जिसमें भावों को व्यक्त करने की अधिक शक्ति है और जो भावो के सौंदर्य के कारण ही अधिक सुन्दर हो गई है। इसीलिए पंत जी ने स्पष्टरूपेण कहा है कि "अलकार केवल वाणी की सजावट के लिए ही नही वरन् भाव की अभिव्यक्ति के भी विशेष द्वार है, भाषा की पुष्टि के लिये, राग की पूर्णता के लिए आवश्यक उपादान है। वे वाणी के आचार-व्यवहार, रीति-नीति है, पृथक स्थितियो के पृथक् स्वरूप, भिन्न-भिन्न अवस्थाओ के भिन्न-भिन्न चित्र है।"[2] इस कथन का तात्पर्य है कि अलकार काव्य के गुणरूप है, शरीर-स्थित आत्मारूप नही। इसीलिये छायावादी कविता रीतिकालीन आलकारिक अतिशयता का प्रबल विरोध करते हुए भी काव्य-क्षेत्र से अलकारो का सर्वथा बहिष्कार न कर सकी। उसमे व्यवहृत अलकार ऊपर से पहनाये हुए परिधानवत् नही प्रतीत होते, अपितु काव्य-शरीर के अगभूत दृष्टिगत होते है। काव्य मे अलंकार–विधान की यही सच्ची सार्थकता है।

अब हम यहाँ यह देखने का प्रयत्न करेगे कि आधुनिक अलंकृत उक्तियाँ, भाव–व्यजना और वस्तुओं के रूप, गुण तथा क्रिया का अनुभव तीव्र कराने मे कहाँ तक सहायक होती है ?

अधोलिखित उद्धरण में तुलनात्मक प्रतिद्वन्द्विता द्वारा चमत्कार के साथ उर्मिला के करुण क्रदन की भाव-व्यजना भी बड़े सुन्दर ढग से हुई है—

करुणे क्यों रोती है 'उतर' में और अधिक तू रोई।
मेरी विभूति है जो उसको 'भवभूति' क्यो कहे कोई ?

—साकेत : मैथिलीशरण गुप्त

---

१ 'पल्लव' की भूमिका पृ० ८–१०।

२ 'पल्लव' की भूमिका पृ० १९।

प्रस्तुत पंक्तियो मे 'भवभूति' उनके 'उत्तररामचरित' और 'एको रसः करुण एव' ये तीनों समक्ष प्रस्तुत हो जाते है। उर्मिला के कारुणिक वर्णन मे उत्तर और भवभूति शब्दों द्वारा करुणा-रस पूर्ण भूवभूतिकृत उत्तररामचरित नाटक की सूचना इससे की गयी है। इससे यह ज्ञात होता है कि इस सर्ग अर्थात् नवम् सर्ग मे करुणरस का वर्णन उत्तररामचरित जैसा है। यहाँ मुद्रालकार है। कवि को यह अभिप्रेत नही हे कि ऐसी कोई कल्पना भी करे कि मै और मेरा नवम् सर्ग भवभूति और उत्तररामचरित की समक्षता करने वाला है। कवि इस भावना को मन मे लाकर उर्मिला के मुह से कहलवाता है कि उत्तररामचरित में करुणा का अधिक क्रदन है अर्थात् उसमे करुण रस का पूर्ण परिपाक है। किसी रोने वाले से पूछा जाय कि क्यो रोता है तो वह उत्तर नही देता है और रो उठता है। सहानुभूति-प्रदर्शन से रोने वाले का बाँध टूट-सा जाता है। कवि के समक्ष रोने वाले का यही चित्र उपस्थित है।

उर्मिला की विभूति भिन्न प्रकार की हे। उसमे प्रियानुराग की मूर्ति है। वह अलौकिक है। वह 'भव' अर्थात् 'संसार' की 'भूति' अर्थात 'संपत्ति' नही है। नवम् सर्ग की काव्यसंपत्ति भवभूति की काव्यसंपत्ति नही है। उर्मिला का करुण क्रदन सीता के करुण क्रदन से कुछ बढ़ा—चढा है। कवि गुप्त की अपेक्षा कवि भवभूति कुछ और है। यहाँ उर्मिला की उक्ति से यह स्पष्ट है कि तुलना करने वाले तुलना करे पर उर्मिला की उससे प्रतिद्वन्द्विता है।

लिखकर लोहित लेख, डूब गया है दिन अहा।
व्योम-सिधु सखि देख, तारक बुदबुद दे रहा॥

—साकेत : मैथिलीशरण गुप्त

दिवसावसान मे पश्चिम की ओर ललाई दौड़ जाती है और फिर आकाश मे तारे दिखाई पडते है। दिन तो ललाई रूप मे लोहित लेख लिख गया जो अगार सा दाहक है। यह उर्मिला की मार्मिक पीड़ा का दाहक है। यहाँ रूपक करुणा के उत्कर्ष मे सहायक है।

प्रसाद जी ने निम्नलिखित अश मे 'लज्जा' की अमूर्त्त भावना को व्यक्त करने के लिए अनेक मूर्त-अमूर्त्त प्रस्तुतो की योजना की है जिनसे काव्य मे मूर्तिमत्ता का विधान हुआ है और रग, रूप, ध्वनि, स्पर्श, रसादि ऐन्द्रियिक धर्मों और उनके विषयो का सहृदय पाठक को प्रत्यक्षीकरण हुआ है—

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती—सी;
गोधूली के धूमिल पट मे
दीपक के स्वर में दिपती—सी।

मजुल स्वप्न की विस्मृति में
    मन का उन्माद बिखरता ज्यों;
सुरभित लहरों की छाया मे
    बुल्ले का विभव निखरता ज्यों;
वैसे ही माया मे लिपटी
    अधरों पर उँगली धरे हुए;
माधव के सरस कुतूहल का
    आँखों में पानी भरे हुए।
नीरव निशीथ मे लतिका-सी
    तुम कौन आरही हो बढ़ती ?
कोमल बाँहे फैलाये ही
    आलिगन का जादू पढती।
किन इन्द्रजाल के फूलों से
    लेकर सुहाग-कण राग भरे;
सिर नीचा कर हो गूँथ रही
    माला जिससे मधु-धार ढरे ?
पुलकित कदम्ब की माला-सी
    पहना देती हो अन्तर में;
झुक जाती है मन की डाली
    अयनी फल-भरता के डरमे।
वरदान सदृश्य हो डोल रही
    नीली किरनों से बुना हुआ
यह अचल कितना हलका-सा,
    कितने सौरभ से सना हुआ।
                —कामायनी।

उपर्युक्त पँक्तियों में लज्जा की दशा से अपने को छिपाने, लजाने के हाव एव भाव में सौदर्य के और अधिक आकर्षक एवं उन्मादकारी हो जाने, क्षण-प्रतिक्षण मुखाकृति के रग बदलने, लज्जागत अनुभवों के प्रदर्शन, आँसू आदि सात्विकों के साथ समस्त चेतना छा जाने, शीश झुक जाने, रोमाँच हो आने और इन सबसे ऊपर एक प्रकार की सुखद लगने वाली एव समस्त अस्तित्व को सहला देने वाली अनुभूति-सवेदना का आच्छादन अत्यन्त साकेतिकता और अर्थवत्ता के साथ व्यजित हुआ है। यहाँ लज्जा को दीपशिखा, कलिका, लतिका आदि के रूप में तो देखा ही गया है, उसे मायाविनी नारी का रूप भी दिया गया है, साथ ही उपमाओं के रूप, गुण, धर्म और क्रिया का भी वर्णन किया गया है। इससे भाषा चित्रमयी और भाव सश्लिष्ट हो गए हैं। इसमें कवि ने कल्पना-कौशल द्वारा अप्रस्तुतों की योजना नही की है

अपितु भावना और कल्पना के सम्यक् योग से ये सर्वथा अभिनव अप्रस्तुत स्वय ही प्रस्तुत हो गए हैं। प्रसाद जी के एक और उदाहरण देखिये जिसमे संभावना अलंकार शरीर-सौदर्य की मधुरता के उत्कर्ष-प्रदर्शन में सहायक हुआ है—

चचला स्नान कर आवे,
चद्रिका-पर्व मे जैसी।
उस पावन तन की शोभा,
आलोक मधुर थी ऐसी॥
—आँसू।

निराला जी ने अन्योक्ति-पद्धति को अपनाते हुए लिखा है—

पहचाना—अब पहचाना—
हाँ, उस कानन मे खिले हुए तुम
चूम रहे थे झूम—झूम
ऊषा के स्वर्ण कपोल,
अठखेलियाँ तुम्हारी प्यारी—प्यारी,—
व्यक्त इशारे से ही सारे बोल मधुर अनमोल।

*   *   *

तुम्हारा इतना हृदय,
वह क्या समझेगा माली निष्ठुर—
निरा गॅवार,
स्वार्थ का मारा यहाँ भटकता,

*   *   *

तोड़ लिया लचकाई ज्योंहीं डाली॥
—परिमल : निराला।

इसमें फूल और माली शब्द सुन्दर स्त्री और उसके सौदर्य को बुरी तरह दृष्टि से देखने वाले पुरुष की ओर सकेत है। पूरी कविता अन्योक्ति है। निराला जी की 'जलद के प्रति' माखनलाल चतुर्वेदी की 'फूल की चाह', प्रसाद की 'लहर' आदि कविताएँ इसी प्रकार की है जिनमे भावो के उत्कर्ष की व्यजना बड़ी ही सफलता से हुई है।

पत जी की कतिपय उपमाएँ देखिए जो भाव-व्यजना मे सहायक होने लिये प्रयुक्त हुई हैं—

देश के इतिहास के से बहिन तुम
वृत्त कोरे गिन रही हो!

……..कृपण के से दान-सी
दैव से जब प्रेमिका मिली ॥

—ग्रंथी ।

भाग्यहीन नायक को दैव से प्रेमिका की प्राप्ति ठीक ऐसी ही थी जैसी कृपण से दान-प्राप्ति । इसके अतिरिक्त कुछ उपमाएँ ऐसी ही है जो प्रसगानुकूल होने के कारण भाव-व्यंजना मे एक प्रकार का चमत्कार उत्पन्न कर देती है—

अवनि के सुख बढ रहे थे दिवस—से —ग्रंथी ।

वसंत ऋतु में पृथ्वी का वैभव इस प्रकार बढ रहा था जैसे उसके दिवस—कितनी उपयुक्त उपमा है ।

कही-कहीं उपमाओं की माला ही प्रस्तुत हो जाती है जिससे भाव-व्यंजना अधिक तीव्र हो जाती है—

जब अचानक अनिल की छवि मे पला,
एक जल-कण जलद-शिशु-सा पलक पर ।
आ पड़ा सुकुमार-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा ।

—ग्रथि

शिला अत्यन्त साधारण वस्तु है, किन्तु महादेवी ने साँसो मे उसका भार भरकर उपमा द्वारा उसे अधिक अर्थवती बना दिया है—

बिखरती उर की तरी मे,

आज तो हर साँस बनती शतशिला के भार-सी है ।

—दीपशिखा ।

इसी प्रकार प्यार की उपमा बादल से देना कम अर्थमय नही है । यहाँ व्यथा की श्यामता, आँसू की सजलता, आवेग की घुमडन, पीर की बिजली, जीवन की अस्थिरता, किन्तु परहित साधना मे रत आदि सभी भाव व्यजित है—

तड़ित है उपहार तेरा, बादलों-सा प्यार मेरा । —दीपशिखा ।

वेदना और स्वप्न की निराकारता को जल और शतदल की साकारता देने मे तारल्य और सौकुमार्य के साथ-ही-साथ पावनपूजोपहार की पवित्रता भी व्यजित है—

ले मिलेगा उर अचचल, वेदना-जल, स्वप्न-शतदल । —दीपशिखा

इसी प्रकार रूपकालकार अश्रुओं को वह रूप देता है जिससे हृदय की विह्वलता पराकाष्ठा को पहुँच जाती है—

तरल मोती से नयन भरे,
मानस से ले उठे स्नेह-घन कसक विद्युत्पलकों के हिमकन।
सुधि स्वाती की छाह पलक की सीपी में उतरे ।।

—यामा : महादेवी ।

महादेवी जी ने अपने प्रिय अलकार समासोक्ति द्वारा भारतीय नारी की असहाय अवस्था का जो भावोत्तेजक चित्र खीचा है, वह दर्शनीय है—

जन्म से मृदु कज-उर मे
नित्य पाकर प्यार लालन
अनिल से चल पख पर फिर
उड़ गया जब गध उन्मन।
बन गया तब अपरिचित
हो गई कलिका बिरानी
निठुर वह मेरी कहानी ।।

—यामा

जिस घर में उसका लालन-पालन हुआ उसको छोड़कर चले जाने पर वह किस प्रकार बिरानी हो जाती है, वह वस्तुतः बड़ी निठुर कहानी है।

निम्नलिखित पक्तियों मे अन्योक्ति अलकार द्वारा पूजीपतियो का विनाश नहीं तो पूँजीवादिता का विनाश करके शोषितो के पनपने का अवसर दिया जाना चाहिए—इस भाव की व्यजना की गई है—

बट की विशालता के नीचे जो अनेक वृक्ष,
ठिठुर रहे हैं उन्हे फैलने को वर दो।
रस सोखता है जो मही का भीमकाय वृक्ष,
उनकी शिरायें तोड़ो डालियाँ कतर दो ।।

कुरुक्षेत्र : दिनकर

कहीं-कहीं पर आलंकारिक योजनाओं से भाव की व्यंजना और स्वरूप की स्पष्टता दोनों ही होती है। ऐसी योजनायें दोनों की विभूति—वृद्धि करती हैं। उदाहरणार्थ—

प्राण तुम्हारे मुख—पाटल से हिमकण जैसे कोमल।
ज्योत्स्ना जैसे चंचल परिमल से वे शब्द भरे थे ।।

—चिंता : अज्ञेय ।

इसमे रूपक-गर्भित उपमा है। रूपक ने उपमा के चित्र को पूर्णता प्रदान की है। इसमे उपमेय 'शब्द' अमूर्त्त है और इसके उपमान मूर्त्त हैं। पाटल से परिमल झड़ता है और मुख से शब्द। पाटल पर जो हिमकण संचित होते है वे आर्द्र तो होते

ही है कोमल भी होते है। शब्द भी श्रवण-सुखद तथा स्नेहार्द्र हैं। पाटल पर ज्योत्स्ना पड़ती है और उसके हिलने-डुलने से चंचल प्रतीत होती है। शब्द भी मानसिक अस्थिरता से चचल है। इस प्रकार यहाँ के सभी उपमान जैसे अदृश्य शब्द के स्वरूप-बोध मे समर्थ है वैसे ही भावक की गम्भीरता को भी व्यक्त करते है। शब्द स्वरूपवान नही हैं, फिर भी हम उसके स्वरूप और भाव को हृदयंगम कर मुग्ध हो जाते है।

बंधनों से मुक्ति ही क्या शक्ति का उपहास मेरा ?
विश्व के विश्वास पर है खड्ग-सा उपहास मेरा ।।
—रांगेय राघव

इसमें भाव यह है कि मेरा उपहास विश्व के विश्वास पर ऐसा प्रहार करता है कि जैसे तलवार चोट करती है। यहाँ पर खड्ग की उपमा से उपहास के असह्य होने की भावना को उत्कर्ष प्राप्त हुआ है।

विरोधाभास अलंकार भाव-व्यजना की एक विशिष्ट प्रणाली है। आधुनिक कवियों ने इसका पर्याप्त प्रयोग किया है। लाक्षणिक या व्यजक पदों द्वारा इसकी योजना की जाती है। उदाहरणार्थ—

शीतल ज्वाला जलती है, ईधन होता दृग-जलका ।।
—आँसू : प्रसाद।

अरी व्याधि की सूत्रधारिणी, अरी आधि मधुमय अभिशाप
—कामायनी : प्रसाद।

यहां शब्दों के कारण विरोध तो अवश्य प्रतीत होता है, किन्तु संश्लिष्ट एवं सूक्ष्म भावों के उत्कर्ष की व्यंजना बहुत हो चुकी है। प्रथम तो विरोध के कारण पाठक का ध्यान कविता की ओर आकृष्ट होता है, पर जब उसके अर्थ की ओर प्रवृत्त होता है तो विरोध केवल बाह्य प्रतीत होता है। ऊपर की कविता में 'शीतल ज्वाला' विरह की वेदना का प्रतीक है जो दुखद और सुखद दोनों है। इसी प्रकार उदाहरण में अभिशाप को 'मधुमय' कहकर चिंता की काम्यता की व्यंजना की गई है। निराला जी ने भी यत्र-तत्र इस पद्धति को अपनाया है—'किस विनोद की तृषित गोद में आज पोंछती वे दृग-तीर।' (परिमल)। 'विनोद' की गोद को तृषित कह-कवि ने उस विनोद के भीतर निहित तृषा अथवा अतृप्ति के तत्त्व का अन्तर्द्वन्द्व लक्षित कराया है। महादेवी जी भी कहती है—

नाश भी हूँ मैं अनन्त विकास का क्रम भी,
त्याग का दिन भी चरम आसक्ति का तम भी,
तार भी आघात भी, झंकार की गति भी,
पात्र भी, मधु भी, मधुपा भी, मधुर विस्मृतियाँ
अधर भी हूँ और स्मित की चाँदनी भी हूँ।
—यामा

इसमें आत्मा के लौकिक-अलौकिक यक्ष की व्यंजना का बोध हो जाने पर विरोध का शमन हो जाता है।

यह तो हुई आधुनिक अलंकृत उक्तियों में भाव-व्यंजना की बात। अब थोडा वस्तु-व्यजना पर विचार करेगे अर्थात् वस्तुओ के रूप-गुण और क्रिया के अनुभव को तीव्र कराने मे आधुनिक आलकारिक योजनाये कहाँ तक सहायक हुई है ? यथा—

सब ने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य-तुषारावृत यथा विधुलेखा।
बैठी थी अचल तथापि असख्य तरगा,
अब वह सिही थी हहा ! गोमुखी गगा॥
—साकेत मैथिलीशरण गुप्त।

विधवा रानी कैकेयी तुषारावृत विधुलेखा-सी धुँधली पड गयी थी। कहाँ वह सिही और कहाँ अब गोमुखी गगा। यहाँ रूपक-गर्भित उपमालकार रानी के रूपानुभव को तीव्र करने में सहायक हुआ है। प्रयुक्त अलकार से रानी की दशा का ऐसा भव्य चित्रण हुआ है कि भाव मे सजीवता आ गई है। इसी प्रकार निम्नोद्धृत अश मे उक्तविषयस्वरूपोत्प्रेक्षालकार द्वारा श्रद्धा के स्वरूप-सौदर्य की झाँकी देखिये—

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मृदुल अधखुला अग।
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघबन बीच गुलाबी रँग॥
—कामायनी।

यहाँ नील परिधान बीच से झाँकते अधखुले अग की समानता मेघ-बन-बीच खिले गुलाबी रग के बिजली के फूल से दी गयी है। इस अलकार-योजना से श्रद्धा के रूपानुभाव मे उत्कर्ष तो हुआ ही है साथ ही प्रभाव की गहराई है। इसी प्रकार श्रद्धा का केश-वर्णन दर्शनीय है—

घिर रहे थे घुँघराले बाल,
अस अवलम्बित मुख के पास।
नील-घन शावक से सुकुमार,
सुधा भरने को विधु के पास॥
—कामायनी।

घनो के चाहे शावक न होते हो, पर श्रद्धा के केशो की समानता के लिये उन्हे लघुकाय शावक बनना पडा है। इस स्थल पर चन्द्रमा का परम्परित मुख-साम्य

भी नया जीवन पा गया है जिससे रूप का सर्वथा अभिनव सफल चित्रण हो गया है।

इसी प्रकार निम्नांकित पंक्तियों में उपमालंकार प्रलयकालीन सिधु-लहरियों के रूपानुभव को तीव्र बनाता है—

उधर गरजती सिधु-लहरियाँ,
कुटिल काल के जालों-सी।
चली आ रहीं फेन उगलती,
फन फैलाये व्यालों-सी॥
—कामायनी।

यहाँ 'फन फैलाये व्यालों-सी' से लहरो की भयकरता की भी तीव्रानुभूति होती है।

निराला जी अपने चित्रो की विराटता के लिये प्रसिद्ध हैं। उदाहरणार्थ भगवान राम युद्धस्थल से लौट रहे है। उनकी जटा खुलकर, बाहुओं, वक्ष और पीठपर फैल गई है तथा ज्योतिष्क नेत्र चमक रहे हैं। निराला जी राम के इस विराट रूप की उपमा उस पहाड़ से देते हैं जिस पर रात का अधकार उतर चला है जिसके ऊपर दूर दो तारिकायें चमक रही हो—

दृढ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल,
फैला पृष्ठपर, बाहुओं पर, वक्ष पर विपुल।
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार,
चमकती तारायें ज्यों हो कही पार॥
—अनामिका।

इसमें प्रयुक्त उपमालकार से राम-रूप की विराटता प्रत्यक्ष हो जाती है।

पंत जी ने 'नौका-बिहार' मे चाँदनी-चर्चित लहरों का चित्रण इतने ब्यौरे के साथ लिखा है कि लहरों का गोचर प्रत्यक्षीकरण हो जाता है—

साड़ी की सिकुड़न-सी जिसपर,
शशि की रेशमी विभा से भर
सिमटी हैं वर्तुल मृदुल लहर।
फैले फूले जल में फेनिल॥
—गुजन।

अब आधुनिक हिन्दी-कविता में आलंकारिक प्रयोगों को देखिये जिनसे गुणानुभव को उत्कृष्टता प्राप्त होती है। यथा—

अयोध्या के अजिर को व्योम जानो,
उदित जिसमें हुए सुरवैद्य मानो ।
कमल दल से बिछाते भूमितल में,
गये दोनों विमाता के महल में ।।
—साकेत ।

राजा दशरथ के दु ख को दूर करने में राम ही एकमात्र सहायक हैं, इसको सुरवैद्य की उत्प्रेक्षा पुष्ट करती है और कमल-दल की उपमा राम-लक्ष्मण के चरण-कमल की कोमलता, सुदरता तथा अरुणिमा के अनुभव को तीव्र बनाती है ।

प्रसाद जी ने रूपक के रूप में अप्रस्तुत योजना द्वारा चिन्ता की प्रारम्भिक अवस्था की भीषणता का अनुभव बडी सफलतापूर्वक कराया है ।

ओ चिंता की पहली रेखा,
अरी विश्व वन की व्याली ।
ज्वालामुखी स्फोट के भीषण,
प्रथम कम्प-सी मतवाली ।।
हे अभाव की चपल बालिके,
रे ललाट की खल लेखा ।
हरी-भरी-सी दौड़-धूप, ओ
जल-माया की चल-रेखा ।।
—कामायनी

चिंता को सम्बोधित करता हुआ कवि कहता है कि तुम वैसी ही मतवाली हो जैसी ज्वालामुखी-विस्फोट के पूर्व भीषण कम्पन होती है । तात्पर्य यह है कि ज्वालामुखी के कंपन से यह निश्चय हो जाता है कि अब भीषण विस्फोट होगा और परिणामस्वरूप निकटवर्ती वस्तुएँ नष्ट भ्रष्ट हो जायेगी, वैसे ही चिंता भी मस्तिष्क में प्रविष्ट होकर तन-मन घुलाती हुई भारी विपत्ति खड़ी कर देगी । यहाँ का उपमान भीषण प्रथम कंप उपमेय चिंता की उग्रशक्ति का द्योतन ही नहीं कराता अपितु उसकी उग्रता को और भी बढा देता है । साथ ही चिंता को अभाव की चपल बालिका कहना भी सर्वथा सार्थक है । इसी प्रकार अधोलिखित अश में अभिनव अप्रस्तुत योजना श्रद्धा के अतरंग को मुग्धात्व, सलज्जता, नूतनता, मधुरता, निष्कलुषता, प्रकाशमयिता आदि गुणों के अनुभव को तीव्र करने मे अत्यन्त सहायक है—

उषा की पहली लेखा कान्त,
माधुरी से भीगी भर मोद ।
मद-भरी जैसे उठे सलज्ज,
भोर की तारक-द्युति की गोद ।
—कामायनी ।

पंत जी के नौका बिहार के दर्शनीय शब्द-चित्र में उपमालंकार द्वारा लहरों पर बुझती हुई सांझ की अरुणिमा का बडा सुन्दर अनुभव होता है—

लहरों पर स्वर्ण रेख सुन्दर, पड गई नील, ज्यों अधरों पर,
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

—गुंजन।

संध्या मे पहले तो लालकिरणें सुनहली होकर पडती हैं और जब अधकार का प्रसार होता है तो नीली पड़ने लगती है। शीतकाल मे अरुण अधरो की ललाई शीत की प्रबलता से नीली पड़ जाती है। दोनो मे एक सा व्यापार है। स्वभावत: ओठ जाड़े मे नीले हो जाते है, फिर भी उसमे डरने की बात जोड कर कवि ने मणि कॉचन सयोग प्रस्तुत कर दिया है।

वक्ष पर जिसके जल उड्गन बुझा देते असंख्य जीवन,
कनक और नीलम यानों पर दौडते जिस पर निशिवासर।
पिघल गिरि से विशाल बादल न कर सकते जिसको चंचल,
तडित की ज्वाला घन गर्जन जगा पाते न एक कपन,
उसी नभ-सा क्या यह अविकार और परिवर्तन का आधार॥
—यामा : महादेवी।

जन्म, मृत्यु और जन्मान्तर से जकडा हुआ तथा अनेक परिवर्तनों का महा-पात्र आत्मा भी नि:सग आकाश के समान ही निर्विकार है। आत्मा की उपमा निर्विकार आत्मा से देकर कवियत्री ने आत्मा की निर्विकारता का गुण बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है। प्रयुक्त उपमा द्वारा गुण के साथ-साथ स्वरूप-बोध भी होता है।

अधुनिक हिन्दी-कविता मे क्रियानुभव को तीव्र कराने मे सहायक अलंकारो के भी प्रयोग प्राप्त होते है। उदाहरणार्थ—

उर्मिला भी कुछ लजाकर हँस पड़ी,
वह हँसी थी मोतियो की-सी लडी।

* * *

दम्पती चौके, पवन-मण्डल हिला,
चचला-सी छिटक छूटी उर्मिला॥
—साकेत : मैथिलीशरण गुप्त

मोतियों की लड़ी-सी जो उपमा है वह हँसने की क्रिया को जैसे तीव्रता प्रदान करती है, वैसे ही उज्ज्वलता, दिव्यता और सुन्दरता की अनुभूति को भी तीव्र करती है। लक्ष्मण के क्रोड से उर्मिला के छिटक छूटने की क्रिया में जो तीव्रता है उसको भी चंचला की उपमा तीव्रतर कर देती है।

उषा सुनहले तीर बरसती,
जयलक्ष्मी-सी उदित हुई।
उधर पराजित काल-रात्रि भी
जल मे अन्तर्निहित हुई ।।
—कामायनी जयशंकर प्रसाद

यहाँ के रूपक और उपमा ऊषा की तीव्रता का अनुभव कराने मे सहायक है। ऊषा के सुनहरे तीरो के भय से कालरात्रि भागकर छिप गई है।

बाल रजनी-सी अलक थी डोलती,
भ्रमित-सी शशि के बदन के बीच मे।
अचल रेखाकित कभी थी कर रही—
प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य मे ।।
—ग्रंथि : सुमित्रानन्दन पत

यहाँ अलक डोलने की क्रिया की अत्यन्त तीव्रानुभूति रेखाकित की उत्प्रेक्षा हो रही है।

आधुनिक हिन्दी-कविता में भारतीय अलंकारों के अतिरिक्त पाश्चात्य अलंकार भी व्यवहृत हुए हैं। उनमें सबसे महत्वपूर्ण मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यंजना है। ये अलकार भी भावाभिव्यंजन और वस्तुव्यजना मे पर्याप्त सहायक हुए है।

शब्दों के प्रयोग द्वारा अर्थ को व्यक्त कर देना मात्र काव्य नही है। कवि अर्थ ग्रहण नहीं करता, वह तो चित्ररूप मे वर्ण्यवस्तु का प्रत्यक्षीकरण करता है, अर्थात् शब्दों के माध्यम से चित्र योजना करता है जिसका पाठक द्वारा बिम्ब ग्रहण होता है। बिम्ब ग्रहण के लिये चित्र का सश्लिष्ट होना आवश्यक है। सश्लिष्ट चित्रण से केवल आलम्बन के वाह्यरूप या अवयवों का ही चित्र परिस्फुट नही होता अपितु भाव के ठहरने के लिये भी अवसर प्राप्त होता है। रेखाचित्र, खंडचित्र और छायाचित्र मे वह प्रभावान्विति नही होती जो सश्लिष्ट चित्रों मे होती है। आधुनिक हिन्दी-कविता मे इस प्रकार के सश्लिष्ट चित्रो का चित्रण अधिकतर मानवीकरण अलकार द्वारा हुआ है। चित्रमयी भाषा मे प्रस्तुतो और अप्रस्तुतो की मूर्ति चित्रित करने के प्रयत्न मे मानवीकरण का विधान स्वयमेव हो गया है। रस-सिद्धान्त की दृष्टि से निर्जीव प्राकृतिक वस्तुओं में रतिभाव का चित्रण रसाभास माना जाता है, किन्तु इस युग मे निर्जीव और निरीन्द्रिय पदार्थों मे चेतना का आरोप करके मानवीकरण किया गया है। आधुनिक कवियों मे निराला जी ने जो चित्र दिये हैं वे अधिकतर सश्लिष्ट, सतुलित तथा सामजस्य और सौष्ठवपूर्ण है। इन गुणों के अतिरिक्त उनमे क्रमबद्धता और अखण्डता भी दृष्टिगत होती है। उदाहरणार्थ निराला जी ने

उषा के संधिकाल का एक सर्वाङ्गपूर्ण चित्र अंकित किया है जिसमें रात्रि का नायिका के रूप में मानवीकरण किया गया है--

(प्रिय) यामिनी जागी !
अलस पंकज-दृग, अरुण मुख, तरुण अनुरागी !
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तिर रहे,
बादलों मे घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी !
हेर उर-पट फेर मुख के बाल
लख चतुर्दिक चली मंद मराल
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल
वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी !

—गीतिका : निराला।

यह सोकर उठी हुई अस्तव्यस्त युवती का स्वाभाविक और संश्लिष्ट चित्र है। इसमें वेशभूषा और वाह्यकृति के साथ वातावरण और आँगिक चेष्टाओं का चित्र भी बड़ी बारीकी के साथ अंकित किया गया है।

इसी प्रकार महादेवी जी कहती हैं—

रूपसि ! तेरा घन-केशपाश !
श्यामल–श्यामल, कोमल–कोमल,
लहराता सुरभित केशपाश ॥

—यामा।

वर्मा जी रात्रि का मानवीकरण करते हुए कहते है—

इस सोते ससार-बीच, जगकर सजनी रजनी बाले।
कहाँ बेचने ले जाती हो ये गजरों तारे वाले ॥

—आधुनिक कवि : डा० रामकुमार वर्मा।

रामधारी सिंह 'दिनकर' ने विजय का मानवीकरण करते हुये लिखा है—

आर्य विजय ! रुधिर से क्लिन्न वसन है तेरा,
यम–दृष्टा से क्या भिन्न दसन है तेरा ?
लपटो की झालर झलक रही अचल में,
है धुआँ ध्वंस का भरा कृष्ण कुतल में।
ओ कुरुक्षेत्र की सर्वग्रासिनी व्याली,
मुख से तो ले पोंछ रुधिर की लाली।

तू जिसे वरण करने के हेतु विकल है,
वह खोज रहा कुछ और सुधामय फल है।
—कुरुक्षेत्र : दिनकर।

इसी प्रकार गिरिजाकुमार माथुर ने भी नारी-रूप में वर्षा का मानवीकरण करते हुए बड़ा ही रम्य चित्र प्रस्तुत किया है—

आई बरसात आज !
गीली अलकों से वारि बूँदें चुआती हुई,
झीनी झोलियों से मुक्त मुक्ता लुटाती हुई,
कोयल-सा श्यामल स्वर
भीगी अमराई से आता है पल-पल पर,
सुरमीली आँखों को ढाँक रही श्याम अलक,
साँवली बदलियो का उड़ाता-सा घूँघट पट,
छिपाता-सा इन्दु बदन जाता है झलक-झलक
उठती नत चितवन जब हलकी-सी विद्युत बन।
—गिरिजाकुमार माथुर।

इस प्रकार के मानवीकृत चित्र बिम्बग्रहण में बहुत सहायक होते है। आधुनिक कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओ के अतिरिक्त मनोवृत्तियों को भी सजीवता प्रदान कर मूर्त्तरूप में चित्रित किया है, यथा कामायनी के सभी पात्र मनोवृत्तियों के मानवीकृत रूप ही है। 'लज्जा' सर्ग में लज्जा का मानवीकृत रूप चित्रित करते हुए कवि ने कहा है—

वैसी ही माया मे लिपटी,
अधरो पर अँगुली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का,
आँखों मे पानी भरे हुये॥
नीरव निशीथ मे लतिका-सी,
तुम कौन आ रही हो बढ़ती ?
कोमल बाँहें फैलाती-सी,
आलिगन का जादू पढती॥
—कामायनी : प्रसाद।

मानवीकरण अलंकार की तरह ही विशेषण विपर्यय भी आधुनिक कवियों का एक प्रिय अलकार है। भारतीय काव्यशास्त्रियों की दृष्टि से यह लक्षणा-शक्ति के अन्तर्गत समाविष्ट हो जाता है, किन्तु अँग्रेजी मे यह एक अलंकार है; अत: अलंकार-रूप में ही इस पर विचार करना उचित है। विशेषण-विपर्यय आधुनिक

हिन्दी-कविता की एक विशेषता है। इस प्रकार के लाक्षणिक विशेषणो से भाव-व्यजना और चित्रात्मकता मे पर्याप्त सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ—

इन ललचायी पलको पर पहरा था जब व्रीडा का।
—यामा : महादेवी वर्मा।

एक दु खान्त कथा कहती थी निज प्यासे आँखो से काया।
--मधूलिका : रामेश्वर शुक्ल 'अचल'।

प्रथम उदाहरण मे पलके उठ नही पाती। आँखे लज्जा के कारण झुकी हुई होने से इधर-उधर देख नही सकती है। इच्छा तो देखने की है, पर कडे पहरे के कारण देख नही पाती। ऐसी स्थिति मे ललचाई विशेषण पलको की वह अवस्था प्रकट कर देता है जिससे उनकी विकलता नेत्रो के समक्ष खडी हो जाती है। द्वितीय उदाहरण मे अङ्ग प्यासे तो नही होते, किन्तु उनकी तृष्णाएँ होती है। मुख की इच्छा स्वादिष्ट भोजन करने की होती है, नासिका के सुगन्धित वस्तु की चाह होती है, कान मधुर शब्द श्रवण करना चाहते है और नेत्रों की इच्छा सुन्दर वस्तुओ के देखने की होती है। ऐसे ही अन्य अङ्ग भी स्वेच्छापूर्ति के इच्छुक होते है। इनकी ये कामनाएँ ही तो प्यास हैं। तृष्णार्त जल पीना चाहता है, वैसे ही अपनी इच्छा रखने वाले अङ्ग भी तृष्णार्त है। यही तृष्णा प्रकट करने वाला अङ्गो का प्यासा विशेषण है। यहाँ प्यासे विशेषण से प्यासे की विह्वलता का रूप प्रस्तुत हो जाता है। इसी प्रकार के विशेषण-विपर्यय के प्रयोग प्रसाद जी ने भी किये है। यथा—

उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत।
—कामायनी : प्रसाद।

स्रोत का अर्थ है धारा। यहाँ स्रोत का अर्थ होता है गति। वह तो मधुमय होता नही। यौवनकाल मे माधुर्य की प्रबलता होती है। सुख के स्वप्न बहुत दिखलाई पड़ते हैं। इच्छायें भी रगीन हो जाती है। तात्पर्य यह है कि प्रबल यौवनकाल माधुर्य रस से ओतप्रोत रहता है। इसी भाव को मधुमय विशेषण व्यक्त करता है।

इसी प्रकार अलसाई छाँह, विस्मित अधर, अधखिले भाव, करुण भौहे, तरल आकाक्षा, भीगीतान, गीलागान, लचकागान, सुरीले-ढीले अधर, तुतलाभय आदि मे विशेषण-विपर्यय अलकार का ही चमत्कार दिखाई पडता है। प्रसाद, निराला, पत आदि के काव्य मे इस प्रकार के पुष्कल प्रयोग प्राप्त होते हे। ऐसे विशेषणो से भाव-व्यजना, चित्रमयता और स्वरूपाधयकत्व मे पर्याप्त सहायता मिलती है। इस प्रकार के प्रयोग से वर्ण्य-विषय के चित्र की एक झलक प्राप्त हो जाती है।

ध्वन्यात्मकता शब्द का गुण है। अँग्रेजी मे ध्वन्यर्थव्यजना अलकार-रूप मे प्रयुक्त होता है। जिस प्रकार कवि शब्दो द्वारा किसी वस्तु के रूप, गुण और क्रिया को प्रकट करते है, उसी प्रकार शब्दो द्वारा वस्तु की ध्वनि को भी व्यक्त करते है। भावानुरूप वर्ण संगीत या ध्वन्यात्मकता निराला जी की कविता मे प्रचुरता से प्राप्त होती है—

कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर उर-लाज,
लौट रंकिणी;
और मुखर पायल स्वर करे बार बार !
——गीतिका : निराला।

इस ण और र वर्णो के योग और आवृत्ति से आभूषणों की झनकार ध्वनित होती है। इसी प्रकार का एक उदाहरण और देखिये—

भेरी झरर झरर दमाये,
घोर नकारों की है चोप।
कड़-कड़-कड़, सन-सन बंदूकें,
अररर अररर अररर तोप,

* * *

आग उगलती दहक-दहक दह
कँपा रही भू-नभ के छोर !
——नाचे उस पर श्यामा : निराला।

इसमे भेरी, बन्दूक और तोप की आवाजों का अनुकरण करके शब्द गढ़े गये हैं, अतः वर्णों की आवृत्ति सहज ही हो गयी है।

प्रभावान्विति के लिए शब्दों के दुहरे प्रयोग द्वारा भी वर्ण-संगीत की सुदर योजना की गई है—

वन वन उपवन
छाया उन्मन-उन्मन गुंजन
नव वय के अलियों से गुजन।
अथवा
चमक-झनकमय मंत्र वशीकर
छहर–छहरमय विष–सीकर !
—पल्लव : सुमित्रानन्दन पंत।

यहाँ वर्णों की आवृत्ति से ही भ्रमर की गुजार और वर्षा की झमझम ध्वनि निकल रही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भावों के उत्कर्ष-प्रदर्शन और वस्तुओं के रूप, गुण, क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में आधुनिक अलकृत उक्तियाँ पर्याप्त सहायक हुई है।

१०

उपसंहार

पिछले अध्याओं में हमने आधुनिक हिन्दी-काव्य में अलंकार-विधान के अध्ययन का प्रयास किया है। हमने आधुनिक अलंकार-विधान की प्रमुख प्रवृत्तियो की पृष्ठभूमि मे कौन-सी विचारधारा कार्य कर रही है, इस ओर भी यथास्थान संकेत करने का प्रयत्न किया है। इसके अतिरिक्त हमने यह भी समझने की चेष्टा की है कि आलोच्यकाल की आलंकारिक योजनाएँ किस प्रकार से अपने पूर्वकाल की अलंकार-योजनाओं से भिन्न हैं? यह भिन्नता बहुत कुछ पाश्चात्य-साहित्य के सम्पर्क के परिणामस्वरूप हुई है। परम्परा से मुक्त होकर इस नवीन प्रभाव-ग्रहण के कारण आधुनिक हिन्दी-कविता में नवीन किन्तु आकर्षक-अनाकर्षक सभी प्रकार का अलाकार-विधान प्राप्त होता है।

आधुनिक हिन्दी-काव्य के अलाकार-विधान मे नवीनता का पर्याप्त आग्रह परिलक्षित होता है। छायावादी कवि सर्वदा नवीन उपमानों के लिए प्रयत्नशील रहा है, और जहाँ कही भी उसने प्राचीन उपमानो का व्यवहार किया है, वहाँ उसने उन्हे अभिनव अर्थ-दीप्ति से अलकृत किया है। छायावादी युग के औपम्यविधान की प्रमुख विशेषताएँ हैं—मूर्त्त की अमूर्तोपमा और अमूर्त की मूर्तोपमा। इन विशेषताओ के अतिरिक्त इस युग की उपमान-योजना मे लाक्षणिकता का भी प्राचुर्य है, इसीलिए अनेक आलोचकों ने इसे लक्षणा-काव्य की संज्ञा प्रदान की है। छायावादी कवियों ने अपने अप्रस्तुत-विधान मे प्रभाव-साम्य को सर्वाधिक महत्व प्रदान कर अधिकांश अप्रस्तुत प्रकृति के उपकरणों से ही प्राप्त किये है और इस प्रकार जड से चेतन का साम्य प्रदर्शित कर चेतनता को और अधिक तीव्र किया है। छायावादी कवि अन्तर्मुखी होने के कारण उसने वस्तु के सूक्ष्म अंतरङ्ग को ग्रहण कर उपमान-योजना का प्रयास किया है, किन्तु अन्तर्मुखी कवि के सूक्ष्म का इतना आधिक्य हुआ कि प्रतिक्रिया स्वरूप कवि वहिर्मुखी होकर स्थूल-चित्रण की ओर अग्रसर हुआ।

जिस प्रकार द्विवेदीयुगीन स्थूल के प्रति सूक्ष्म ने विद्रोह किया और परिणाम-

स्वरूप छायावाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावादी सूक्ष्म के प्रति स्थूल ने विद्रोह किया और प्रतिक्रियास्वरूप प्रगतिवाद का उद्‌भव हुआ। प्रगतिवाद छायावाद के विरोध मे उठा, अतः छायावादी अमूर्तवाय्वी उपमान योजना के स्थान पर स्थूल, मांसल उपमान लाये गये और सुन्दर, विशेष तथा कोमल की जगह कुरूप, सामान्य एवं परुषविधान किये गए। इसके अतिरिक्त छायावाद के अधिकाश उपमान जहाँ प्रकृति के क्षेत्र से होते थे, वहाँ प्रगतिवादी उपमान समाज से संबद्ध होने लगे।

प्रयोगवादियों की नवीन अर्थात् असाधारण स्पृहा ने भी नये-नये उपमानों की योजना की, किन्तु जब प्रस्तुत की अनुरूपता का ध्यान न कर अप्रस्तुत योजना की जाती है, तब उसमे प्रेपणीयता या भावबोध की क्षमता नही होती और प्रयोग-वादियो ने प्राय. यही किया है। अत. उनके औपम्यविधान मे नवीनता तो है, किन्तु सहृदय-हृदय के लिये सौन्दर्य-विधान करने मे सक्षम नही है। इसका कारण है इनमें बौद्धिकता का अत्यधिक आग्रह और सहृदयता की उपेक्षा।

उपमान-योजना ही आगे चल कर प्रतीक-विधान करती है। छायावादी कवियो ने उपमान-विधान की भाँति परम्परागत प्रतीकों को न ग्रहण कर नये-नये प्रतीको का प्रयोग प्रारम्भ किया। नये प्रतीकों की कोई परम्परा न होने के कारण आरम्भ मे इन्हे समझने मे लोगो को कठिनाई हुई, लेकिन प्रयोग की पुनरावृत्ति प्रसगानुकूल की सहायता से वे रूढ बनने लगे। शनै. शनै युग की सामान्य भावधारा तथा सामाजिक चेतना द्वारा ऐसा वातावरण बन गया कि वे प्रतीक सामान्य लोगों के राग-बोध के अङ्ग बन गये। इस प्रकार छायावाद ने नये प्रतीको की सृष्टि कर पूर्ण परिचित वस्तुओ मे नवीन अर्थवत्ता भर दी और उन्हे पूर्व प्रचलित अर्थ मे से विशेष अर्थ के लिये रूढ़ कर दिया। छायावादी कवियों ने प्राचीन प्रतीको का भी प्रयोग किया है, किन्तु नये अर्थ मे। उन्होने अपने युगानुकूल इनके अर्थ मे परिवर्तन कर दिया है। इस प्रकार छायावादी कवियों ने सौन्दर्यमय प्रतीक-योजना द्वारा भावाभिव्यक्ति को मूर्तता, चित्रात्मकता एवं तीव्रता देने का अभिनव सफल प्रयास किया है।

छायावाद के रोमांसवादी प्रतीकों और बिम्बों के विरोधी प्रगतिवादी कवियों ने अपनी कविता की वाणी को आधुनिक वातावरण के अनुकूल बनाने के लिए अधिकाश प्रतीक औद्योगिक जगत से लिये। छायावादी कवियो के अधिकाश प्रतीक अमूर्त और प्रकृति से लिये गये। इसके विपरीत प्रगतिवादियों के प्रतीक मूर्त और उनका चयन समाज से किया गया। अत· इनके प्रतीक-विधान मे छायावादियों की भाँति कही भी किसी प्रकार की दुर्बोधता और अमूर्तता नहीं है, अपितु सर्वत्र सुबो-धता और स्पष्टता है।

मनोविश्लेषण-विधान के प्रभाव के कारण प्रयोगवादी कविताओं में यौन सम्बन्धी प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग प्राप्त होता है। इन प्रतीको का प्रयोग के कारण

यह है कि आज की वर्जनाएँ इतनी कठोर हैं कि चेतन क्षणों में मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्तियों का प्रस्फुटन असम्भव हो जाता है और उनकी यह पूर्ति या तो स्वप्न-जगत में या कला जगत में करता है।

अलंकार-विधान के विषय में आधुनिक कवियो का परम्परा से पृथक् होकर चलने का बहुत कुछ कारण आंग्ल-साहित्य का सम्पर्क है, जिसका आधुनिक हिन्दी-काव्य पर पर्याप्त प्रभाव प्रत्यक्ष है। छायावादी कवियो ने रोमांटिक कवियों से, प्रगतिवादियो ने आडेन तथा उसके वर्ग के लेखकों से और प्रयोगवादियों ने इलियट आदि से प्रेरणा प्राप्त कर काव्य के अंतरग और बहिरंग में परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया। प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक डी क्यून्सी के कथनानुसार प्रत्येक प्रगतिशील साहित्य के लिये यह आवश्यक है कि वह अपने में अन्यान्य साहित्य के प्रभावों को भी अंगीकृत करे। जो साहित्य ऐसा करने मे समर्थ नही होता, वह क्रमश: ह्रासोन्मुखी हो जाता है। लेकिन जहाँ तक हिन्दी-अलंकार-विधान एवं प्रतीक विधान पर आग्ल-प्रभाव का सम्बन्ध है, वह सदैव-सर्वत्र हितकर नहीं सिद्ध हुआ है, अपितु उसने हिन्दी के बहुत से लेखकों मे हीनभावना उत्पन्न कर अनुकरण करना सिखलाया है। केवल उच्च श्रेणी के कवि ही आंग्ल-प्रभाव को पूर्णतया आत्मसात कर उसका जातीय प्रतिभा के विकास में उचित प्रयोग कर सके है, मध्यम श्रेणी के कवियों ने आंग्ल-साहित्य का अंधानुकरण कर केवल उपहासास्पद प्रयोग किये हैं।

जहाँ तक आधुनिक हिन्दी-कविता में प्राचीन आलंकारिक परिभाषाओं के निर्वाह का प्रश्न है, उस विषय में कहा जाता है कि आधुनिक कवियो ने कभी भी प्राचीन अलंकारों के प्रयोग के लिये प्रयत्न नही किया है। जो भी अलंकार प्राप्त होते हैं वह सब स्वभावत: आ गये है। आधुनिक हिन्दी-कविता के ये अलंकार अपनी प्रेषणीयता और प्रभावोत्पादकता के कारण भावों के उत्कर्ष-प्रदर्शन और वस्तुओं के रूप, गुण तथा क्रिया का तीव्र अनुभव कराने में पर्याप्त सहायक हुए हैं। इन विशेषताओं के अतिरिक्त आधुनिक अलंकृत उक्तियों में लक्षणा और व्यजना शक्तियों का भी विकास हुआ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खड़ी बोली की कविता ने विश्व-साहित्य से सम्पर्क स्थापित कर अपने मे अनेक विशेषताओं का समावेश किया है और अलंकारों के बाह्याडम्बर से दूर रही है। इसके विपरीत आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य प्राचीन परम्परा का ही पोषक रहा है.। अर्थात् प्रवृत्ति अलंकारोन्मुख है। इन कवियों के काव्य मे मध्यकालीन कवियों जैसी ही अलंकार-चमत्कार-प्रदर्शन-प्रवृत्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार आधुनिक ब्रजभाषा-काव्य पुरातन पथ का ही पथिक रहा है। उसने वृन्दावनी गलियों से निकल कर बाहर चलने का कोई विशेषोल्लेखनीय प्रयास नही किया है।

परिशिष्ट

सहायक ग्रन्थ-सूची

संस्कृत

भरत	नाट्यशास्त्र
भामह	काव्यालंकार
उद्भट	अलंकारसार-संग्रह
वामन	काव्यालंकारसूत्रवृत्ति
रुद्रट	काव्यालंकार
आनन्दवर्धन	ध्वन्यालोक
राजशेषर	काव्यमीमांसा
धनंजय	दशरूपक
कुंतक	वक्रोक्तिजीवित
महिमभट्ट	व्यक्तिविवेक
क्षेमेन्द्र	औचित्यविचारचर्चा
भोजराज	सरस्वतीकंठाभरण, शृंगारप्रकाश
मम्मट	काव्यप्रकाश
व्यास	अग्निपुराण
रुय्यक	अलंकारसर्वस्व
हेमचन्द्र	काव्यानुशासन
वाग्भट्ट	वाग्भटालंकार
वाग्भट्ट द्वितीय	काव्यानुशासन
जयदेव	चन्द्रालोक
विद्यानाथ	प्रतापरुद्रयशोभूषण
विश्वनाथ	साहित्यदर्पण
केशवमिश्र	अलंकारशेषर
रूपगोस्वामी	उज्ज्वलनीलमणि
कविकर्णपूर	अलंकारकौस्तुभ
अप्पयदीक्षित	कुवलयानन्द
जगन्नाथ	रसगंगाधर
नरसिंह कवि	नञ्जराजयशोभूषण

हिन्दी

केशव	कविप्रिया

चिंतामणि	कविकुलकल्पतरु
जसवन्त सिंह	भाषाभूषण
मतिराम	ललितललाम, अलंकारपञ्चासिका
कुलपति मिश्र	रसरहस्य
भूषण	शिवराजभूषण
देव	भावविलास, काव्यरसायन
सूरतिमिश्र	अलंकारमाला
श्रीपतिमिश्र	काव्यसरोज
रसिकसुमति	अलंकार-चन्द्रोदय
सोमनाथ	रसपीयूषनिधि
भिखारीदास	काव्यनिर्णय
रूपसाहि	रूपविलास
बैरीसाल	भाषाभरण
ऋषिनाथ	अलंकारमणिमंजरी
पद्माकर	पद्माभरण
शिवप्रसाद	रसभूषण
बलवानसिंह	चित्रचन्द्रिका
गिरधरदास	भारतीभूषण
रणधीरसिंह	काव्यरत्नाकर
नन्दकिशोरमिश्र	गंगाभरण
लछिराम	रावणेश्वरकल्पतरु
गुलाबसिंह	वनिताभूषण
मुरारिदीन	जसवंतजशोभूषण
गंगाधर 'द्विजगंग'	माहेश्वरभूषण
कन्हैयालाल पोद्दार	काव्यकल्पद्रुम, संस्कृत-साहित्यका इतिहास
जगन्नाथप्रसाद 'भानु'	छन्द-प्रभाकर
भगवानदीन 'दीन'	अलंकार-मंजूषा, व्यंग्यार्थ-मंजूषा
रामशंकर शुक्ल 'रसाल'	अलंकार-पीयूष (दोनों भाग)
अर्जुनदास केडिया	भारतीभूषण
बिहारीभट्ट	साहित्यसागर
मिश्रबन्धु	मिश्रबन्धु-विनोद, साहित्य-पारिजात
श्यामसुन्दरदास	साहित्यालोचन, हिन्दी-साहित्य
रामचन्द्रशुक्ल	हिन्दी-साहित्य का इतिहास, रसमीमांसा, गोस्वामीतुलसीदास, चिंतामणि (दोनों भाग)
गुलाबराय	सिद्धान्त और अध्ययन

कृष्णबिहारी मिश्र	मतिरामग्रन्थावली (की भूमिका)
नन्ददुलारे वाजपेयी	हिन्दी-साहित्य : बीसवी शताब्दी, आधुनिक साहित्य, जयशंकरप्रसाद, नया साहित्य: नये प्रश्न
हजारीप्रसाद द्विवेदी	साहित्य का मर्म
नगेन्द्र	आधुनिक काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, काव्यचिंता, रीति काव्य की भूमिका और देव, साकेत एक अध्ययन, सुमित्रानन्दन पंत, भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका
विश्वनाथप्रसाद मिश्र	वाङ्मय-विमर्श, भूषण (की भूमिका) पद्माकर (की भूमिका), समसामयिक साहित्य।
कृष्णशंकर शुक्ल	आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास, केशव की काव्यकला
केशरीनारायण शुक्ल	आधुनिक काव्यधारा, आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत
रामदहीन मिश्र	काव्यदर्पण, काव्य में अप्रस्तुत योजना, काव्यालोक
बलदेव उपाध्याय	भारतीय साहित्यशास्त्र (दोनों भाग)
लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु'	काव्य मे अभिव्यंजनावाद, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त
जयशंकरप्रसाद	कव्यकला तथा अन्य निबन्ध
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	प्रबन्ध-प्रतिभा
रामविलास शर्मा	निराला
शिवदानसिह चौहान	प्रगतिवाद
प्रकाशचन्द गुप्त	नया हिन्दी-साहित्य
विश्वम्भर 'मानव'	सुमित्रानन्दन पंत, नयी कविता
शचीरानी गुर्टू	सुमित्रानन्द पंत, महादेवी वर्मा
गंगाप्रसाद	महाप्राण निराला
देवराज	छायावाद का पतन, साहित्य-चिता
देवराज उपाध्याय	रोमांटिक साहित्यशास्त्र
रामरतन भटनागर	कवि निराला: एक अध्ययन, महादेवी
श्रीकृष्णलाल	आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास
भगीरथ मिश्र	हिन्दी-काव्यशास्त्र का इतिहास
सुधीन्द्र	हिन्दी-कविता में युगान्त, काव्यश्री (अलंकार)

शम्भूनाथ सिंह	हिन्दी-महाकाव्य का स्वरूप-विकास, छायावाद-युग
नामवर सिंह	छायावाद
ओमप्रकाश	हिन्दी-अलंकार-साहित्य
प्रेमनारायण शुक्ल	हिन्दी-साहित्य के विविध वाद
रवीन्द्रसहाय वर्मा	हिन्दी-काव्य पर आंग्ल-प्रभाव
भोलाशंकर व्यास	ध्वनि-सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त
भगवतस्वरूप मिश्र	हिन्दी-आलोचना : उद्भव और विकास
प्रो० क्षेम	छायावाद की काव्य-साधना, छायावाद के गौरव चिन्ह
विजयशंकर मल्ल	हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद
धर्मवीर भारती	प्रगतिवाद
एस० पी० खत्री	आलोचना : इतिहास तथा सिद्धान्त

हिन्दी-कविता

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	प्रियप्रवास
मैथिलीशरण गुप्त	साकेत, यशोधरा
गुरुभक्त सिंह	नूरजहां
जयशंकर प्रसाद	कामायनी, आँसू, लहर, झरना, प्रेम-पथिक
माखनलाल चतुर्वेदी	हिमकिरीटिनी, हिमतरंगिणी
बालकृष्ण शर्मा नवीन	अपलक, क्वासि, रश्मिरेखा
सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, वेला, नए पत्ते
सुमित्रानन्दन पंत	पल्लव, वीणा, ग्रंथि, गजन, युगांत, युगवाणी, उत्तरा, ग्राम्या, स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, पल्लविनी, आधुनिक कवि २, अतिमा
भगवतीचरण वर्मा	मधुकण, प्रेमसगीत, मानव
महादेवी वर्मा	यामा, दीपशिखा
रामकुमार वर्मा	रूपराशि, चित्ररेखा, चंद्रकिरण, आधुनिक कवि ३
हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश'	कसक, मधुरिमा, सुषमा, करुणा, शैवालिन
रामधारी सिंह 'दिनकर'	हुंकार, रेणुका, रसवती, कुरुक्षेत्र, चक्रवाल
हरवंशराय 'बच्चन'	आकुलअंतर, एकांतसंगीत, खैयाम की मधुशाला, मधुबाला, मधुशाला, मधुकलश, निशानिमंत्रण, सतरंगिनी, सोपान

सोहनलाल द्विवेदी	वासवदत्ता
आरसीप्रसाद सिंह	नयीदिशा
नरेन्द्र शर्मा	प्रभातफेरी, पलाशबन, लालनिशान, प्रवासी के गीत
रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'	अपराजिता, किरणरेखा, लालचूनर, मधूलिका
गोपालसिंह नैपाली	नवीन
हंसकुमार तिवारी	रिमझिम
शिवमगल सिंह 'सुमन'	हिल्लोल, जीवन के गान, प्रलय-सृजन
सुधीन्द्र	जौहर, प्रेयस
सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'	भग्नदूत, चिंता, इत्यलम्, हरीघासपर क्षणभर, बावरा अहेरी
केदारनाथ अग्रवाल	युग की गंगा, नींद के बादल
रामविलास शर्मा	रूप-तरंग
गिरिजाकुमार माथुर	मंजीर, नाश और निर्माण, धूप के धान
भारत भूषण	जागते रहो, मुक्ति मार्ग
भवानीप्रसाद मिश्र	गीत फरोश
रांगेय राघव	पिघलते पत्थर, मेधावी, रूपछाया
त्रिलोचन शास्त्री	धरती
धर्मवीर भारती	ठंढा लोहा
कवि भारती	सम्पादक-सुमित्रानन्दन पंत, बालकृष्णराव, डा० नगेन्द्र
प्रथम और द्वितीय तारसप्तक	सम्पादक-अज्ञेय

पत्रिकाएँ

साहित्यालोचन, साहित्य-संदेश, आलोचना, अवंतिका आदि

अंग्रेजी

P. V. Kane	History of Sanskrit Poetics
S. K. Dey	Sanskrit Poetics
Raghavan	Some Aspects of Alankar Shastra
Shankaran	Ras and Dhvani
Kuppu Swami	Highways and Byways of Literary Criticism in Sanskrit
A. B. Keith	History of Sanskrit Literature
K. C. Pandey	Indian Aesthetics
Aristotle	Poetics, Rhetorics

Pater	Appreciation
I. A. Richards	Principles of Literary Criticism, Practical Criticism
Ogdin and Richards	The Meaning of the Meaning
Caudwell	Illusion and Reality
C. M. Bowra	The Romantic Imagination
A. C. Bradley	Oxford Lectures on Poetry
Croce	Aesthetics
W. H. Hudson	An Introduction to the studay of Literature
Whatley	Elements of Rhetorics
A. Bain	English Composition and, Rhetoric
J. T. Genning	The Evolution of Figures of Speech
Abererombil	The Idea of Great Poetry, The Theory of Poetry
Bhagwan Das	The Science of Emotions
A. K. Coomarswamy	The Figures of Speeeh or Figures of Thought
Rakesh Gupta	Psychological Studies in Rasa
W. Mc. Dugall	An Outline of Psychology
Freud	Introductory Lectures on Psychoanalysis
Jung	Psychological Types, Modern Man in Search of Soul
Whitehead	Symbolism, its Meaning and Effects